श्री साईलीलामृत (हिंदी)

श्री साईबाबा संस्थान विश्वस्तव्यवस्था,
शिरडी प्रकाशन

श्री साईलीलामृत

लेखक
प्र.सुं. आगासकर

अनुवादक
रा.शां.चिटणीस

संपादन एवं संशोधन
प्रो.ए.पी.त्रिपाठी, बैतूल(म.प्र.)

नवीन संस्करण संशोधन
राजेन्द्र जसूजा (व्याख्याता)
संजय तिवारी (शिक्षक), भोपाल

श्री साईबाबा संस्थान विश्वस्तव्यवस्था, शिर्डी

सन 2010 मूल्य........

प्रकाशक–
अध्यक्ष,
श्री साईबाबा संस्थान विश्वस्तव्यवस्था, शिर्डी.
मु.पो.शिर्डी, ता. रहाता, जिला–अहमदनगर, (महाराष्ट्र)

मुद्रक :
....
....
....
....
....

सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन
(..........प्रति)

प्राप्ति स्थान

श्री साईबाबा संस्थान, शिर्डी, पो. शिर्डी, जि. अहमदनगर (महाराष्ट्र)
श्री साईबाबा संस्थान, मुबंई कार्यालय, साईनिकेतन, ८०४ बी, डॉ.आंबेडकर मार्ग, दादर, मुबंई–४०००१४

त्वदीयं वस्तु, गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये
की विनम्र भावे से
श्री सच्चिदानन्द सद्गुरू श्री साईनाथ
महाराज के श्रीचरणों में सादर और
सश्रद्धा समर्पित

निवेदन

परब्रम्ह परमेश्वर ने जब पुण्यतोया भागीरथी को भारत–भूमि में प्रकट होने के साथ ही यह वरदान दिया कि जो पापी तुम्हारे पवित्र जल में स्नान करेगा, उसके समस्त पाप नष्ट हो जायेंगे तो गंगा जी ने प्रतिवाद किया। "प्रभु! तब तो समस्त पापियों के पापों से बोझिल और दुःखी हो जाऊँगी," गंगा जी ने कहा। विष्णु भगवान ने व्यवस्था दी–" जब तुम्हारे जल में कोई सन्त स्नान करेगा, तो समस्त पाप–समूह क्षार हो जायेगा। "

भारतीय वाङ्.मय में सन्तों की कितनी महिमा बताई गई है, यह ऐसे अनेक दृष्टांतों से सिद्ध किया जा सकता है। भारत–भूमि में अनादिकाल से ऐसे विलक्षण सन्तों का आविर्भाव होता रहा है। जिन्होंने परब्रम्ह का साक्षात्कार प्राप्त किया और निःस्वार्थ भाव से आजीवन लोककल्याण का कार्य करते हुए अन्त में अपना पार्थिव शरीर इतनी ही आसानी से त्याग दिया जैसे हाथी के गले से माला गिर जाती है। "सन्त कबीर जतन सों ओढी ज्यो की त्यों धर दीन्हि चदरिया।"

भारत की लम्बी सन्त–परम्परा में हम ऐसे अनेकों ईश्वर–भक्त महात्माओं की गणना कर सकते है, जिनका नाम मात्र लेने से ही भक्तों के पाप नष्ट हो जाते है और उनका अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। ऐसी पुनीत सन्त–परम्परा में ही महाराष्ट्र के ब्रम्हलीन सन्त पूज्य श्री साईनाथ महाराज का भी श्रद्वालु भक्त बड़े आदर से स्मरण करते हैं। इस महान विभूति ने अपने जीवन–काल में लोक कल्याण के इतने अलौकिक कार्य संपन्न किये कि मुमुझूओं ने उन्हें 'चमत्कार' का नाम दिया। भगवान श्रीकृष्ण की कालियामर्दन–लीला को हम चमत्कार कहे तो उनका महत्व और आध्यामिक रहस्य घटा देते हैं। श्री साईनाथ महाराज की लीलाओं में भी जन–कल्याण के लिए आध्यात्मिक रहस्य निहित रहता था।

सन्तों की महिमा गाते हुए राम–भक्त गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है–'सत् संगति संसृति कर अंता।' लेकिन, सन्त के सान्निध्य में आकर ही यदि हम तद्रूप न हुए तो लाभ कैसे हो सकता है। तद्रूप होने के लिए सन्त द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलना और उनके गुण–गान करना सबसे सुगम उपाय है। इसी उद्देश्य से श्री साईंनाथ महाराज के पावन चरित्र को कई मराठी–भाषी भक्तों ने लिपि–बद्व कर अपनी लेखनी को पवित्र किया है। भारत में ऐसे सन्त कम ही हुए है, जिनके उपदेशों का प्रचार करने के लिए अथवा भक्तों को सन्मार्ग पर लाने के उद्देश्य से उनसे संबंधित साहित्य का प्रतिमाह नियमित प्रकाशन होता है। पर, श्रीसाईंनाथ महाराज के संबंध में ऐसा ही हो रहा है, जबकि उन्होने अपने जीवन–काल में अपने नाम या मत से कोई नया संप्रदाय नहीं चलाया। न ही आज भी उनके नाम से कोई संप्रदाय चल रहा है। तथापि श्रीसाईंनाथ महाराज के पावन चरित्र से सहस्त्रों मुमुझू सन्मार्ग की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा पा रहे हैं और उनका कल्याण हो रहा है।

यद्यपि मराठी और अंग्रेजी में श्रीसाईंनाथ महाराज के संबंध में प्रचुरमात्रा में साहित्य उपलब्ध है एवं उसकी अभिवृद्वि भी निरंतर हो रही है, तथापि देश की राष्ट्र–भाषा में अभी तक श्री साईंनाथ महाराज के कल्याणकारी चरित्र का प्रकाशन नहीं हुआ था। अतः श्री साईंनाथ महाराज की कृपा और प्रेरणा से "श्री साईंलीलामृत" का यह हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने का आयोजन किया गया है, ताकि अधिकाधिक मुमुझू सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त होने की प्रेरणा पा सकें। सम्भव है, अहिन्दी भाषी होने के नाते मेरे इस प्रयास में कुछ भूलें रह गई हों, फिर भी मैं आशाा करता हूँ कि

गऊ बच्छ का ज्ञान गहि, दूध रहै लौ लाड़ ।
सींग पूँछ पग परिहरै, अस्थन लागै धाइ ।।

के अनुसार श्रद्वालु जन मेरी भूलों पर ध्यान न देकर तत्व की ओर

ही ध्यान देंगे।

श्री साईबाबा संस्थान, शिरडी के प्रबन्ध संरक्षक श्री नागेश आत्माराम सावंत और संयुक्त मंत्री श्री गजानन गोविन्द दाभोलकर का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने की अनुमति देकर मेरा कार्य सरल कर दिया। दिल्ली के एक तरूण व श्रद्धालु लेखक ने जो अपना नाम गोपनीय रखना चाहते है, हिन्दी अनुवाद के संशोधन में मुझे सहयोग दिया, उनके प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ । डिलाइट प्रेस, दिल्ली के संचालक श्री निरंजन स्वरूप सक्सेना का भी मैं अभारी हूँ। दिल्ली पुस्तक कमर्शियल प्रेस, दिल्ली के संचालक श्री भारत स्वरूप सक्सेना तथा श्री जगदीश स्वरूप सक्सेना को भी मैं धन्यवाद देता हूँ , जिन्होंने इस पुस्तक के तिरंगे और इकरंगे चित्र छापने में सहयोग दिया है।

अंत में मैं आशा करता हूँ कि साईनाथ महाराज के इस पावन चरित्र का मनन कर अधिकाधिक हिन्दी–भाषी लाभान्वित होंगे और मेरे इस छोटे से प्रयास को सराहेंगे।

विनीत

रा. शां. चिटणीस

कूँचा साँधियान
१४३९ फव्वारा,
दिल्ली–६

प्रथम मराठी संस्करण की भूमिका

संसार की सुख–प्राप्ति के लिए मनुष्य का सतत् प्रयत्न चलता रहता है। हमें सुख की प्राप्ति किस प्रकार हो, इस सम्बन्ध में मनुष्य के मन में कुछ निश्चित कल्पनाएँ होती हैं। धन से सुख प्राप्त हो सकता है, ऐसा मान कर मनुष्य ने कनक की कामना की। स्त्री भी सुख का साधन है, ऐसा समझते हुए मनुष्य ने 'कामिनी' की भी कामना की। कुछ लोगों की सुखप्राप्ति की कल्पना लौकिक प्रतिष्ठा पर ही सीमित रही और वे कीर्ति सम्पादन करने के लिए ही सचेष्ट हुए। बन्दनीय जेहि जग जस पावा – उनका जीवन –सूत्र बन गया। परंतु देखने में यह आया कि ज्यों–ज्यों मनुष्य ने कनक, कामिनी और कीर्ति की प्राप्ति के लिए अविरल परिश्रम किया, त्यों–त्यों ये उसकी पहुँच से बाहर होते गये। अथक परिश्रम करने के बाद भी कनक, कामिनी और कीर्ति प्राप्त न होने से मनुष्य का दुःख बढ़ता गया। परंतु इससे भी आश्चर्य की बात देखने में यह आई की मनुष्य इनको प्राप्त करके भी दुःखी ही बना रहा असंख्य अपरिमित सम्पत्तिवान, कोटीपति, रनिवास में सैंकडो स्त्रियाँ रखने वाला विलासी राजा अथवा त्रिलोकी में कीर्ति पाने वाला एकाकी सेनापति, इन सभी के अन्तर टटोले जाएं तो ये यही कहेंगे कि हमें समाधान नहीं मिला, शांति नही मिली।

मानव का मन ऐसा है कि दिन के चौबीसों घन्टे, मास के तीसों दिन और वर्ष के बारहों महीने असंतुष्ट रहता है। हमें कोई वस्तु कैसे प्राप्त हो, यह आसक्ति और जो हमें प्राप्त नही हो रहा है उसके लिए दुःख यह मानस मन में सदा व्याप्त रहता है। इस स्थिति में सांसारिक दुःख, देह के रोग, मन की यातना–सभी से मनुष्य अत्यन्त पीडित रहता है। इसी कष्ट में कभी उसके मन में यह प्रश्न भी उठता है।

" क्या संसार में मेरे मन को शुद्ध समाधान देने वाला भी कोई साधन हो सकता है ?" इस विचार से मनुष्य जब अपने चारों ओर दृष्टि फेंकने लगा,

तब उसे एक आश्चर्यजनक बात दिखाई दी। यह क्या! जगत में नित्य-समाधान, नित्य-सुख प्राप्त कर लेने वाले महापुरूष दिखाई देते हैं, पर वे कनक, कामिनी और कीर्ति का सब प्रकार से पूर्ण त्याग कर चुके है। सुख आसक्ति में नहीं, अनासक्ति में है। बाह्य जगत् में नही, अन्तर्मन में है, ऐसा हमारे पुराने सन्त-महात्मा बराबर उपदेश करते आए हैं। परंतु, मनुष्य इतना अधीर और अदूरदर्शी है कि वह अधिकारी महात्माओं की स्पष्ट घोषणा को समझने की किंचित चेष्टा नही करता और पथ-भ्रष्ट होकर सदा कामिनी, कनक और कीर्ति में ही सुख की खोज के लिए मारा-मारा फिरता है।

इस अज्ञानता की ओर मनुष्य का ध्यान आकर्षित करने के लिए उसे वास्तविक सुख की प्राप्ति का मार्ग स्पष्ट दिखाने के लिए समय समय पर महान विभूतियों ने अवतार धारणं किया है। ऐसी ही अवतारी विभूतियों में से थे, श्री साई बाबा । साठ वर्ष पूर्व उन्होनें शिरडी को अपने नित्य-निवास के लिए चुना था और इहलीला के संवरण तक वे वहीं रहे। उनका जन्म कहाँ हुआ, माँ-बाप कौन थे ? उनकी शिक्षा कहाँ हुई, धर्म से वे हिन्दू थे अथवा मुस्लिम, इन बातों को कोई निर्णायक उत्तर देने के लिए प्रमाण उपलब्ध नहीं है। वह कहाँ के मूल निवासी थे, उनका जन्म का नाम क्या था ? उनका बालपन कैसे व्यतीत हुआ और उनकी वृद्धि कहाँ हुई, इस सम्बन्ध में भी कोई प्रमाणिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। लोगों के लिए अप्रसिद्ध, अज्ञात छोटे से गाँव में निवास करते हुए और सम्पति का ठाट-बाट तथा पाँडित्य की कीर्ति का कोई बाह्य आडम्बर न रखते हुए भी इस महापुरूष ने अपने ही ढंग से शिरडी में आने से अपने निर्वाणकाल पर्यंत लाखों जिज्ञासुओं के अन्तःकरण अपनी ओर आकर्षित किए तथा उनके संसार-ताप विदग्ध हृदयों को समाधानकारक शीतलता प्रदान की, यह कैसे आश्चर्य की बात है। पर इस बात पर आश्चर्य क्यों न हो ? अक्षानांधकार में लडखडाती, गिरती पडती मानव जाति को सत्य का प्रकाश दिखा कर सन्मार्ग की ओर लाने वाली

अवतारी विभूति को प्रारम्भ में जिस स्थान पर उपेक्षा मिली, वह हमेशा के लिए वही का कैसे हो गया! हजारो वर्ष से जिसके तत्वोपदेशों को ग्रहण कर असंख्य जीवों का परम कल्याण हुआ, उन्हीं भगवान श्रीकृष्ण का जन्म क्या कारागृह की कोठरी में नही हुआ ? आधा संसार आज जिस के आगे अपना विनम्र मस्तक झुकाता है, उस ईसा मसीह का जन्म भी क्या पशुशाला में नहीं हुआ ? संसार के सब भागों में आज जिनका उपदेशामृत शनैःशनै, पर अधिकाधिक व्यापक क्षेत्र में फैलता जा रहा है। उन्हीं श्री रामकृष्ण परमहंस का अवतार–कार्य क्या एक छोटे–से गाँव में चन्द्रमौलि की झौपडी से शुरू नहीं हुआ ? पर संसार के लिए अज्ञात परिस्थितियों में अपना लौकिक जीवन आरम्भ करने वाली इस महान विभूति के अवतार कार्य का उज्जवल दीपक आज जगत के कोने–कोने में अपना प्रकाश पहुँचा रहा है। रात्रि के प्रशान्त समय में जब आकाश से ओस–कण गिरते है तो उनकी आवाज किसी को सुनाई नही देती। परन्तु प्रातःकाल उन्हीं ओस कणों से सारे पुष्प विकसित और प्रफुल्लित दृष्टिगत होते है। उसी प्रकार महान पुरूषों का कार्य बाजे–गाजे के साथ नहीं, अत्यन्त शान्ति के साथ होता रहता है। उनका कार्य मनुष्य के मन को विकसित करने और शाश्वत सुख देने वाला होता है।

श्रीसाई बाबा के चरित्र का जो अध्ययन करेंगे, उन्हें ज्ञात होगा कि मानव जाति की व्यथा से व्यथित होकर उसका दुःख दूर करने में श्री बाबा के जीवन का एक–एक क्षण किस प्रकार व्यतीत होता था। मनुष्य को उसकी दीन स्थिति से बाहर लाकर उसे 'आत्मानन्द–साम्राज्य' का सिंहासन प्राप्त करने का मार्ग दिखाने वाला यह महात्मा स्वतः भिक्षावृत्ति द्वारा निर्वाह करता था, लकड़ी के एक तख्ते पर सोता था और एक उपेक्षित मस्जिद में पड़ा रहता था। परन्तु जिस किसी वस्तु का उसने स्पर्श किया, वह वस्तु आज भी उसके दैवी स्पर्श दिव्य तेज प्राप्त कर रही है। उस वस्तु में मानव कष्टमय

जीवन को दिलासा देने का विलक्षण सामर्थ्य उत्पन्न हुआ है।

श्री बाबा ने अपनी ओर से तत्वज्ञान का कोई विशिष्ट, स्वतंत्र मार्ग नहीं चलाया। 'षड् दर्शन' की भाँति 'साईदर्शन' जैसी तत्व–विवेचना करने वाली कोई नयी शाखा उत्पन्न नहीं हुई। पर, उनके तमाम जीवन में ही तत्व–ज्ञान के सम्पूर्ण व महान साक्षात्कार का अनुभव दृष्टिगत होता है। उनके चरित्र में अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ देखने को मिलती है। इन घटनाओं को पढ़ते हुए पाठक को चाहे वही रोमांचकारी विस्मय क्यों न हो, जो अरबी के रोचक, रहस्यपूर्ण आख्यानों में प्राप्त है, पर, इन चमत्कारों में श्री बाबा की लीलाओं का अद्भुत रहस्य सन्निहित है। इन चमत्कारों में श्री बाबा की दीन वत्सलता, अनासक्ति, ज्वलंत वैराग्यवृति, चित्त की समता और आत्मतृप्ति का दर्शन होता है। इन बातों में ही श्री बाबा की अलौकिक विभूति का महत्व प्रकट होता है।

प्रस्तुत पुस्तक के इक्कीस अध्यायों में श्री साई बाबा के जीवन के अत्यन्त उद्बोधक प्रसंग सरल और रोचक भाषा में लिखे गये है। बाबा की भक्ति से प्रेरित होकर ही लेखक महोदय ने इन प्रसंगों को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है। इसमें उनका उद्देश्य उपदेश करने अथवा प्रचार करने का नहीं रहा है। बाबा के जीवन की जो–जो घटनाएँ स्वयं उन्हें अत्यंत बोधपूर्ण व हृदयस्पर्शी प्रतीत हुई और जिनसे उनके मन को बोध मिला, उन्हें ही इस पुस्तक में स्थान दिया गया है। इन घटनाओं को लिखते हुए लेखक स्वयं उनके रंग में रंग गया है। इसलिए इन्हें पढ़ते समय लेखक के आंतरिक ऊहापोह का स्पर्श पाकर पाठ्क भी रंग गया तो यह स्वाभाविक ही रहेगा।" हम तो केवल बाबा की कथा कह रहे है, उसमें से पाठक अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार ही उपदेश ग्रहण करेंगे, हमारा काम प्रवचन करने का नहीं, वरन् निवेदन करने का है," ऐसा लेखक का आग्रह है। इसी दृष्टिकोण से उन्होंने श्री बाबा का जो जीवनचरित्र लिखा है, उसमें पाठक को बीच–बीच में श्री

साईबाबा की जीवनदृष्टि का दर्शन भी होगा। उनका यह सहज और स्वाभाविक स्फूर्ति–जन्य प्रयास निश्चय ही सरस व मनोज्ञ बन पडा है।

श्री बाबा के अलौलिक अवतार कार्यो की दिशा कैसी होती थी अथवा उनका प्रकार क्या होता था ? इसका लेखक ने स्वाभाविक वर्णन किया है। पृष्ठ १२ पर लेखक महोदय ने कहा है– "बाबा के अनेकों भक्त उन्हें एक सिद्व साधक ही नही मानते थे; वरन् परमेश्वर का अवतार मानते थे। पर, श्री बाबा ने उपदेश करते हुए स्वयं अपने मुँह से ऐसा कभी अधिकारपूर्ण नही कहा। अपने लिए सदा "अल्ला का सेवक" और "बन्दा" जैसे शब्दों का प्रयोग करते थे। वे स्वयं ऐसा मानते थे कि "मुझ पर मेरे गुरू की पूर्ण कृपा है। मैं तो केवल निमित्त मात्र हूँ। गुरू की कृपा और आर्शीर्वाद से मैं भक्तों को संकट से मुक्त करता हूँ और उन्हें सन्मार्ग की दिशा दिखाता हूँ। साठ वर्ष के लम्बे समय में उनका भक्त समुदाय हजारों की संख्या में बढ़ा, परन्तु किसी एक भी व्यक्ति के सामने उन्होंने "मैं ही सब कुछ हूँ या मैं स्वयं परमेश्वर हूँ" ऐसे उद्गार प्रकट नहीं किए। मै तो परमेश्वर की आज्ञा का पालन करता हूँ। मैं स्वयं उस दयाधन का तुच्छ सेवक हूँ। ऐसा वे सार्वजनिक रूप से स्वीकार करते थे। केवल मुँह से बाते बनाने की अपेक्षा श्री बाबा का झुकाव हाथ से काम करके दिखाने की ओर रहता था। बाबा ने धर्मोपदेशकों की भांति लम्बे–लम्बे प्रवचन या उपदेश करने का कभी प्रयत्न नहीं किया। सहज रूप से उन्होंने तो एकाध बार लीला करके ही दिखाई और इसका गहन गूढ़ अर्थ समझने के लिए भक्तगणों को अपनी बुद्दि लगानी पड़ती थी। श्री बाबा की संपूर्ण लीला को एक ही स्थान पर संकलित करना सम्भव नहीं जान पड़ता। बाबा की लीलाएँ ऐसे अतर्क्य सामर्थ्य से परिपूर्ण होती थी कि उनके लिए "अनोरणीयान् महतो महीयान्" की उक्ति ही ठीक बैठती है। इसमें सन्देह नहीं कि यह 'श्री साईलीलामृत' कथा पढ़कर पाठकों के मन में कुछ समय तक के लिए संसार–ताप भूल जायेंगे और वे अंतःकरण

को चिर समाधान देने वाला ईश्वर–भक्ति का मार्ग पा जायेंगे। नित्य–सुख प्राप्ति के लिए प्राचीन ऋषियों ने "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यों मत्नव्यों निदिध्यासितव्यः" का मार्ग बताया है। आत्मदर्शन करने के लिए उसका श्रवण करो, नित्य मनन करो और निदिध्यासन करो। पर आज के युग में आत्म–दर्शन करने के लिए यह मार्ग सर्वसुलभ नहीं है। पर अनेक साधु–संतों व अवतारी पुरूषों ने इनके लिए एकमात्र भक्ति–मार्ग ही उज्जवल किया है। इस मार्ग का अवलंब लेने के लिए एक ही शब्द बदलना क्या पर्याप्त और कालोचित नहीं है ?" श्री साई बाबा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यों मत्नव्यों निदिध्यासितव्यः।"

मुंबई
अनन्त चतुर्दशी,
शके, १८७५

अध्यक्ष,
श्री साई बाबा संस्थान, शिर्डी
विश्वस्त–व्यवस्था, शिर्डी

वक्तव्य

यह बड़े हर्ष की बात है कि दिल्ली के श्री.रा.शां. चिटणीस ने मराठी पुस्तक ''श्री साईलीलामृत'' का हिन्दीभाषियों के लिए अनुवाद किया है। श्री सदगुरू साईनाथ महाराज की प्रेरणा और आशीर्वाद से ही यह महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ है। श्री साईबाबा संस्थान, शिरडी की ओर से मैं इस पुस्तक का स्वागत करता हूँ और अनुवादक को धन्यवाद देता हूँ। मुझे पूर्ण आशा है कि हिन्दी के पाठक इस पुस्तक की उपयोगिता को सहर्ष स्वीकार करेंगे।

....

....

....

श्री साईलीलाममृत

विषय-सूची

अध्याय	शीर्षक	पृष्ठ कमांक
१.	अद्‌भुत सत्पुरूष	१
२.	सूत्रधार गुरू	१४
३.	गुरू चरणो की गंगा-यमुना	२१
४.	दक्षिणा का रहस्य	३३
५.	अपूर्व योग-सामर्थ्य	३९
६.	श्री साई महाराज का ब्रम्ह तेज	५०
७.	आज्ञा का महत्व	५४
८.	उपदेश की अमृतनिधि	६०
९.	शिरडी के धन्वंतरि	६८
१०.	ऊदी का दिव्य प्रभाव	७६
११.	ऊदी के चमत्कार	८९
१२.	शिरडी का काया-कल्प	९७
१३.	अंतर्ज्ञानी श्री साईबाबा	१०७
१४.	पंचमहाभूतों पर अधिकार	११७
१५.	अलौकिक शिक्षा-पद्धति	१२७
१६.	भक्तजनों के साथ लीला-विनोद	१३९
१७.	स्वप्न में साक्षात्कार	१५३
१८.	अध्यात्म-प्राप्ति का मार्ग-दर्शन	१६८
१९.	श्री साई महाराज का परब्रम्हा-निवास	१७९
२०.	विरहाश्रुओं की बाढ	१८७
२१.	श्री साई की बोधामृत-पूर्ण सूक्तियाँ	१९१

श्री साईलीलाममृत
प्रथम अध्याय
अद्‌भुत सत्पुरूष

गुरूर्ब्रम्हा गुरूर्विष्णु गुरूर्देवो महेश्वरः ।
गुरूः साक्षात्परब्रम्ह तस्मै श्री गुरूवे नमः ।।

हमारा भारतवर्ष अत्यन्त प्राचीन काल से ही संत–साहित्य के लिए सुप्रसिद्ध है। हजारों संत इस पुण्य–भूमि पर प्रकट हुए अपनी–अपनी विशिष्ट पद्धति से अपना अवतार–कार्य सम्पन्न करते हुए वे लोक–जाग्रति कर ब्रम्हा–लीन हो गये। यदि हम अपने प्राचीन सनातन धर्म का सूक्ष्म अध्ययन करें तो पायेंगे कि समय समय पर इस पुण्य भारत–भूमि पर अवतीर्ण अनेक अधिकारी व्यक्तियों ने इस विश्व की गहन–गूढ़ पहेली को स्वयं ही हल नहीं किया, प्रत्युत् जिस सत्य का उन्होंने उद्‌घाटन किया, उसका भावुक अन्तःकरण वाले संसार–ग्रस्त प्राणियों को भी दर्शन कराया। सन्तों की यह शिक्षा जीवात्मा और परमात्मा को जोड़ने वाली कड़ी के समान ही है। सन्त पुरूष वास्तव में मार्गदर्शक गुरू है। महाराष्ट्र के सर्वश्री ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम आदि सन्तों ने हमें भक्ति का सच्चा मार्ग दिखाया। श्री समर्थ रामदास स्वामी जी ने तो राज–कारण अपना मोह–निद्रा–ग्रस्त राष्ट्र की आँखें ही नही खोली, वरन् हमारी उस कर्म–भूमि पर मानव धर्म के अत्यन्त पवित्र और मूल्यवान सत्य को प्रतिष्ठित कर लोगों को परमेश्वर प्राप्ति का उत्कृष्ट मार्ग बताया। यही लक्ष्य उनके जीवन की परिणति बना।

श्री समर्थ स्वामी रामदास जी के पश्चात दो सौ वर्ष समाप्त होते–होते ही श्री अवधूत दत्तात्रेय इस पुण्य–भूमि पर श्री सदगुरू साई बाबा के रूप में पुनः अवर्तीण हुए। सन् १८३७ से १९१८ पर्यन्त ८० वर्षो की काल मर्यादा में हिंदू–मुसलमान तथा अन्य धर्मो के असंख्य भावुक लोगों को सन्मार्ग की ओर प्रर्वत्त करने का श्री साई महाराज का कार्य निस्संदेह

पुण्यतोया भागीरथी के पवित्र अविरत प्रवाह की भाँति ही सतत्, अद्भुत और रहस्यमय ढंग से चलता रहा। श्री साईनाथ एक अवतारी पुरूष थे। उनका जन्म कहाँ हुआ, उनके परमपूज्य माता–पिता कौन थे और उनकी जन्म की जाति और धर्म क्या था, आदि प्रश्न आज भी अगम्य बने हुए है। इसीलिए उनका पवित्र जीवन–चरित्र तथा उनकी लीलाएँ अत्यंत हृदयस्पर्शी और मन को बरबस मोहित करने वाली बनी हुई है।

कुछ श्रद्धालु भक्तों का यह मत है कि महाराष्ट्र के नाथ–संप्रदाय से संबंधित श्री साईनाथ वास्तव में नाथ ही थे, जो वर्तमान युग में पुनः इस पवित्र पृथ्वी पर प्रकट हुए। वे अयोनिज (जो मैथुनी सृष्टि से परे हो) थे। श्री साई महाराज की लीलाओं तथा उनकी अद्भुत शक्ति का यदि तटस्थ पवित्र भाव से मनन, अध्ययन किया जाय; तो अंतःकरण में यह भावना उत्पन्न होती है कि श्री साईबाबा एक महान् अवतारी पुरूष थे। यद्यपि उन्होंने साढे तीन हाथ के पार्थिव शरीर का सन् १९१८ में त्याग किया, तथापि भावुक भक्तों के लिए वे आज भी अजर–अमर है। वे आज भी अपने भक्तों को स्वप्न में या जागृतावस्था में प्रत्यक्ष दर्शन देते हुए प्रतीत होते है। समाधि स्थल पर उनकी दिव्य अस्थियाँ आज, इस क्षण भी प्रेमी भक्तों के कानों में मंजुल नाद करती प्रतीत होती हैं। यही कारण है कि आज सभी दिशाओं से हजारों लोग शिरडी क्षेत्र की यात्रा के लिए जाते हुए दृष्टिगत् होते है। क्या यह श्री साईबाबा की दिव्य विभूति का ही चमत्कार और साक्षात्कार नही है ?

महाराष्ट्र प्रदेश के औरंगाबाद जिले में 'धुपखेडा' नाम एक छोटा सा गाँव है। उस गाँव के धने जंगलों में ठीक दोपहर के समय चाँदभाई नामक एक धनी व्यापारी व्याकुल, मारा–मारा फिर रहा था। उसकी घोडी जंगल में कही खो गई थी, इसीलिए वह अत्यंत दुःखी था। वह घोड़ी उसे बहुत प्यारी थी। जंगल के सभी दुर्गम मार्गो में तथा उन स्थानों पर जहाँ जल सुलभता से उपलब्ध था, घोड़ी की असफल खोज के पश्चात् वह दुःखी मन से, मुँह लटकाए, अपने गाँव को वापिस जाने के लिए मुडा ही था, कि अकस्मात् उसकी दृष्टि एक वृक्ष के नीचे ध्यानावस्था में बैठे हुए एक दिव्य देहधारी

युवक पर पडी। उस युवक की दिव्य कांति तथा सुदृढ़ शारीरिक सौंदर्य को देखकर चाँदभाई को बड़ा आनंद हुआ। वह एक क्षण अपनी प्रिय घोड़ी के खो जाने का दुःख भूल गया। श्रद्धापूर्वक विनत हो उसने उस ध्यानावस्थित युवक को सादर सलाम किया। उस दिव्य नवयुवक का वेश वहाँ के रीति–रिवाज को देखते हुए मुसलमानों जैसा था। अतः उसके दर्शन कर चाँदभाई के मन में यह संस्कार जागे कि यह युवक कोई बैरागी फकीर है। इसी भाव से चाँदभाई ने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर उस युवक को पुनः सलाम किया। उस तेजस्वी नवयुवक ने चाँदभाई को संबोधित कर उसे चिलम पीने के लिए आमंत्रित किया और साथ ही सामने की झाड़ी की ओर इंगित कर कहा, "देखो, तुम्हारी घोड़ी सामने की झाड़ी के पीछे बड़े मजे से घास चर रही है। व्यर्थ ही क्यों भटक रहे हो ?

चाँदभाई के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उस युवक द्वारा दिखाई गई झाडी के पास उसकी घोड़ी सचमुच ही शांत स्वभाव से घास चर रही थी। चाँदभाई उसे पकड़कर ले आया। उसके नेत्रों में आनंदाश्रू छा गये। वैसे ही सजल नेत्रों से उसने पुनः एक बार उस बैरागी युवक को सलाम किया। उस दिव्य देहधारी युवक ने चाँदभाई को बडे प्रेम से पास बैठाया और उससे चिलम सुलगाने के लिए कहा। चाँदभाई के सामने एक बडा प्रश्न उपस्थित हो गया। उसके पास चिलम की सारी सामग्री तो थी, पर तंबाकू सुलगाने के लिए आँच नही थी। चाँदभाई ने कुछ क्षण किंकर्तव्यतिमूढ़ता और बैचेनी में बीते। तभी उस युवक ने अपनी दिव्य शक्ति से चाँदभाई की कठिनाई को जानकर समीप ही रखा हुआ अपना चिमटा जमीन पर दे मारा। जैसे शांत सागर में सहसा बड़वानल भड़क उठता है, वैसे ही उस हरी–भरी घास से आच्छादित भूमि पर लाल–लाल धधकते हुए आँच के अंगारे फैल गये। उन्हें देखकर चाँदभाई दंग रह गया। दोनों ने ही पूर्ण आनन्द के साथ चिलम के कश लगाये।

चाँदभाई के मन में यह धारणा घर कर गई कि हो न हो, यह युवक कोई सिद्ध औलिया है। इसी विश्वास के साथ चाँदभाई ने उस युवक से अपने घर चलने का बहुत आग्रह किया। परन्तु उस युवक ने यह कह कर कि तीन दिन पश्चात् वह स्वयं उसके घर जायेगा, चाँदभाई से छुट्टी ली। चाँदभाई घोड़ी लेकर प्रसन्नता से घर लौट आया। घर पहुँचने पर उसने जंगल में मिले औलिया की आश्चर्य भरी कहानी अपने गाँव वालों को सुनायी। चाँदभाई का अनुभव सुनते ही सभी लोगों के मन में उस तरूण औलिया के दर्शन पाने की तीव्र उत्कंठा जागृत हो उठी। लगभग उन्हीं दिनों चाँदभाई की पत्नि के भांजे का विवाह तय हुआ। लड़की शिरडी गाँव की थी। जब घर में धूमधाम से विवाह की तैयारियाँ हो रही थी, तो एक दिन अकस्मात् वही जंगल में देखा गया तेजस्वी युवक बैरागी वहाँ आकर खड़ा हो गया। सारे गाँव वालों ने उसका प्रेम से स्वागत सत्कार किया। चाँदभाई के घर से बारात शिरडी प्रस्थान करने ही वाली थी। कहते है, "जब साधु–सन्त घर में प्रवेश करते है तो वह दिन दिवाली–दशहरे की भाँति ही आनन्द व सुखदायक होता है।" घर पर उस युवक साधु का अनायास ही आगमन हुआ था, अतः उस यथार्थ में एक शुभ योग समझ कर चाँदभाई ने उस युवक को अपने ही घर ठहराया। बारात बडी सजधज और बाजे–गाजे के साथ शिरडी गाँव की ओर चल पडी। वह तेजस्वी युवक भी सब लोगों के साथ हो लिया।

शिरडी गाँव की सीमा पर खंडोबा का एक पुराना मंदिर था। उस मंदिर के आँगन में ही चाँदभाई के सब बारातियों ने अपना डेरा डाल दिया, पर मंदिर के पुजारी ने उस बैरागी फकीर को मंदिर में प्रवेश करने की अनुज्ञा नहीं दी। युवक के शरीर पर शुभ्र श्वेत कफनी (बिना बाँह का लम्बा ढीला–ढाला कुर्ता) तथा मस्तक पर बँधे सफेद रूमाल को देखकर पुजारी की यह मिथ्या धारणा हो गई कि यह युवक मुसलमान है, और इसीलिए उसने उसे मंदिर में प्रवेश करने से रोक दिया। इसमें पुजारी का भी वैसे कोई

दोष नहीं था। उधर वह बाल ब्रम्हचारी मान अपमान की भावना से बिल्कुल अप्रभावित, चुपचाप मंदिर के बाहर एक वट–वृक्ष के नीचे बैठ कर अपनी चिलम पीने लगा। संयोग से उसी समय शिरडी गाँव के एक सदगृहस्थ और उस खंडोबा–मंदिर के स्वामी म्हालसापति सुनार नित्य नियमानुसार वहाँ आए। वे खंडोबा के अनन्य भक्त थे। शिरडी गाँव एक बडी सड़क के किनारे बसा था। इसलिए वहाँ लोगों का आना–जाना बराबर बना रहता था। गाँव में भी पर्याप्त चहल–पहल रहती थी। म्हालसापति गाँव में आने वाले साधु–सन्तों, गुसाई–बैरागियों की, इतना ही नही, फकीर–मौलवियों की भी बड़ी आस्थापूर्वक आवभगत किया करते थे। मानो यह उनका स्वभाव बन गया। बड़े अनुभवी होने के कारण वह किसी भी मनुष्य की परख करने में अत्यंत कुशल थे। वृक्ष के नीचे बैठे उस दिव्य युवक पर जब म्हालसापति की दृष्टि पड़ी तो वह बरबस उसकी ओर आकर्षित हुए। सोलह वर्ष के उस कोमल युवक के नेत्रों में प्रखर, किंतु उतना ही सात्विक तेज देखकर म्हालसापति ने अनुमान लगाया कि यह कोई छोटा–मोटा फकीर नहीं है। ऐसी अन्तःप्रेरणा होते ही म्हालसापति ने तुरंत अत्यन्त स्नेह – आदरयुक्त स्वर से पुकारा, "आओ साई!" यही साई नाम उस युवक ने अपने जीवन के अन्त तक धारण किया।

बाल्यावस्था में इतने चमत्कारी ढंग से शिरडी में प्रकट हुई उस युवक की मंगलमूर्ति आगे अपनी अत्यन्त रहस्यमयी लीलाओं तथा सदुपदेशों के कारण "श्री सद्गुरू साईनाथ महाराज" के नाम से प्रसिद्व हुई तथा अपना नाम अमर कर गई। वहीं उन्होंने चाँदभाई का साथ छोड़ दिया और म्हालसापति के संग वे शिरडी गाँव में गये। गाँव में म्हालसापति ने अपने दो मित्रों, काशीराम शिंपी तथा आप्पा जागले से साई की भेंट करवाई। शिरडी गाँव में प्रवेश करने के समय इन्ही तीन सज्जनों से श्री साई महाराज का सर्वप्रथम परिचय हुआ और वे तीनों ही श्री साँई के अनन्य भक्त बन गये।

म्हालसापति को आगे बहुत वर्षों तक श्री साईमहाराज के दुर्लभ सत्संग का अलभ्य लाभ प्राप्त हुआ, किंतु काशीराम तथा आप्पा जागले कुछ ही वर्षों बाद परलोकवासी हो गए। संयोग की बात है। इन दोनों की एक ही दिन मृत्यु हुई। परन्तु इसे केवल संयोग कहने के बजाय श्री बाबा का आशीर्वाद कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

काशीराम ने श्री साई की तन,मन,धन से सेवा की थी। आरंभ में श्री साई महाराज को सफेद कफनी पहनने का अधिक शौक था। किन्तु काशीराम की इच्छा पूर्ण करने के लिए उन्होंने विशेष ढंग से सिलवाई गई गेरूआ अथवा हरे रंग की कफनी पहनने की परिपाटी आरंभ की। शिरडी में आने के पश्चात् श्री साई महाराज अपना अधिकांश समय प्रायः एक नीम–वृक्ष के नीचे बैठकर बिताते थे। (आजकल यह स्थान "गुरू–पादुका–स्थान" के नाम से प्रसिद्व है।)

जिस नीम–वृक्ष के नीचे श्री साई सदैव बैठा करते थे, वह वृक्ष आज भी शिरडी में विद्यमान है। आरंभ में इसी स्थान पर श्री साई महाराज का अपने भक्तों से उपदेशात्मक संलाप हुआ करता था। इस वृक्ष की जिस शाखा के नीचे श्री साई का आसन रहता था, उस शाखा के नीम के पत्ते आज भी स्वाद में अपेक्षाकृत कम कड़वें है। तथा अन्य सभी शाखाओं के पत्ते अधिक कड़वे है। इस स्थान के संबंध में एक आख्यायिका प्रसिद्ध है। एक बार एक भक्त ने श्री बाबा से प्रश्न किया–"बाबा, आप सदैव यहीं क्यों बैठे रहते है ?" इस पर श्री साई महाराज ने उत्तर दिया– "यहाँ मेरे गुरू की समाधि है।" इसके बाद भक्तों ने जब उस स्थान की खुदाई की तो एक सुरंग के नीचे बनी हुई समाधि देखकर उन्हें सचमुच ही बडा आश्चर्य हुआ। उस समाधि पर ताजे, सुगन्धित फूल चढे हुए थे और चारों ओर दीपक जल रहे थे। सन् १९१२ में डॉ. रामराव कोठारे जी ने श्री बाबा के लिये बम्बई से

पादुकाएँ बनवाकर भिजवा दी। उपसनी महाराज ने उनकी शुद्धि की तथा अन्य पवित्र संस्कार किये। तद्उपरांत श्री कमलाकर दीक्षित जी उन पादुकाओं को शिवजी (खंडोबा) के मंदिर से अपने मस्तक पर रखकर श्री बाबा के पास ले गये। श्री बाबा ने उन पादुकाओं का कर–स्पर्श किया और "ये सच्चिदानंद परमेश्वर के चरण है, इन्हें पवित्र नीम–वृक्ष के नीचे स्थान दीजिए," ऐसा आदेश दिया। उसी के अनुसार श्रावण मास में पूर्णिमा के शुभ मुहूर्त में उन पवित्र गुरूपादुकाओं की नीम–वृक्ष के नीचे प्रतिष्ठा की गई।'

इस सुप्रसिद्ध नीम–वृक्ष के निकट ही जो बंजर भूमि थी, वहाँ श्री साई बाबा ने एक फूलों का बगीचा तैयार किया। अपने ही हाथों से लगाये गए फूलों के पौधों को सींचने के लिए वे स्वयं ही कंधों पर गगरी भर–भर कर ज़ल लाया करते थे। इस समय की श्री साई महाराज की स्थिति को "फटा पुराना पहनता हूँ, जहाँ मर्जी हो, वहाँ बैठता हूँ दीवाने के भाँति भटकता हूँ, पर ब्रहमाण्ड निगलता हूँ–" से समझा जा सकता है। वे कभी गाँव के नाले के आसपास भटकते फिरते थे, कभी नीम–वृक्ष के नीचे आकार की ओर स्थिर निर्निमेष दृष्टि से देखते हुए ध्यान–मग्न अवस्था में बैठते थे या कभी लहर आयी तो किसी के भी खेत में घुसकर चिलम फूँकने के साथ–साथ केवल गप्पे लड़ाया करते थे।

शरीर पर जो वस्त्र होते थे, उनकी श्री साई को कभी सुध–बुध नहीं रहती थी। उनका आचरण एक दीवाने, सिड़ी मनुष्य की भाँति ही रहता था। लोग भी उन्हें "दीवाना फकीर" ही समझा करते थे और भरसक उपेक्षा की भावना से देखते थे। किन्तु संतों की अध्यात्मिक उन्नति के मार्ग मे यह भी एक अवस्था होती है। उनके दीवानेपन के कर्तत्यों का अर्थ समझना भी अति कठिन होता है। संतों का मार्ग बहुत गूढ़ होता है। उनके प्रत्यक्ष में अविवेकपूर्ण तथा विक्षिप्त दिखाई देने वाले गूढ़ आचरण का सही अर्थ समझने के लिए भक्तों का आध्यात्मिक दृष्टि से उतना ही उन्नत होना आवश्यक है।

शिरड़ी गाँव की जिन निवासियों के द्वार पर श्री साई बाबा मधुकरी

माँगते थे, वे सचमुच ही अत्यन्त भाग्यवान थे। हाथ में टीन का पुराना बर्तन और कपड़े की मैली झोली लेकर श्री साई दो–चार घरों से भिक्षा माँगते थे। जितना अन्न प्राप्त होता था, उससे मिलाकर अपनी क्षुधा शांत करते थे। उन्होंने स्वाद की ओर तो कभी ध्यान दिया ही नहीं। जो कुछ मिलता था, उसे संतोष से ग्रहण करते थे। वे प्रायः ठीक दोपहर के समय भिक्षा माँगते के लिए निकला करते थे। पर इसका भी कोई नित्य नियम नही था। उनका समस्त आचरण जैसे मौज के अधीन ही रहता था। मन में आया तो पेटभर भोजन कर लेते थे; नही तो इकटठा किया हुआ सारा अन्न एक कुंडी में रखकर मार्ग में भटकने वाले कुत्तों तथा पशुओं का भाग्य जगाते थे। दीन–दुर्बल गरीब स्त्रियों और बच्चे श्री बाबा की एकत्र की हुई रोटियाँ उनकी आखों के सामने चुरा ले जाते थे। किन्तु शांति के सागर एवं परम दयालु श्री साईबाबा उन्हें कभी कुछ नहीं कहते थे। श्री साई का मन सदैव संतुष्ट रहता था। माँग कर लाई हुई सारी भिक्षा वे उदारता से दीन–दुर्बल लोगों में बाँट देते थे और स्वयं जी भरकर पानी पीते और आकण्ठ भरे हुए पेट का दिखावा करने के लिए डकार लेते थे। प्रायः नित्य ही ऐसी घटना देखकर बायजाबाई नामक एक साध्वी स्त्री का कोमल हृदय विदीर्ण हो जाता था। यह स्त्री शिरडी गाँव के तात्या गणपत कोते पाटील की माँ थी। वह चटनी, रोटी तथा थोडी सी सब्जी एक टोकरी में लेकर सिर पर रख कर लेती और नित्य श्री साई महाराज के पीछे–पीछे जंगल में चली जाती। श्री बाबा की खोज में उसे कई बार दो–दो कोस धूप में इधर–उधर भटकना पडता था। किसी नाले के किनारे झाड़ी में ध्यानमग्न स्थिति में शांति से बैठे हुए श्री साई महाराज के आगे बायजाबाई केले के पत्ते पर टोकरी में लाया हुआ भोजन रख देती थी और श्री बाबा को उसे ग्रहण करने के लिए आग्रह करती थी। यदि लहर आई तो श्री साई चुपचाप भोजन कर लेते थे, अन्यथा क्रोध में आकर बायजाबाई को मारने के लिए दौडते थे। परंतु बायजाबाई का अध्यवसाय तथा उसकी

भक्ति सचमुच ही स्पर्धा की वस्तु थी। वह भी शांति से उनका क्रोध सहन करती थी और अन्त में श्री बाबा को दो–चार ग्रास खाने के लिये बाध्य कर देती थी। कभी–कभी तो वह उन्हें एक छोटा–सा बच्चा समझकर स्वयं अपने हाथो से खिलाया करती थी। श्री साई महाराज अन्न ग्रहण नहीं करते थे तो वह स्वयं भी भोजन नहीं करती थी, ऐसा उनका नियम था। बायजाबाई ने अपनी मृत्यु तक इस नियम का दृढ़ता से निर्वाह किया।

कुछ वर्षों के पश्चात् श्री साई महाराज ने बायजाबाई का प्रेम देखकर ग्राम के समीप ही एक पुरानी तथा जीर्ण–शीर्ण मस्जिद में अपना आसन स्थिर किया। इस प्रकार श्री बाबा के पीछे–पीछे फिरने में बायजाबाई को जो कष्ट होता था, वह दूर हो गया। स्व. बायजाबाई के सुपुत्र श्री तात्या पाटील को भी अपनी अखंड गुरूसेवा का उत्तम फल प्राप्त हुआ और उन्हें भी सद्गति मिली।

गाँव की जिस मस्जिद को श्री साई महाराज ने अपना निवास स्थान बनाया था, वह उस समय बिल्कुल विनष्टप्राय अवस्था में थी। गाँव का कोई भी मनुष्य वहाँ फटकता नहीं था। वहाँ किसी मुसलमान पीर के अस्तित्व का चिन्ह या पुरानी कब्र आदि कुछ भी नहीं था। केवल मिट्टी की चार दीवारें तथा ऊपर खपरैल का एक छप्पर था। श्री साई महाराज जब से इस स्थान पर रहने आये, तभी से उनकी दिनचर्या में थोड़ी नियमितता तथा व्यवस्था आ गई। गाँव के भक्त लोग भी अधिक संख्या में उनके पास आने लगे। शिष्यों ने उस स्थान को नित्य साफ सुथरा रखने और उसे गोबर–मिटटी से लीपने का कार्य सेवाभाव से अपने ऊपर ले लिया। श्री बाबा ने भी उनके इस कार्य में किसी प्रकार से रूकावट नही डाली। श्री साई महाराज ने अपने सहवास से पुनीत हुए उस स्थान को 'द्वारकामाई' का नाम दिया। वहाँ एक घंटा बाँधा गया। राम–नाम का जयघोष आरंभ हुआ और अग्निदेवता को प्रसन्न

करने के लिए भिक्षा द्वारा प्राप्त लकड़ियों से अक्षय धूनी प्रज्वलित की गई। श्री बाबा के मंगल आशीर्वाद से आज भी धूनी अखण्ड, एक क्षण के लिये भी न बुझते हुए, जल रही है और उस से उत्पन्न हुई भस्म हजारों लाखों भक्तों के अंतःकरण को शांति तथा समाधान प्रदान कर रही है। श्री साई महाराज का उठन–बैठन नित्य द्वारकामाई में ही रहता था तथा सोने का स्थान एक रात को द्वारकामाई में तथा एक रात निकट ही स्थित 'चावड़ी' (पड़ाव या चटटी) में रहता था। शिरडी आगमन के पश्चात् सर्व प्रथम जिन म्हालसापति से श्री साई महाराज की भेंट हुई थी, वह श्री बाबा के साथ नित्य द्वारकामाई में सोते थे। रात्रि में एक–दो बजे तक गुरू–शिष्य का भाँति–भाँति के गूढ़ विषयों पर वाद–विवाद हुआ करता था।

श्री साई महाराज को दीप जलाकर प्रकाश करने का बड़ा चाव था। प्रतिदिन संध्या के समय वे गाँव के दुकानदारों से तेल की भिक्षा माँगने के लिये जाते थे। दुकानदारों के द्वारा दिया हुआ तेल मिट्टी के दियों में डालकर द्वारकामाई के दोनों ओर सर्वत्र प्रकाश करते थे और स्वयं सामने ही एक पत्थर की भव्य शिला पर बैठकर दूर से ही प्रकाश का आनंद लेते थे।

जब यह कार्यक्रम नित्य–प्रति होने लगा तो गाँव के दुकानदारों ने तंग आकर एक दिन यह निश्चय किया कि श्री बाबा को तेल न दिया जाय। नित्य नियमानुसार जब उनका दीवाना फकीर तेल माँगने के लिए बाजार में निकला, तो किसी ने भी उसे तेल नही दिया। कुछ दुकानदारों ने तो श्री बाबा को फटकार कर उन्हें दुकान से बाहर निकाल दिया। मुख से एक शब्द का भी उच्चारण किये बिना श्री साई महाराज द्वारकामाई लौट आये। अपने बाँये हाथ की मुठ्ठी पर ठोड़ी रखे हुए वह विचार–मग्न बैठ गए। फिर एकाएक झटके के साथ उठकर खडे हुए और अपना उद्योग आरम्भ किया। मिट्टी के बने हुए समस्त दियों में उन्होंने रूई की वर्तिकाएँ रख दी। फिर उस टीन के बर्तन में जो थोड़ा बहुत तेल था, उसमें जल मिलाकर उस सारे तेल मिश्रित जल को पी गए। इसके बाद फिर उस टीन के बर्तन में उन्होंने जल उघल

दिया और उसी जल को थोड़ा–थोड़ा हर एक दीप में डालने लगे। सब दियों में पानी डालकर श्री बाबा ने सारे दिए जलाकर दिखाये।गाँव के सभी हठकर्मी दुकानदार तथा अन्य लोग वही खड़े–खड़े उस दीवाने फकीर का वह व्यर्थ का उद्योग देख रहे थे। पर, तेल के स्थान पर पानी से जले दिए देखकर उन सबकी गर्दने लज्जा से झुक गई। वे आश्चर्यचकित रह गये। पानी से जलाए गए मिट्‌टी के दिए रातभर जलते रहे। इस चमत्कार को देखकर सब की आँखे खुल गई। 'चमत्कार के बिना नमस्कार नही, यह कहावत ठीक ही है। सब दुकानदारों को अपने किये हुए कृत्य पर घोर पश्चाताप् हुआ। उन्होंने सजल नयनों से श्री साई महाराज से क्षमा–याचना की और वे उनके चरणों पर गिर पड़े। श्री बाबा ने भी उदार अंतःकरण से उनके अपराध के लिए उन्हें क्षमा किया और सदुपदेश दिया। एकाएक जैसे किसी ने जादू या मंत्र का प्रयोग किया गया हो, श्री साई महाराज का यह चमत्कार सर्वत्र विख्यात हो गया, और लोगों की भावनाएँ बदल गईं। भक्तपरिवार अधिकाधिक बढ़ता ही गया और श्री साई महाराज का नाम सब छोटे–बड़े लोगों की जिव्हा पर चढ़ गया।

जिस दिन श्री साई बाबा चावड़ी में सोते थे, उस दिन ब्रम्हमुहूर्त में उनकी आरती करने की प्रथा भक्त लोगो ने आरम्भ की। आरती के बाद भक्त लोग बाजे–गाजे के साथ उन्हें द्वारकामाई में लाते थे। यह दृश्य जिन्होनें अपनी आखों से देखा था, उनका कहना है कि उस काल में सूर्य की कोमल किरणों के प्रकाशमान होने से पूर्व ही, संधि–काल में श्री साई का मंगल–दर्शन निश्चय ही अत्यन्त मोहक तथा नयंनाभिराम होता था। आरती के समय उनके मुख पर दिव्य तेज प्रदीप्त हो उठता था। उनकी कांन्ति अति तेजपुंज दिखाई देती थी। ऐसे समय श्री साई महाराज बहुधा शांत रहते थे। पर किसी–किसी अवसर पर वह इतने क्रोधित दिखाई देते थे, मानो उन्होंने नृसिंहावतार ही धारण किया हो उस समय उनके पास जाने का साहस उनके निकटतम भक्त लोगों में से किसी को नहीं होता था। विशाल सागर

की भाँति उनकी मन:स्थिति की भी उताल लहरे उठती थी। एक क्षण में शांत निर्मल तो दूसरे ही क्षण में भयानक तूफान। उद्वेलित मन:स्थिति के इन क्षणों में वे द्वारकामाई से चावड़ी तक तीव्र गति से चक्कर लगाते थे। परंतु कुछ समय के बाद शांत होकर पत्थर की शिला पर बैठ जाते थे।

प्रातःकाल श्री बाबा हाथ–मुँह धोकर थोड़ा समय गाँव में जाकर पूर्वनिश्चित घरों से भिक्षा माँगने में व्यतीत करते थे। तत्पश्चात् 'लेंडीबाग' की ओर चल देते थे। श्री साई महाराज के भक्त परिवार में एक कुष्ठरोगी भागोजी भी था। श्री बाबा जब 'लेंडीबाग' जाते थें, तब भागोजी उन पर छत्र धरे हुए 'लेंडीबाग' में प्रवेश करते थे और वहाँ घंटा–डेढ़ घंटा बिताते थे। श्री साई महाराज़ ने अपने साथ 'लेंडीबाग' में किसी को भी प्रवेश नही करने दिया। प्रकटतः तो वे प्राप्त कर्मो से निवृत्त होने लिये ही उस बाग में जाते थे, पर वहाँ अल्प समय के लिये भी क्यों न हो, वे सम्भवतः लोगों से दूर रहकर एकांत में सिद्धिसाधना करते होंगे।

श्री बाबा के बाग से लौटने के पश्चात् दोपहर की आरती होती थी और उसके उपरांत सब लोग भोजन करते थे। भक्त लोगों का परिवार जैसे–जैसे बढ़ता गया, वैसे–वैसे श्री साई महाराज का क्षेत्र तथा प्रभाव चंद्रकला की भांति शनैःशनैः बढता गया। थोड़े समय दोपहर तथा संध्या बेला में श्री बाबा भक्त लोगों के बीच बैठकर इधर–उधर की बातें करते थे। उनकी बोलने की पद्धति अनौखी एवं विशिष्ट प्रकार की होती थी। उन्हें अष्टसिद्धियाँ प्राप्त हुईं थी, इसमें तिल भर भी संशय नहीं किया जा सकता। अपने सम्मुख बैठे हुए। किसी भी छोटे–बड़े व्यक्ति के मन की भली–बुरी भावनाओं को वे सही–सही जान लेते थे और थोडी व्याजोक्ति के साथ सब के सामने उनकी चर्चा करते थे। जिस व्यक्ति से उन की बातों का सम्बन्ध होता था, वह अपने मन में सब कुछ समझ कर श्री साई महाराज के चरणों में अपना मस्तक झुका देता था। श्री बाबा के कई भक्त उन्हें साधकों के लिए सिद्ध पुरुष से भी बढ़ कर साक्षात् परमेश्वर का अवतार ही समझते थे। पर श्री साई महाराज

बोलते या उपदेश करते समय कभी भी इस प्रकार के अधिकार का दावा नहीं करते थे। उनके प्रवचनों में सदैव "परमेश्वर का सेवक" अल्ला का बन्दां आदि शब्दों का प्रयोग होता था। वे स्वयं कहा करते थे, "मुझ पर मेरे गुरू की पूर्ण कृपा है। मैं तो निमित्तमात्र हूँ। गुरू की कृपा तथा उनके आशीर्वाद से मैं भक्तों को संकटों से मुक्त करता हूँ और उन्हें सन्मार्ग की दिशा बतलाता हूँ।" बाद के साठ वर्षों में उनके शिष्य संप्रदाय में हजारों की वृद्धि हुई; किन्तु उनमें से किसी भी व्यक्ति के समक्ष श्री साई महाराज ने "अनल हक्क" याने 'मैं परमेश्वर हूँ' इस प्रकार के उद्धार अपने मुख से व्यक्त नही किए। "मैं तो केवल परमात्मा से परिचय करवाता हूँ।, मै स्वयं दयावान परमात्मा का बंदा, सेवक हूँ" यही वे सब से कहते थे। केवल मुख से ही कुछ कहने के बजाय हाथों से भाव दिखाने की ओर ही श्री साई महाराज का झुकाव अधिक होता था। किसी धर्मोपदेशक की भाँति लम्बे–लम्बे प्रवचन या व्याख्यान देकर सदुपदेश करने का श्री बाबा ने कभी प्रयत्न नहीं किया। सहज ढंग से ही कोई लीला वे कर बैठते थे और उसका गहन गूढ़ अर्थ समझने के लिए अन्य लोगों को तो अपनी बुद्धि पर जोर डालना पडता था।

=========

दुसरा अध्याय

सूत्रधार गुरू

सन् १९१० के लगभग एक चमत्कारपूर्ण घटना हुई। एक दिन प्रातःकाल सो कर उठते ही श्री साई बाबा द्वाराकामाई में आकर एक गेहूँ की बोरी के पास गए और बहुत से गेहूँ निकाल कर स्वयं चक्की लेकर पीसने बैठ गये। अपनी कफनी की आस्तीन ऊपर उठाकर श्री साई महाराज शक्ति लगाकर बराबर गेहूँ पीसते रहे। उनका यह विलक्षण आचरण देखकर लोग आश्चर्य में डूब गये। पर किसी का यह पूछने का साहस नही हो रहा था कि "बाबा, आप क्यों कष्ट कर रहे हैं ? आज गेहूँ पीसने का क्या प्रायोजन है ?" श्री बाबा चुपचाप गेहूँ पीसते रहे। शीघ्र ही यह समाचार शिरडी गाँव में फैल गया और चार सुहागिन स्त्रियाँ दौड़ती हुई द्वारकामाई में आ पहुँची। उन्होंने अत्यंत ढिठाई से तमाशा देखने वाले लोगों को दूर हटा दिया और तत्काल भीतर जाकर श्री बाबा को भी चक्की पर से हटा कर वे चारों स्त्रियाँ लोक गीत गाती हुई स्वयं गेहूँ पीसने लगी। पहले तो श्री बाबा जरा अप्रसन्न से दिखाई दिये, किन्तु उन स्त्रियों की भक्ति तथा प्रेम को देखकर वे एक और हट कर चुपचाप बैठ गये। पर्याप्त मात्रा में आटा पीसने के उपरान्त उन स्त्रियों को कुछ थकान अनुभव हुई। उन्होंने सोचा अपनी नित्य पद्धति के अनुसार श्री साई बाबा तो यह आटा भी सब लोगों में बाँट ही देंगे, इसलिये क्यों न स्वयं ही आटे का बँटवारा कर लिया जाय। बस, उन्होंने आटे के चार बराबर हिस्से किए और प्रत्येक स्त्री अपना अपना हिस्सा इकट्ठा करने लगी। तभी इतनी देर से शांत बैठे हुए श्री बाबा एकाएक क्रोधित हो उठे। उन स्त्रियों को अपशब्द कह कर इकट्ठा लोगों के बीच उन्हें पर्याप्त लज्जित किया और वह सारा गेहूँ का आटा गाँव की सीमा के बाहर फेंक आने का आदेश दे दिया। लज्जा से गड़ी हुई वे स्त्रियाँ श्री बाबा

की आज्ञानुसार सारा आटा गाँव के बाहर फेंक आयी।

गाँव की सुध—बुध रखने वाले कुछ मुखिया लोगों ने तत्काल ही श्री साई महाराज के इस रहस्यमय आचरण का अर्थ लगाने की चेष्टा की। उस समय शिरडी गाँव के आस—पास हैजे का भयानक रोग विकराल रूप में फैल रहा था। अपने गाँव में इस रोग का प्रकोप न हो, इसलिए श्री बाबा ने यह आटे की योजना की थी। गाँव के बाहर आटा फेंक कर उन्होंने विलक्षण ढंग से "दिशा—बन्धन" किया था औंर आश्चर्य की बात तो यह हुई कि शिरडी गाँव में रोग का प्रवेश ही नहीं हुआ। श्री साई की इस गेहूँ पीसने की क्रिया में भी कितना महान् तत्व भरा हुआ था। श्री सद्गुरू साई केवल आटा ही नहीं पीसते थे, प्रत्युत अपने सब भक्तो के पाप, उनकी सारी मानसिक तथा शारीरिक व्यथाएँ भी अपने हाथों से पीस डालते थे। भक्तों की चक्की के कर्म और भक्ति के दो पाटों के घर्षण को श्री बाबा ने अपने हाथ में पकड़ते हुए ज्ञानरूपी डंडे से गति दी। श्री साई महाराज का दृढ़ विश्वास था कि इसके परिणाम—स्वरूप भक्तों के हृदय में बसा अहंकार नष्ट होगा तथा सत्व, रज, तम, इत्यादि गुणों पर समुचित नियत्रंण होकर संसार के जाल में फँसे हुए मानवों को परमात्मा के विश्वरूप का दर्शन एवं ब्रम्हानंद का अनुभव प्राप्त होगा।

श्री साई बाबा के शिरडी में आगमन से पूर्व ही वहाँ देवीदास नाम के साधु रहते थे। उनकी गणना भी अधिकारी व्यक्तियों में होती थी। उनकी योग्यता की धाक ऐसी बैठी थी की रामेश्वरम् पंढरपूर आदि पवित्र तीर्थस्थानों में जाने वाले साधु—संत भी उनसे मिलने के लिए आते थे। श्री साई बाबा भी प्रारंभ में उनसे बार—बार भेंट किया करते थे। बहुत देर तक उन दोनों की एकान्त मे गूढ़ विषयों पर चर्चा भी होती थी। फिर कुछ दिनों के उपरान्त जानकीदास नाम के एक अन्य सत्पुरूष शिरडी गाँव में आये। वह भी एक अधिकारी व्यक्ति ही थे, क्योंकि, श्री साई महाराज स्वयं ही उनसे मिलने के

लिए गये और उन्हें अपने निवास स्थान पर ले आये। बहुत दिनों तक जानकीदस जी और श्री बाबा के मध्य गूढ़ ज्ञान के विषय पर वार्ता होती रही।

एक बार कोपरगाँव के निकट पुणतांबे गाँव के सन्त गंगागीर महाराज शिरडी पधारे। नित्य नियमानुसार श्री साई बाबा नीमवृक्ष के निकट ही अपने बाग में दोनों ही हाथों में पानी से भरी हुई गगरी लिए हुए पौधों में पानी दे रहे थे। यह दृश्य देखकर गंगागीर महाराज ने आश्चर्य प्रकट किया और उपस्थित गाँव वालों से कहा "अरे, यह मूर्ति यहाँ कब आई ? यह तो एक अत्यन्त मूल्यवान रत्न है। इनकी योग्यता असाधारण है। धन्य भाग्य है शिरडी का। आज यह मनुष्य पानी भर रहा है, किन्तु यह कोई सामान्य पुरूष नहीं है। आप लोग सचमुच ही बड़े भाग्यवान है। आपके पूर्व जन्म के पुण्य–संचय के कारण ही यह रत्न यहाँ आया है। "गंगागीर महाराज के मुख से अकस्मात् निकले इन उद्‌गारों से एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है और वह यह कि उन्होंने श्री साई महाराज को पहचान लिया। श्री बाबा की योग्यता कितनी बड़ी है, इसका उनको पूर्ण ज्ञान हो चुका था। इसी कारण उन्होंने श्री साई महाराज को रत्न की उपमा दी। उस समय तक शिरडी के लोगों में भी श्री साई महाराज के प्रति प्रेम और आदर का भाव संचरित हो गया था। चन्दन की सुगंध जैसे चारों ही दिशाओं में फैल जाती है, वैसे ही श्री साई बाबा का कीर्ति–परिमल शिरडी गाँव के बाहर भी फैलने लगा। दूर–दूर से भक्त लोग सहज प्रेरणावश श्री बाबा के दर्शनों के लिये शिरडी आने लगे।

श्री गंगागीर महाराज के कथन की पुष्टि के लिये मानों कुछ दिनों बाद ही अक्कलकोट महाराज के शिष्य महन्त आनन्दनाथ श्री साई बाबा के दर्शनों के उद्‌देश्य से ही शिरडी आये।

एक बार माधवराव देशपांडे, दगडु गायके, नन्दराम मारवाड़ी तथा भागचन्द मारवाड़ी आदि श्री बाबा के भक्त येवला के निकटतस्थ सावगाँव से शिरडी की ओर आ रहे थे। उनकी बैलगाडी चलने ही वाली थी कि महन्त आनन्दनाथ एकाएक दौडते हुए आये और बलपूर्वक गाड़ी में बैठकर बोले "मैं भी शिरडी चलूगाँ।" लोगों ने उन्हे रोकने का भरसक प्रयास किया; परन्तु, उन्होनें अपना हठ नही छोड़ा। शिरडी में श्री साई महाराज से भेंट होने के पश्चात् लौटते समय महन्तजी ने भक्तों से कहा, "यह सच्चा हीरा है। इसका ठीक–ठीक मूल्य आपको कदापि ज्ञात नही हो सकता। यद्यपि आज यह कूड़े–करकट के ढेर पर पड़ा है, फिर भी यह अपने तेज से आप सब लोगों को चकाचौंध कर देगा।" श्री साई महाराज में पारस की भाँति लोहे को सोना बनाने की अद्भुत शक्ति विद्यमान थी, यह जानने के लिये उसी योग्यता का रत्न–पारखी भी होना चाहिए था। सामान्य व्यक्ति के लिए हीरे तथा बिल्लौर में अन्तर समझना कठिन है। श्री साई महाराज के चमत्कार, लीलाएँ तथा अनुभव देखने मात्र से ही लोगों की शंकाएँ मिट गई और भक्तों के मस्तक स्वाभाविक ढंग से ही श्री साई महाराज के चरणों में नत मस्तक हो गये।

श्री साई बाबा के दर्शन के लिए आये पुंडलीक नामक एक सद्गृहस्थ की कथा भी बहुत ध्यान देने योग्य है। यह गृहस्थ नांदेड(महाराष्ट्र) का रहने वाला था। एक दिन वह श्री वासुदेवनन्द सरस्वती के दर्शनों के लिए गया। वहाँ अन्य साधु–सन्तों के विषय में बाते होने लगी। श्री साई महाराज का भी उल्लेख हुआ। वहाँ एकत्रित भक्तों ने शीघ्र ही श्री साई के दर्शन के लिये जाने की अपनी–अपनी इच्छा प्रगट की। श्री वासुदेवानन्द महाराज स्वस्थ चित्त से भक्तों का संभाषण सुन रहे थे। अन्त में विदा होते समय पुंडलीक की ओर लक्ष्य करते हुए वे बोले–"तुम्हारी साई बाबा के दर्शन के लिए जाने की इच्छा है ना ? तो फिर विलम्ब क्यों ? अभी ही इन लोगों के साथ जाओ। वे हमारे बन्धु है। उन्हें हमारा नमस्कार पहुँचा दो और यह नारियल भी उन्हें

अर्पण करो।"

पुंडलीक को शिरडी जाने वाले लोगों का साथ मिल गया। वह तत्काल ही श्री साई महाराज के दर्शन के लिए शिरडी को चल पड़ा। कोपरगाँव पहुँच कर स्वल्पाहार करने के लिए सब लोग स्टेशन के बाहर एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। प्रवास में खाने के लिए पुंडलिक और उसके साथी भिन्न–भिन्न प्रकार के पदार्थ अपने साथ लाये थे। सारे खाद्य पदार्थो को मिश्रित करके वे सब खाने के लिए बैठ गये। पुंडलिक का एक मित्र घी में भुना हुआ मुरमुरे का चिवडा भी लाया था; उसमें मिर्च अधिक मात्रा में पड़ी थी। मिर्च का प्रभाव कम करने के लिए पुंडलिक के मित्रों ने सहज भाव से एक नारियल तोड़ लिया और गोला तोड़कर चिवड़े में मिला दिया। अब तो सब लोगों ने बडे स्वाद से चिवड़ा खा लिया। पुंडलिक को इस बात का स्मरण ही नहीं रहा कि यह नारियल श्री वासुदेवानन्दजी ने उसे श्री साईबाबा के दर्शनों के लिए दिया था। दोपहर को सब लोग शिरडी पहुँचे और श्री साई बाबा के दर्शनो के लिए गये। पुंडलिक को देखते ही श्री साई ने पहला प्रश्न किया–"हमारे बन्धु का दिया हुआ नारियल कहाँ है ? पुंडलिक एकदम असमंजस में पड गया और घबराकर श्री बाबा के चरणों पर गिर पडा। उसने मार्ग मे घटी सारी घटना का पूर्ण विवरण श्री बाबा को सुना दिया। जब पुंडलिक दूसरा नारियल लाने के लिए उठ ही रहा था तो उसे बैठने के लिए कहकर श्री साई महाराज बोले–"अब उस नारियल की समता दूसरा कोई नारियल कदापि नहीं कर सकता। आप सब लोगों ने उसे खाया, कोई बात नहीं आप सब मेरे ही तो हैं।"

सैंकड़ो मील दूर स्थित राजमहेन्द्री में हुई नारियल की यह घटना श्री साई महाराज को अपने अन्तर्ज्ञान से विदित हुई, यह तो सत्य है ही; पर श्री वासुदेवानन्द सरस्वती सदृश महन्त ने श्री बाबा का "हमारे बन्धु" कहकर जो उल्लेख किया, वह अधिक विचारणीय एवं महत्वपूर्ण है। अपने पूर्वाश्रम में किसी समय ये दोनों एक ही गुरू के पास अध्ययन करते होंगे और इसलिए

दोनों का गुरूबन्धुत्व का नाता होना सम्भव है।

श्री साई बाबा के गुरू के सम्बन्ध में कोई अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। शिष्यों को दृष्टान्त रूप से उपदेश करते समय श्रीसाई महाराज अपने गुरू का बारम्बार बयान किया है। वे कहते थे कि उन्होंने बारह वर्ष गुरू के घर रहकर तपस्या की और उनका अनुग्रह एवं आशीर्वाद प्राप्त किया। श्री सद्गुरू उपासनी महाराज ने जो निजी–जीवन–वृत्तान्त लिखा है, उसमें श्री साई महाराज के गुरू एक मुसलमान फकीर थे, ऐसा उल्लेख है। श्री साई महाराज की कफनी की वेशभूषा, व्यवहार की पद्धति तथा ऊर्दू भाषा में बोलने का ढंग देखते हुए यही निष्कर्ष निकला है कि जैसे उन्हें किसी मुसलमान फकीर का सान्निध्य प्राप्त हो चुका हो। परंतु स्वयं श्री साई महाराज के मुख से यह बात कभी प्रकट नहीं हुई कि उनके गुरू यवन थे। प्रत्युत श्री साई महाराज ने अपने गुरू का जो गुणगान किया है, उससे यही प्रमाणित होता है कि उनके गुरू उच्चकुलीन, बहुत ही ऊँचे पद पर पहुँचे हुए, ब्राम्हण जाति में उत्पन्न, अत्यन्त सुशील एवं ईश–चिंतन में सदैव निमग्न रहने वाले एक महान् पुरूष थे।

राधाबाई देशमुख नाम की एक वयोवृद्ध स्त्री श्री साई महाराज की सेवा करने के हेतु शिरडी में आई। श्री बाबा के प्रति उसके मन मे अपार भक्ति–भाव था। श्री साई महाराज को अपना गुरू बनाकर उनसे एकाध मंत्र या उपदेश प्राप्त करने का उसने दृढ़ निश्चय किया था। आरम्भ मे श्री बाबा ने उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया, किन्तु राधाबाई भी हठ पकड़े रही। अपने मन की इच्छा पूर्ण करने के लिए उसने आत्महत्या के अघोरी मार्ग का अवलम्ब लेने की ठानी। उसने अन्न–जल त्याग दिया और एक प्रकार से सत्याग्रह ही आरम्भ कर दिया। अपने हठ के कारण वह स्त्री सचमुच ही प्राणत्याग कर देगी, यह देखकर शामा जैसे प्रभावशाली व्यक्ति ने मध्यस्थता करने का प्रयत्न किया। श्री साईबाबा का कोमल अंतःकरण प्रेम से द्रवित हो गया। उन्होंने उस वृद्धा को अपने पास बुलाया और अत्यन्त प्रेम से दो–चार

समझदारी की बातें कहकर उपदेशामृत से उसे तृप्त कर दिया। राधाबाई को पूर्ण समाधान मिल गया और उसने अपना अनन त्याग दिया। इस अवसर पर श्री बाबा ने अपने गुरू का वर्णन किया तथा अन्य कुछ बातें कहीं, वे सब अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

श्री साई महाराज ने कहा "माँ! मेरे गुरू अत्यन्त दयालु अंतःकरण के महान सत्पुरूष थे। मैंने बहुत वर्षो तक तन–मन धन से अत्यंत निष्ठापूर्वक उनकी सेवा की। पर अन्त तक उन्होंने मेरे कान में एक भी मंत्र नही फूँका। मेरी सदैव यह आन्तरिक इच्छा रहती थी कि जीवन के अन्तिम क्षणों तक उनकी सेवा करूँ और उनसे उपदेश ग्रहण करूँ। किन्तु उनका मार्ग ही निराला था। अपने पेट के बच्चे की भाँति ही वह मुझसे ममता करते थे। ऐसे गुरू का मिलना भी पूर्व जन्म के पुण्य का ही फल समझना चाहिए। मेरे गुरूजी ध्यानावस्था में मेरी ओर एकाग्र चित्त से देखते हुए बैठ जाते थे और मै भी शांत निर्मल मन से उनके सम्मुख बैठ जाया करता था। उनके नेत्रों से निकलने वाले दिव्य तेज से मेरा अंतःकरण भर जाता था। इस प्रकार समाधि की सी स्थिति में मैं भूख–प्यास भूल जाता था। धीरे–धीरे अभ्यास से मुझे यह ज्ञात हुआ कि गुरू–चरणों में पूर्ण श्रद्धा एवं निष्ठा कैसे रख सकते है ? धीरे–धीरे अगाध सृष्टि–ज्ञान का जटिल रहस्य मुझे ज्ञात हुआ। सहनशीलता और धैर्य के महान् तत्व से मैं पूर्णतः परिचित हुआ। मेरे गुरू मुझ से अन्य किसी भी वस्तु की अपेक्षा नहीं रखते थे। मेरी देख–भाल करते हुए उन्होंने मुझे किसी भी प्रकार की असुविधा नहीं होने दी। वे सदैव मेरे निकट रहते थे। "कमठ अंड की नाई" वे मेरी सार–संभाल करते थे और वैसे ही वात्सल्य से, वे नेत्रों से प्रेमपूर्ण वात्सल्य बरसाते हुए मुझे संरक्षण देते थे। वे साथ–साथ गुप्त–सुप्त पद्धति से मेरे आध्यात्मिक ज्ञान की वृद्धि करते थे। मेरे परमपूज्य गुरू महाराज ने मुझे कभी–भी कोई मंत्र नहीं दिया तो मैं तुझे क्या मंत्र दूँ ? मैं मंत्र–तंत्र आदि कुछ नहीं जानता। किसी से भी मंत्रोपदेश

प्राप्त करने के झंझट में मत पड़ो। तुम अपने आचारविचार मेरी ओर एकाग्र करो। फिर तुम्हें सत्यमार्ग सरलता से ही दिखाई देगा और निश्चित रूप से तुम्हें परमार्थपद प्राप्त होगा। इस जगतपटल पर हम निमित्त–मात्र कठपुतलियाँ हैं। हमारा सूत्रधार गुरू है। सब कुछ करनेवाला वही है। अपने गुरू में अविचल श्रद्धा, निष्ठा रखने से ही हमारा उद्धार होगा। यह त्रिकाल सत्य है, कभी भी असत्य सिद्ध नहीं होगा।'' इस उपदेश से राधाबाई का पूर्ण समाधान हुआ, इसमें आश्चर्य ही क्या है !

==========

तीसरा अध्याय

गुरू-चरणों की गंगा-यमुना

भारत की पवित्र नदियों में कोपरगाँव कस्बे में बहने वाली गोदावरी नदी भी प्राचीनकाल से बहुत ही पवित्र समझी जाती है। अनादिकाल से हमारे महान् ऋषि–मुनियों ने इस नदी के किनारे बैठकर कठोर तप किये है। सन्त ज्ञानेश्वर जी ने भी गोदावरी के पुनीत तट पर वास किया था। कोपरगाँव के निकट गोदावरी नदी के पार लगभग नौ मील पर शिरडी गाँव बसा है। महाराष्ट्र के गाणगापुर, नृसिंहवाडी तथा औंदुंबर स्थानों की जिस प्रकार पवित्र तीर्थों के रूप में प्रतिष्ठा हुई हैं, उसी प्रकार श्री साई बाबा के चरण धूलिस्पर्श से शिरडी भी पवित्र तीर्थस्थल बन गया है। सन्त दामाजी ने पंढरपूर के समीपस्थ मंगलवेढे को पवित्र पद प्राप्त कराया, श्री समर्थ रामदास स्वामीजी ने सज्जनगड़ में हिन्दू–धर्म की पताका फहरा कर उसे अमर कर

दिया, श्री नृसिंह सरस्वतीजी ने नरसोबा की वाड़ी में अन्त तक निवास कर उस वाड़ी को ही एक अत्यन्त पवित्र तीर्थ स्थल की पदवी प्रदान कर दी, उसी प्रकार श्री सदगुरू साई महाराज के छः दशाब्दी तक निरन्तर पुनित वास ने ओर उनके भक्तों का कल्याण करने वाली सहस्त्रों लीलाओं ने शिरडी को भी दक्षिण का पावन काशी क्षेत्र बना दिया।

श्री साईबाबा के कारण ही शिरडी गाँव को असाधारण महत्व प्राप्त हुआ है। शिरडी के वृयोवद्ध लोग कहते है कि तरूणावस्था में श्री साई महाराज अत्यन्त सुन्दर और तेजस्वी दिखाई देते थे। देखते–देखते ही वे किसी भी व्यक्ति को अपने अद्‌भुत व्यक्तित्व से मोहित कर लेते थे। वैसे उनका स्वभाव बड़ा उग्र था। आरम्भ में तो वे किसी व्यक्ति का अपने समीप तक भी खड़ा नहीं होने देते थे। धनवान् या राजप्रसाद में पले हुए लोगों की वे किंचित् भी परवाह नही करते थे। पर निर्धन तथा सच्चरित्र भक्तों के साथ वे अत्यंत प्रेम और ममता का बर्ताव करते थे। दुर्जय एवं दुरस्तर संसार पर उन्होंने पूर्ण विजय प्राप्त की थी। श्री साई कभी कभी ऊपर से क्रोधावस्था में दिखाई देते थे, परंतु भीतर से तो वे दया और शांति के अगाध सागर थे। उनके ह्रदय में ज्ञान–भंडार मानो मूर्तिमत होकर विराजता था। वैष्णवों की उनमें प्रगाढ़ श्रद्धा थी। दान देने में वे मानो कर्ण के अवतार थे। उनकी गतिविधि एक चमत्कारी, उन्मत व्यक्ति के सदृश प्रतीत होती थी; क्योंकि वे सदैव आत्मस्वरूप में ही निमग्न रहते थे। ऐहिक, जड़ एवं नाशवान वस्तुओं में उनकी आस्था कभी नहीं देखी गई। उनका अन्तरंग स्वच्छ जल के सरोवर की भाँति शांत और निर्मल था, जिसका कोई भी भक्त स्वत्रन्त्रतापूर्वक पान कर सकता था। निर्धन–धनवान् के भेद–भाव से श्री साई महाराज आकाशवत् ही अलिप्त रहते थे। उनके मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द अत्यंत प्रभावशाली, मधुर एवं संजीवनी की भाँति ही होता था। वे सब प्रकार के लोगों में मिलजुल कर रहते थे। कथा–कीर्तन सुनने के लिए भी वे निर्दिष्ट स्थान

पर चले जाते थे और कोई भक्त बुलाता था तो गजल–कव्वालियों को भी बड़े प्रेम–भाव से सुनने बैठ जाते थे। यही नहीं, गाँव के लोक–नृत्यों तथा नाच–तमाशों में भी वे उपस्थित रहते थे। पर उनका अपनी चित्तवृत्तियों पर ऐसा नियंत्रण कडा था कि उनका मन एक क्षण के लिये भी चंचल नहीं होता था। अनन्त विशाल सागर की भाँति उनका हृदय भी अत्यंत विशाल एवं अगाध था। शिरडी छोडकर वे कभी बाहर नहीं गये, फिर भी संसार के सारे व्यवहार और घटनाओं का उन्हें पूर्ण ज्ञान रहता था।

श्री साई महाराज के दरबार में मूर्तिमंत जगदम्बाजी तथा सरस्वतीजी का सदैव वास रहता था। भक्तों को वे नित्य सैकड़ों बाते बताते थे और उस स्थिति में ही समाधि का आनन्द भी लेते थे। द्वारकामाई में प्रज्वलित धूनी के सम्मुख दीवार के सहारे जब श्री साई महाराज शांत चित्त से ध्यान–मग्न हो बैठते थे, तब वे पूर्णब्रम्ह–सिद्ध अवस्था में रहते थे; तथापि भक्तों को अपनी इस अवस्था का आभास तक नहीं होने देते थे। "मै केवल साधक अवस्था में ही हूँ" ऐसा दिखाने का वे प्रयत्न करते थे। श्री साई महाराज के नेत्रों में कुछ ऐसा दिव्य तेज था कि सामने आये किसी भी व्यक्ति के मन में छिपी हुई दुर्भावनाएँ या पापवासनाएँ उनकी दृष्टि के एक ही कटाक्ष से कपूर की भाँति उड़ जाती थी और वह व्यक्ति पश्चाताप् की अग्नि से ध्वस्त श्री साई के चरणों में अपना मस्तक झुका देता था।

श्री साईबाबा की एक विशेषता यह थी कि वे प्रत्येक भक्त को उसके इष्ट देवता के अनुरूप ही दिखाई देते थे। श्री साई किसी को गोकुल के मेघवर्ण श्यामसुंदर के रूप में दिखाई देते थे तो किसी 'विटठ्ल' भक्त को ऐसा चमत्कारी दृश्य दिखाई देता था, कि मानो पंढरी के विठोबा ही कमर पर हाथ रखे खडे हों। भक्तो के इस प्रकार के अनेक अनुभव हेमाडपंत ने अपने "श्री साई सच्चरित्र" नामक ग्रंथ में वर्णित किये है।

रायबहादुर हरि विनायक साठे श्री साई महाराज के परम भक्त थे। उन्होंने श्री बाबा के दर्शनों की लालसा से शिरडी आने वाले भक्तों की

सुविधा के लिए एक बडे भवन का निर्माण भी कराया है। श्री साठे जी के पास मेघा नाम का एक सेवक था। वह कट्टर शिव भक्त था। वह नित्य–नियम से शिवलिंग की पूजा करता था। एक बार रायबहादुर साठे ने मेघा को श्री साई बाबा की सेवा के लिए शिरडी भेजने की इच्छा व्यक्त की। मेघा शंकर की पूजा छोडकर एक फकीर की पूजा सेवा करने की अपने स्वामी की आज्ञा सुनकर अत्यंत दुखी हुआ। श्री साठे ज़ी ने उसे बहुत समझाया और श्री साई महाराज के सच्चे स्वरूप के विषय में उसे विस्तार से उपदेश किया। फलस्वरूप मेघा का कुछ समाधान हुआ और वह शिरडी की ओर चल पड़ा। मेघा के द्वारकामाई के प्रांगण मे पैर रखते ही श्री साई महाराज एकदम खडे हो गए और हाथ मे पत्थर लेकर क्रोधित हो गरज पडे–"खबरदार, ऊपर आया तो! चला जा। एक फकीर के पास क्यों आए हो ?

श्री साई महाराज ने प्रथम भेंट में ही मेघा के मन का भाव जान लिया और उसे शिवलिंग की पूजा करने का आदेश दे दिया। फिर तो मेघा श्री बाबा का परम भक्त बन गया। वह श्री सांई के नाम का 'शंकर–शंकर' के साथ जप किया करता था।

एक बार हाईकोर्ट के एक प्रसिद्ध वकील जब श्री साई महाराज के दर्शनों के लिए गये तो श्री साई बाबा बोल उठे "क्या कहना चाहिए ? श्री राम जय राम, जय जय राम।" श्री बाबा ने जब तीन–चार इस प्रकार राम–नाम का उच्चारण किया, तब कही वकील साहब के मस्तिष्क में प्रकाश हुआ। वे राम भक्त थे और कुछ वर्ष पूर्व उनके गुरू ने उन्हे "श्री राम जय राम जय जय राम मन्त्र का स्मरण दिलाकर संसार ताप त्रस्त उनकी भटकने वाली गाड़ी को सही मार्ग पर लाकर छोड़ दिया।"

इसी प्रकार ठाणा (मुम्बई) से आये हुए एक सज्जन से श्री साई महाराज ने कहा, "अरे जा, बजरंगबली की सेवा कर।" जब वह सज्जन श्री बाबा का दर्शन कर 'साठे–वाडा' मे लौटे तो वहाँ उपस्थित लोगों ने उनसे

प्रश्न किया, कि श्री बाबा ने उन्हें हुनमानजी की ही भक्ति करने का आदेश क्यों दिया ? तब उन्होंने उत्तर दिया,''श्री साई बाबा तो अन्तर्ज्ञानी सत्पुरूष है। मेरे मन का भाव जान कर उन्होंने मुझे जो उचित था, वही मार्ग दिखाया। मैं हनुमानजी का भक्त हूँ। ठाणे के प्रसिद्ध पंचमुख हनुमानजी के नित्य–नियमपूर्वक दर्शन किए बिना में अन्न भी ग्रहण नही करता।'' इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस व्यक्ति की जिस देवता से श्रद्धा–भक्ति होती थी, श्री साई उसे ही अधिक दृढ करते थे, जैसा कि एक कवि ने श्री बाबा की आरती में कहा भी है – ''हे दयाधन, जिसके मन में जैसा भाव होता है, वैसा ही तुम उसे अनुभव प्राप्त करा देते हो।''

सन् १९०९ दिसम्बर में एक डॉक्टर अपने मित्रों के साथ 'तमाशा' देखने शिरडी आये। 'तमाशा' इसलिए कि ये डॉक्टर राम–भक्त थे और अपने आपको स्नान–संध्या परायण कर्मकाण्डी ब्राह्मण समझते थे। उनकी छुआछूत की भावना भी बड़ी प्रबल थी और इसी कारण वे सोचते थे कि, ''हम उस फकीर की मस्जिद में नहीं जायेंगे और न उसके हाथ का प्रसाद ही ग्रहण करेंगे।'' इस शर्त पर ही वह डॉक्टर अपने मित्र के आग्रह पर केवल सैरसपाटा करने की भावना से शिरडी आये थे। डॉक्टर साहब के मित्र का श्री बाबा में पूर्ण विश्वास था। ''किसी भी बात के लिए दुराग्रह या हठ न करके आप जो योग्य एवं उचित समझे, वही करें – ''ऐसा कह कर डॉक्टर साहब का मित्र उन्हे साथ लेकर श्री साई महाराज के दर्शन कराने द्वारकामाई पहुँचा। स्वयं श्री बाबा के चरणों पर अपना मस्तक रख कर उसने जो पीछे मुड कर देखा तो उसके मित्र डॉक्टरसाहब भी श्री बाबा के चरणों पर अपना मस्तक नमाये हुऐ थे। यह अप्रत्याशित घटना देखकर डॉक्टर साहब के मित्र ने उनसे एकान्त में पूछा–''आपने भी साष्टांग नमस्कार कैसे किया ?''डॉक्टर साहब के नेत्रों में प्रेमाश्रु छलक आये थे। भावनावश कण्ठ में से अति विनीत एवं पश्चाताप भरी वाणी में बोले–''अरे, मैने तो सचमुच बडी भूल की थी। द्वारकामाई में प्रवेश करते ही मुझे बाबा के स्थान पर

श्री रामचन्द्रजी की मंगल–मूर्ति दिखाई दी। धन्य–धन्य, हे साई नाथ! तुम्हारी लीला अगाध है। इस पामर को क्षमा करो। पुनः कभी अपने मन में ऐसे अंहकार और गर्व का संचार न होने दूँगा।"

इस प्रकार श्री साई बाबा भक्तों को कल्याण का मार्ग का निर्देश करने के लिए नाना प्रकार के अत्यंत गूढ उपायों एवं स्वरूपों को काम में लाते थे। जैसे एक अष्टकोन हीरे की चमक चारों ओर भिन्न–भिन्न रंगो मे बिखरती प्रतीत होती है और रंगो की वह विविधता देखकर जिस प्रकार मन चकित, प्रफुल्लित हो उठता है वैसे ही श्री साई महाराज के भिन्न–भिन्न भावों एवं चमत्कारों को देखकर भक्त के मन में प्रसन्नता की लहरें उठती थीं।

अपनी पूर्ण युवावस्था में श्री साई एक हष्ट–पुष्ट पहलवान के सदृश दिखाई देते थे। मस्तक पर दोनों कानों तक झूलने वाले घुँघराले केशों से उनके तेज की अभिवृद्धि होती थी। मौज आने पर वे अपनी वेशभूषा में परिवर्तन भी करते थे। शिरडी में आने के बाद वे पहले तो कभी–कभी पहलवानों की भाँति तंग पायजामा और शेरवानी पहने दिखाई देते थे। उस समय शिरडी में मोहिउददीन नामक का एक मल्ल रहता था। उसे अखाड़े में उतर कर कुश्ती लड़ने का बड़ा शौक था। कुश्ती लडने के लिए उसे कोई अपनी बराबरी का उत्तम 'जोड़' नहीं मिलता तो अपने शरीर की खाज मिटाने के लिये वह अकारण ही किसी न किसी को छेड़ता फिरता था। ऐसे ही एक दिन साई महाराज और मोहिउद्दीन में किसी कारणवश कुछ कहा–सुनी हो गयी। देखते–देखते मामला एकदम हाथापाई पर आ गया। दोनों में अच्छी खासी भिडंत हो गई। मोहिउद्दीन तो एक प्रसिद्ध अनुभवी अखाड़ेबाज था। उसने श्री बाबा को जमीन पर पटककर बुरी तरह से पछाड़ा और चारोंखाने चित्त कर दिया। कुश्ती में इस पराजय से श्री साई महाराज के मन का कायाकल्प हुआ। उसी क्षण से श्री बाबा ने अपनी वेशभूषा तथा आचरण में क्रान्तिकारी परिवर्तन लिया। उन्होंने शरीर पर कफनी का परिधान ग्रहण किया, कमर पर मद्रासी लुंगी की भाँति तहमद लपेटा और मस्तक के घूँघराले

बाल सफेद रूमाल से बाँध लिये। रात्रि में सोने के लिये वे टाट की बोरी के टुकडे या चादर का उपयोग करने लगे। और यही भिक्षुक जैसा फटा पुराना बाना उन्होंने जीवन की अन्तिम क्षणों तक अपनाये रखा। मोहिउद्दीन पहलवान के साथ हुई कुश्ती तो केवल एक निमित्त थी। इस पराजय के कारण श्री साई महाराज ने अपनी कृतियों का विरोध किया, कहा जाता है कि श्री गंगागीर महाराज के साथ भी ऐसी ही एक घटना हुई थी। कुश्ती के अखाड़े में पराजित होकर उन्होंने खीझ व ग्लानि से सर्वसंग परित्याग कर संन्यास–आश्रम स्वीकार किया पुणतांबे गाँव के निकट अपने आश्रम की स्थापना की।

इस घटना के बाद श्री साई महाराज ने भी एक प्रकार से पूर्ण बैरागी वृत्ति अपना ली। स्वतंत्रता से लोगों से मिलना जुलना छोडकर वे एकान्त–प्रिय हो गये। दिन में भी पर्याप्त समय ध्यानमग्न अवस्था में रहने लगे। केवल पूछे गए प्रश्नों का इने–गिने शब्दों में ही उत्तर देते थे। दिन में अधिकतर नीम–वृक्ष की छाया में ध्यानमग्न बैठा करते थे। जब लोग उन्हें अधिक परेशान करने लगे तो वह वहाँ से उठ कर गाँव के बाहर, नाले के किनारे, एक बबूलवृक्ष के नीचे जाकर बैठने लगे। दोपहर के समय कभी–कभी मनःस्थिति अस्वस्थ होने पर कई बार जल्दी–जल्दी चक्कर लगाया करते थे। उस समय उनके शरीर में इतना वेग–संचार होता था, कि किसी भी मनुष्य के लिए उनके साथ–साथ चलना नितान्त असंभव था। मन कुछ शान्त हो जाने पर वे उठ कर सीधे नीमगाँव की ओर त्रिंबकजी डेंगले के घर चले जाते थे। त्रिंबकजी अथवा बाबासाहेब और उनके कनिष्ठ बन्धु नानासाहेब, इन दोनों से श्री बाबा को बड़ा प्रेम था। नानासाहेब की दो पत्नियाँ थी, तथापि वे निःसन्तान थे। दूसरी पत्नि से भी संतति होने के कोई लक्षण दिखाई नहीं देते थे। अन्त में श्री बाबा के मन में ही दया उत्पन्न हुई और उनके आशीर्वाद से नानासाहेब की दूसरी पत्नि ने एक पुत्र को जन्म दिया। इस कृपा–प्रसाद का यह परिणाम हुआ कि शिरडी गाँव के बाहर भी साई महाराज की कीर्ति

फैल गयी और दूर–दूर के लोग उनके दर्शनों के लिए आने लगे।

सर्वश्री नानासाहेब चाँदोरकर, केशव चिंदबर आदि लोग भी इस समय शिरडी में आये और श्री साई के एकनिष्ठ भक्त बन गये। श्री बाबा हर दूसरे दिन द्वारकामाई (मस्जिद) मे आकर सोते थे। वहाँ श्री बाबा की कफनी लुंगी, चिलम और तम्बाकू तथा टीन का एक पुराना लोटा, बस इतना ही सामान रहता था। श्री बाबा सिर पर एक सफेद कपड़ा कस कर बाँधते थे और उसमें चोटी की भाँति पीछे गाँठ बाँध कर उसे बाये कान के पीछे छोड देते थे! बैठने के लिए उन्होंने एक फटा–पुराना बोरी का टुकडा रखा था। सामने एक कोने में 'धुनी जलाकर उसी के सम्मुख दक्षिण की ओर मुख करके और बायाँ हाथ द्वारकामाई के कठहरे पर रखकर वे बैठा करते थे। अग्नि देव को प्रसन्न करने के लिये धूनी में निरंतर लकड़ियाँ जला कर होम–सा किया करते थे। उनके मुख से "अल्ला मालिक" का निरंतर जप होता रहता था। उस जीर्णशीर्ण दो–खनी मस्जिद का कुछ भक्तों ने सन् १९१२ में जीर्णोद्धार करा दिया। शिरडी गाँव के कुछ वृद्ध निवासियों का कथन है की इस मस्जिद में आसन लगाने से पूर्व श्री साई महाराज 'तकिया' (फारसी–फकीरों की कुटी) में बैठा करते थे और पैरों में धुधरू बाँधकर अति उत्कृष्ट नृत्य–गायन किया करते थे।

श्री साई महाराज के प्रमुख निष्काम भक्त–गण में नारायण गोविन्द चांदोरकर का विशिष्ट स्थान था। यह उस समय तहसीलदार के दफ्तर में चिटणीस (चिटनवीस यानी मुहर्रिर) थे। एक दिन कुलकर्णी नामक उनके एक मित्र ने शिरडी से लौटने के उपरान्त उनसे कहा कि श्री बाबा आपसे मिलना चाहते है। पहले तो नानासाहेब चांदोरकरजी ने अपने मित्र के कथन पर कोई विश्वास नही किया, उल्टे उसकी हंसी उडाई। किन्तु कुलकर्णी के शपथ लेकर दृढता से यह करने पर कि, "श्री बाबा ने आपको बुलाया है।" वे कृत–संकल्प हो शिरडी की ओर चल पडे। प्रथम भेंट में ही नानासाहेब के मन पर श्री साई महाराज का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वे उनके

अनन्यभक्त बन गए। वे बार–बार शिरडी जाकर श्री बाबा के बोधामृत का पान करने लगे। नानासाहेब की श्री साई मैं जैसी प्रगाढ़ श्रद्धा थी, वैसी ही श्री बाबा की भी उन पर बहुत कृपा थी। जब नानासाहेब का शिरडी में वास रहता था, तब उनमें और श्री बाबा में घण्टों तक वार्तालाप हुआ करता था। नानासाहेब विचित्र–विचित्र शंकाएँ उपस्थित करते थे और श्री साई उन्हें समाधानकारक उत्तर दिया करते थे। नानासाहेब का यह दृढ विश्वास था कि श्री साई महाराज ने अपनी आयु के प्रथम चरण में ही पर्याप्त स्वाध्याय किया होगा। एक बार जब नानासाहेब 'गीता' का ''तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया''(४/३४) श्लोक गुनगुना रहे थे, तब श्री साई ने सहज स्वभाव से सरल भाषा में एक घण्टें तक इस श्लोक की सुंदर व्याख्या की और इसका भली–भाँति स्पष्ट करके समझाया। नानासाहेब की शंका का समाधान हुआ और उन्हें यह विश्वास हो गया कि श्री बाबा ने ''भगवद्गीता'' का पूर्ण मनन, अध्ययन किया है। नानासाहेब ने आगे कई वर्षो तक श्री साई महाराज की एकनिष्ट भाव से सेवा की।

नानासाहेब द्वारा किए गए दो महत्वपूर्ण कार्यों के लिए उनका नाम श्री साई महाराज के भक्तों में विशेष रूप से चिरस्मरणीय बना रहेगा। उनका पहला कार्य यह था कि श्री बाबा जिस मस्जिद में बैठा करते थे, वह जीर्णवस्था में थी व नानासाहेब उसकी मरम्मत करवाना चाहते थे। स्वयं उपस्थित रहकर उसकी मरम्मत करवाने के लिए उन्हें अवकाश नही था, इसलिए उन्होंने यह कार्य निमोणकरजी के सुपुर्द कर दिया। अपने विचित्र स्वभाव के अनुसार श्री बाबा मस्जिद का जीर्णोद्धार करने की आज्ञा देने को तैयार नही हुए। अन्त में म्हालसापतिजी के विशेष आग्रह पर उन्होंने आज्ञा दे दी। पुरानी मस्जिद गिरा कर नई मस्जिद बनवाने का कार्य आरम्भ हुआ। परन्तु श्री साई महाराज बार–बार बाधा डालने लगे। कभी–कभी वे बना हुआ काम बिगाड़ देते थे। बड़े बड़े पत्थर, ईट, चूना इधर–उधर फेंक देते थे। श्री बाबा के इस रहस्यपूर्ण आचरण का केवल इतना ही अर्थ था कि वे अपने

लिए किसी विशाल, भव्य भवन का पृथक निर्माण करना नहीं चाहते थे। जो इमारत पुरानी थी, वे उसे ही कुछ ठीक अवस्था में करा देने के पक्ष में थें। अन्त में श्री बाबा इच्छानुसार ही द्वारकामाई का काम पूर्ण हो गया।

श्री साई महाराज उस समय नीमगाँव गये हुए थे। वहाँ से भक्त लोग उन्हें बाजे–गाजे के साथ उत्सव मनाते हुए शिरडी ले आये और बड़े उत्साह से शुभ मुहूर्त में किसी देवता की भाँति ही द्वारकामाई में श्री बाबा का प्रतिष्ठान किया गया। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए बढई कोंडाजी, गवाजी तथा तुकाराम इन तीनों भाईयों ने बड़ा परिश्रम किया। आगे भी श्री बाबा के समाधिकाल तक तुकाराम श्री बाबा की निरंतर सेवा करता रहा। रामनवमी के दिन जुलूस निकालने का प्रथम श्रेय इन्ही लोगों को है। आज भी वह उत्सव वैसे ही प्रचलित है।

नानासाहेब का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य यह था कि उन्होंने श्री साईबाबा की कीर्ति का सर्वत्र प्रसार किया और दूर–दूर के लोगों को श्री साईबाबा के भव्य व्यक्तित्व से परिचित करा दिया। उन्हें अपनी नौकरी के सिलसिले मे भ्रमण अधिक करना पड़ता था और वे भिन्न–भिन्न गाँवों मे जाया करते थे। जिस गाँव में जाते, वहाँ के लोगों से मिलकर वे उन्हें श्री साईबाबा की लीलाओं तथा उनके अलौलिक सामर्थ्य से अवगत् कराते। जिन लोगों के मन में श्री बाबा के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती थी, उन लोगों की वे श्री साई महाराज से भेंट करा देते थे और उन्हें श्री बाबा के आशीर्वाद का लाभ सहज ही प्राप्त हो जाता था। नानासाहेब के इस कार्य् के फलस्वरूप ही बम्बई, पूणा, ठाणा आदि नगरों के लोगों ने श्री साईबाबा के दर्शन का पुण्य लाभ लिया। यही कार्य आगे दासगणू महाराज ने तनिक भिन्न पद्धाति से किया।

श्री गणेश दत्तात्रेय सहस्त्रबुद्धे (दासगणु) महाराज पहले पुलिस के महकमे में नौकरी करते थे। गाने–बजाने और तमाशा दिखाने का उन्हें बडा शौक था। एक दिन वह नानासाहेब चाँदोरकर के साथ श्री साई महाराज के

दर्शनों के लिए आये। श्री बाबा की कृपादृष्टि का उन पर ऐसा विलक्षण प्रभाव हुआ कि उन्होंने अपनी नौकरी से तुरन्त–त्याग पत्र दे दिया। उन्होंने परमेश्वर–भक्ति को अपनाया और कीर्तन एवं कथा के माध्यम से वह सन्तों के कार्य का लोगो मे प्रचार करने लगे। स्वयं भी अत्युत्तम धर्मग्रन्थों की रचना कर दासगणू महाराज ने अत्यन्त ठोस कार्य किया है। महाराष्ट्र में स्थान–स्थान पर कीर्तन का आयोजन कर उन्होंने श्री साई महाराज के गुणगान की पताका सर्वत्र फहरा दी। दासगणू महाराज का यह मंगल कार्य आज श्री पूर्ववत् हो रहा है। श्री साई के हाथों से प्रत्यक्ष आशीर्वाद–प्राप्त और उनका साक्षात्कार किये हुये आज वे ही एकमात्र अधिकारी व्यक्ति है।

एक बार शुभ पर्वकाल आया देखकर दासगणू महाराज ने मन मे गंगा–यमुना के संगम पर तीर्थराज प्रयाग में स्नान करने का संकल्प उठा। शिरडी में भक्तों की गतिविधियाँ श्री बाबा की इच्छा के आधीन रहती थी। गंगा–स्नान के लिए जाने की अनुमति माँगने के अभिप्राय से दासगणू महाराज नम्रता से श्री साई महाराज के पास गये। श्री बाबा ने मधुरस्मृति से दासगणू जी की हँसी उड़ाते हुए कहा, "अरे पगले ! तीर्थ स्नान के लिये इतनी दूर जाने की क्या आवश्यकता है ? अपना प्रयाग तो यही है। परंतु मन में दृढ विश्वास होना चाहिये।" श्री साई महाराज के इतना कहते ही सचमुच एक अद्भुत चमत्कार हुआ। दासगणू महाराज जी ने श्री साई की आज्ञा शिराधार्थ मानकर उनके चरणों पर मस्तक रखा और पलभर में ही श्री साई महाराज के पैरो के दोनों अंगुठों में से गंगा–यमुना के पवित्र जल का स्त्रोत सा बहने लगा। यह चमत्कार देखकर दासगणूजी का हृदय भर आया। उनकी आँखो से आँसुओं की धारा बह चली और श्री साई की अगाध लीला देखकर मन की सम्पूर्ण आल्हाद भरी स्थिति में उन्होंने मराठी में एक भक्तिरसपूर्ण पद लिखा, जिसका भाव इस प्रकार है –

अघटित लीला कर दी गुरूजी तुम्हारी शक्ति अगाध।
कृपा–नाव–चढ़ जीव तैरते जग का जलधि अगाध।।
तुम्हारी दया यही पर देखा बेणीमाधव तीर्थ प्रयाग।
बही अंगूठों से गंगा–यमुना दोनों मेरा बड़भाग।।

==========

चौथा अध्याय

दक्षिणा का रहस्य

श्री साई महाराज के दर्शनों के लिए आने वाले लोगों के सकाम भक्तों की संख्या ही अधिक रहती थी। हर एक व्यक्ति किसी–न–किसी कारण से त्रस्त या पीड़ित होकर श्री साई के आशीर्वाद से अपने दुःखो का शमन करने के लिए ही शिरडी आता था। श्री बाबा भी ऐसे भक्तों की मनोकामनायें पूर्ण कर उनके दुःखी संतप्त मन को स्वभावतः ही अत्यंत कल्याण की ओर लगा देते थे। लोगों का उद्धार करना ही उनके जीवन का लक्ष्य था। उनके मन में भरी हुई बैरागी–वृत्ति की कोई सीमा नही थी। आरम्भिक काल में वे भिक्षा माँगते थे और तम्बाकू के लिए केवल अपने निकटवर्ती भक्तों से एक–दो पैसे ही स्वीकार करते थे। इसके उपरान्त उन्होंने दक्षिणा माँगना आरम्भ किया और जब उनके अवतार–कार्य की समाप्ति का समय आया तो उनका यह दक्षिणा माँगने का परिणाम अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था, यह निर्विवाद सत्य है। परंतु इसमें भी साई महाराज का निजी स्वार्थ नही था। श्री बाबा के दक्षिणा माँगने के पीछे कैसा पावन उद्‌देश्य था और उसमें कितना गहन अर्थ भरा हुआ था, यह लोगों को प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा ज्ञात हुआ। श्री बाबा भक्तों से दक्षिणा के रूप में रूपये लेते थे और वे सब जन–कल्याण के कार्यो मे ही व्यय कर देते थे। स्वयं वे बिल्कुल कोरे ही रहते थे। दक्षिणा के रूप में एकत्र हुए अधिकांश धन को वे धर्मार्थ खर्च करते थे और कुछ रूपया ऐसे निर्धन भक्तों मे भी बाँट देते थे, जिन्हें धन की अत्यंत आवश्यकता होती थी। अनेक भक्तों के मन में यह शंका उत्पन्न होना बिल्कुल स्वाभाविक है कि श्री साई बाबा जैसे विरक्त सन्यासी को लोगो से धन लेने की आवश्यकता या अभिलाषा ही क्यों हुई ? श्री बाबा तो इस विषय में वास्तव में सर्वथा विरक्त थे। लोगों द्वारा इधर–उधर फेंकी हुई अधजली दियासलाईयाँ एकत्र करके भी श्री बाबा उन्हें अपनी

जेबों में ठूँस कर रखते थे। आरम्भ में वे किसी से भी रूपये–पैसे की अपेक्षा नही रखते थें। यदि किसी भक्त ने आग्रह सहित कुछ दक्षिणा दे भी दी तो उसे तेल, तम्बाकू और धूनी के लिए ईंधन मंगाने में खर्च कर देते थे। सत्पुरूष के दर्शनों के लिए खाली हाथ जाना उचित न समझते हुए अनेक भक्त ने श्री बाबा को दक्षिणा अर्पण करने की प्रथा आरम्भ की थी। पर श्री बाबा ने भी भेंट की गई दक्षिणा को शीघ्र ही लौटा देने का उपक्रम शुरू किया। बाद में जब हजारों लोग श्री बाबा के दर्शनों के लिए आने लगे तो दक्षिणा का ढेर लगने लगा। हमारे स्मृति ग्रंथो और शास्त्रों में गुरू को दी जाने वाली दक्षिणा के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। दान करने से जो पुण्य लाभ होता है, उसे यदि ध्यान में रखे तो श्री साई महाराज के भक्तों द्वारा भेट की गई दक्षिणा ग्रहण करने में भी कोई अतिक्रमण या असंगति दिखाई नहीं देती। भक्तों के अंतःकरण की सच्ची जिज्ञासा तथा एकनिष्ठ का अनुमान लगाने के लिए गुरू के पास यह उपाय होता था। व्यक्ति में दान देने की प्रवृत्ति जब बढ़ने लगती है, तब ही उसके संसारिक–मोह–पाश के बन्धन शिथिल होते जाते है और उसका भावना–प्रधान मन परमेश्वर–चितंन मे तन्मय होता जाता है। श्री बाबा के दान माँगने में अन्य उददेश्य भी था। उन्होंने अपने ही मुख से यह उद्‌गार किये थे कि "मुझे भक्तों से जो कुछ प्राप्त होता है, मुझे उसका हजार गुना उन्ही को लौटाना पडता है।"

मराठी रंगभूमि के एक प्रसिद्ध नट श्री गणपतराव बोडस ने अपने आत्म–चरित्र में एक स्थान पर यह लिखा है कि श्री साई बार–बार उनसे दक्षिणा माँगा करते थे। एक बार तो उन्होंने अपने पास की अन्तिम पाई भी श्री बाबा के चरणों पर रख दी और स्वयं रिक्त हस्त हो घर लौट आए। परंतु कुछ ही दिनों के बाद उन्हें यह अनुभव हुआ की उनकी उत्तरोत्तर उन्नति होती जा रही है। उन्हें अपने कारोबार में बहुत संपति और यश प्राप्त हुआ। यह श्री बाबा में उनकी दृढ निष्ठा एवं श्रद्धा का ही परिणाम था।

श्री साई महाराज के दक्षिणा माँगने के ढंग भी तो अत्यंत विस्मयकारी

तथा मति कुंठित करने वाले होते थे। जैसे कोई धनवंतरी एक ही औषधि कम–अधिक मात्रा में देकर विभिन्न रोगियों के विविध प्रकार के रोगों का परिहार करता है, वैसे ही श्री बाबा के दक्षिणा माँगने में भी विविध एवं गूढ प्रयोजन निहित होते थे।

श्री म्हालसापति ने आरम्भ में ही जिस काशीराम नामक सज्जन की श्री साई महाराज से भेंट करायी थी, वह श्री बाबा को नित्य कुछ दक्षिणा दे दिया करता था। अपनी दिनभर की सारी कमाई वह श्री बाबा के पास लाकर रख देता था। श्री बाबा अपनी इच्छा के अनुसार जितना चाहते, उतना रख कर बाकी पैसा उसे लौटा देते थे। यह क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा। पंरतु बाद में काशीराम के मन में अंहकार उत्पन्न हो गया। उसके मन में "अपने गुरू को दक्षिणा देने की मुझ में क्षमता है।" इस प्रकार का अभिमान जागृत हो उठा। यदि किसी दिन श्री बाबा दक्षिणा स्वीकार नहीं करते थे तो भी काशीराम को दुःख होता था। उसका मन उदास रहता था। भक्त के मन में ऐसी भावना का उदय होना भी परमार्थ–प्राप्ति के लिए घातक है। काशीराम की मनःस्थिति विचलित हुई देखकर श्री बाबा ने भी कई बार दक्षिणा माँगने का उपक्रम आरम्भ किया। अन्त में काशीराम की इतनी दयनीय अवस्था हुई कि श्री बाबा के सम्मुख कोई तुच्छ भेंट रखने के लिए भी वह स्वयं को पूर्ण असमर्थ अनुभव करने लगा। श्री बाबा ने उसे दक्षिणा की राशि पूर्ण करने के लिए साहूकार से ऋण लेने की भी आज्ञा दे दी। काशीराम पर ऋण का बोझ दिन–ब–दिन बढता गया। गाँव का कोई मनुष्य उसे अपने द्वारा पर भी नहीं फटकने देता था। ये सब लीलाएँ श्री बाबा जान बूझकर ही कर रहे थे। अन्त में काशीराम पश्चाताप् से विदग्ध हुआ। उसका सारा अहंकार मोम की भाँति पिघल गया।" मै श्री साई बाबा को क्या दे सकता हूँ, अपने सदगुरू को देने के लिए मेरे पास रखा ही क्या है ?" इस प्रकार सच्चे पश्चाताप की भावना उसके हृदय में विकसित हुई। इसके साथ ही मानो किसी ने सचमुच कोई जादू–टोना किया हो, उसकी आर्थिक स्थिति

में एकाएक परिवर्तन हुआ। उसकी उत्तरोत्तर उन्नति होती गई और उसने अपने जीवन का अंतिम समय अत्यन्त सुख तथा संतोषपूर्वक बिताया।

प्रो. नारके नामक एक सज्जन से श्री साई महाराज ने एक बार पन्द्रह रूपये दक्षिणा माँगी। उन्होंने साफ कह दिया कि उनके पास एक फूटी कौड़ी भी नही है। तब श्री बाबा हँसकर बोले –"तुम्हारे पास दक्षिणा देने के लिए कुछ नहीं है, यह मैं जानता हूँ। पर, तुम आज 'योगवशिष्ट' ग्रंथ में जो अध्याय पढ़कर आए हो, उसका सारांश मुझे बतलाओगे तो मैं समझ लूँगा कि मुझे मेरी दक्षिणा मिल गई।" संयोगवश कहिए या श्री बाबा की लीला कहिए, प्रोफेसर साहब सचमुच ही उस दिन 'योगवशिष्ट' के पंद्रहवे अध्याय का अध्ययन कर रहे थे।

इसी प्रकार एक बार सौ. राधाबाई तर्खंड से भी साई महाराज ने छः रूपयों की माँग की थी। राधाबाई को इस बात का बडा दुःख हुआ की उनके पास इतने रूपये नही थे। इस पर उनके पति ने उन्हें समझाया कि श्री बाबा ने जो माँगा है। उसका लाक्षणिक अर्थ ध्यान में लेना आवश्यक है। छः रूपयों का अर्थ षड्रिपू (काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, ईर्ष्या) ऐसा समझकर उनका दमन करना तुम्हें सीखना चाहिये। श्री बाबा ने भी राधाबाई के पति का यह स्पष्टीकरण सर्वथा उचित ही समझा और तब उन्होंने दक्षिणा माँगने का हठ छोड़ दिया।

किसी दिन तो श्री साई दक्षिणा के रूप में बहुत–सा धन एकत्रित करते थे। पर दूसरे दिन उनके पास एक भी पैसा नहीं रहता था। एक क्षण में अमीर तो दूसरे क्षण में फकीर। ऐसी उनकी विलक्षण अवस्था थी। कुछ ऐसे भी उदाहरण है, जब उन्होंने कुछ भक्तों को पचास–पचास या सौ–सौ रूपये नित्य–नियम–पूर्वक दिये। तात्पर्य यह है कि दक्षिणा लेने में श्री साई बाबा का अपना उददेश्य कुछ निराला ही होता था। भक्तों की परीक्षा लेना, उन्हें दान का महत्व समझाना और आत्मशुद्धि के मार्ग पर लाना, इन्ही उदात उददेश्यों से प्रेरित होकर श्री बाबा दक्षिणा की याचना करते थे।

मुंबई के ठाणा के तहसीलदार देव साहब श्री साई के अनन्य भक्तों में से एक थे। उन्होंने गंभीर अध्ययन एवं सत्य–संशोधन कर इस विवादग्रस्त विषय पर अपने विचार प्रकट किये है, जो वास्तव में बड़े मननीय है। श्री देव कहते है, "श्री साई महाराज हर एक व्यक्ति से दक्षिणा नहीं माँगा करते थे। न माँगते हुए भी यदि किसी ने दक्षिणा अर्पण की, तो इच्छा होने पर ही स्वीकार करते थे, अन्यथा तुरन्त ही लौटा देते थे। कुछ विशिष्ट व्यक्तियों से ही वे दक्षिणा की याचना करते थे। जो लोग यह विचार मन में रखते थे कि श्री बाबा उनसे अवश्य दक्षिणा माँग लेंगे और इसी संकल्प से अपने साथ दक्षिणा भी लाते थे, उन्हीं से श्री बाबा दक्षिणा लेते थे। वैसे श्री बाबा स्वयं कभी–कभी ही दक्षिणा माँगते थे। श्री बाबा की इच्छा के विरूद्ध यदि किसी ने हठात् दक्षिणा अर्पण कर भी दी तो वे उसे स्पर्श तक नहीं करते थे। वरन् उल्टे, 'चले जाओ, नही माँगते' कहकर भक्त को दक्षिणा वापिस लेने के लिये बाध्य करते थे। भक्त की निजी इच्छा और उसके मन का भाव देखकर ही श्री बाबा पैसे माँगते थे। दक्षिणा माँगते समय निर्धन और धनी का भेदभाव से वे बिल्कुल दूर रहते थे। किसी धनी व्यक्ति से केवल इसी भावना से कि वह धनवान् है, वे कभी कुछ नही माँगते थे। दक्षिणा की याचना करने के पश्चात् यदि किसी अन्य भक्त के हाथ श्री बाबा को अर्पण करने के लिए कुछ दक्षिणा भेजता और वह श्री बाबा के पास आकर दक्षिणा देने में टालमटोल करता या भूल जाता तो श्री बाबा उसे देखते ही दक्षिणा का स्मरण दिलाते थे और उससे बिल्कुल ठीक–ठाक रकम वसूल करते थे।"

अनेक अवसरों पर तो श्री साई महाराज दी हुई दक्षिणा लौटा कर भक्त को उन पैसों का यत्नपूर्वक रखने का आदेश देते थे और कभी कभी कुछ भक्तों को तो उन पैसों को कुल–देवता के साथ ही पूजा–स्थान में रखकर उनकी नित्य पूजा करने की आज्ञा देते थे। श्री बाबा के हाथों से प्रसाद के रूप में मिले हुए इन रूपयों की पूजा करने से अनेक भक्तों का भाग्योदय हुआ और उनका पूर्ण कल्याण हुआ। कभी–कभी तो श्री बाबा

भक्तों की इच्छा के विरूद्ध उनसे दक्षिणा की याचना करते थे और कभी आवश्यकता से अधिक दक्षिणा मिलने पर उसे तुरन्त लौटा दिया करते थे। कुछ भक्तों से तो एक ही दिन में तीन–तीन, चार–चार बार दक्षिणा माँगते थे। शिरडी संस्थान में जितनी भी मूल्यवान् वस्तुएँ है, वे सब श्री बाबा से भेंट के रूप में ही प्राप्त हुई है। यदि कोई भक्त भारी मूल्यवान वस्तु अर्पण करता था तो श्री बाबा बहुत क्रोधित हो जाते थे। श्री बाबा ने ऐशोआराम की सारी वस्तुओं का परित्याग किया था। उनकी वृत्ति पूर्णतः सन्तोषी तथा निस्पृह थी। परमार्थ–साधन के मार्ग में कनक और कामिनी महान संकटदायी है, यह तत्व लोगों के मन में प्रतिबिंबित करने के उददेश्य से ही उन्होंने दक्षिणा माँगने का मार्ग ग्रहण किया था। राधाकृष्णमाई के घर भक्तों को भेज कर वे उनकी परीक्षा लेते थे। इन दोनो परीक्षाओं में तपकर कुन्दन हुए भक्तों को ही श्री बाबा का अनुग्रह प्राप्त होता था। अन्त में, तात्पर्य यह है कि श्री साई महाराज के दक्षिणा माँगने के सम्बन्ध में कोई व्यक्ति अपने मन में ऊटपटांग विचार उत्पन्न न होने दें और स्वयं ही श्री बाबा के दक्षिणा माँगने के पीछे छिपे गूढ़ अर्थ को समझने का प्रयत्न करें, ताकि उसे स्वयं ही समाधान प्राप्त हो जाय।

पाँचवा अध्याय
अपूर्व योग-सामर्थ्य

साधु–सन्त योग–विद्या मे पारंगत होते हैं। योगाभ्यास द्वारा वे ब्रम्हानंद मे समाधि लगाकर अपनी जड़ देह में स्थित आत्मा एवं सच्चिदानंद परमेश्वर के सत् स्वरूप में एकरूपता स्थापित करते है। योग–विद्या के भी भिन्न–भिन्न प्रकार एवं मार्ग है। प्राचीनकाल से ही हमारे देश में अनेक अधिकारी विद्वानों ने योग विद्या का सूक्ष्म अभ्यास कर उसके गूढ़ प्रयोजनो को सच्चे जिज्ञासु के सम्मुख रखा है और उत्तम तथा योग्य शिष्यों का मार्गदर्शन भी किया है। पंरतु, योगाभ्यास का प्रत्यक्ष फल तथा उससे उत्पन्न होने वाले अनेकानेक लाभ सुगमता से मनुष्य के नित्य देखने में नहीं आ सकते।

श्री साई बाबा न केवल योगाभ्यास के आदि थे, प्रत्युत् वे इस विद्या में निष्णात सिद्ध पुरूष थे। शिरडी गाँव से थोडी दूर एक वट–वृक्ष के नीचे जो कुआँ है, वहाँ वे हर तीसरे दिन स्नानार्थ जाया करते थे। ऐसे ही एक अवसर पर योग–विद्या का एक चमत्कार प्रत्यक्ष देखने में आया। स्नान के समय अपना उदर साफ करते समय श्री साई महाराज ने अपने पेट की आँतड़ियाँ बाहर निकाली और उन्हें अन्दर–बाहर से साफ–सुधरी करने के पश्चात् समीप के जामुन–वृक्ष की एक शाखा पर सुखाने के लिए लटका दिया। योगविद्या का यह अद्भुत चमत्कार शिरडी गाँव के अनेक लोगों ने अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखा था और उसकी सत्यता के संबंध में प्रमाण भी उपस्थित किए गए है।

योग में वर्णित 'धोति क्रिया' कुछ भिन्न प्रकार से की जाती है। उसमें स्वच्छ सफेद कपड़े का तीन इंच तथा बाईस फीट लंबा टुकडा गीलाकर मुखनलिका द्वारा पेट में डाला जाता है और आधे घंटे तक अँतड़ियों में रखने के पश्चात् उसे धीरे–धीरे बाहर निकाला जाता है। प्रत्यक्ष 'धौति' किया तो

इस प्रकार है। परंतु, श्री साई के करतब तो जग से न्यारे ही होते थे।

इस योग–विद्या में खण्ड योग नाम एक अन्य प्रकार भी है। श्री बाबा ने इसका प्रयोग भी एक अवसर पर किया था। एक दिन एक सज्जन श्री बाबा के दर्शनों के लिए द्वारकामाई पहुँचे। परंतु वहाँ एक विचित्र घटना देखकर वे आश्चर्यचकित एवं अत्यन्त भयभीत हुए। श्री बाबा ने अपने शरीर के कुछ अवयव कुछ दूरी पर खण्डित अवस्था में रखे हुए थे। यह भयानक घटना देखकर वे सज्जन बहुत घबराये और एक पागल मनुष्य की भाँति गाँव के मुखिया के घर की ओर दौड़ने लगे। परंतु मार्ग में उनके मन में तुरन्त यह विचार आया कि इस विचित्र घटना के संबंध में कहीं उन पर ही दोषारोपण न किया जाए। इसलिये वे पीछे मुडकर अपने घर लौट गये। दूसरे ही दिन श्री बाबा को सदैव की भाँति अपने स्वभाविक रूप में देखकर उनके आश्चर्य की कोई सीमा न रही। गत रात्रि में देखी वह भयानक घटना यथार्थ में एक स्वप्न होगा, ऐसा समझते हुए वे सज्जन लज्जित हो चुपचाप वही बैठे रहे। यह श्री बाबा का खण्ड–प्रयोग था। कहा जाता है, बचपन से योग–विद्या के भिन्न–भिन्न आसन तथा प्रयोग करने की दीक्षा उन्हें श्री व्यंकुशा(गोपालस्वामी) नामक अपने गुरू से प्राप्त हुई थी।

नानासाहेब डेंगले नामक एक भक्त ने द्वारकामाई में श्री बाबा के सोने के लिए एक फुट भर चौड़ा तथा चार हाथ लम्बा लकड़ी का तख्ता भेंट किया था। श्री बाबा उसे झूले की भाँति उपयोग में लाते थे। उन्होंने उस तख्ते को गले हुए कपड़े की दो–चार लम्बी चिंदियों से बाँधकर द्वारकामाई में ही एक कड़ी से लटका दिया और तख्ते के चारों और मिट्टी के दीप रखकर उस पर नित्य–नियमपूर्वक शयन करना आरम्भ किया। कपड़े के वे चिथडे इतने सड़े–अन्नगले थे कि वे उस तख्ते का भार सँभालने से असमर्थ थे। इसलिए उस अधर में लटके हुए तख्ते पर श्री बाबा किस प्रकार सोते होंगे, इस बात पर लोगों को बडा ही आश्चर्य होता था। यही नही, नित्य प्रति रात्रि में यह अनोखी घटना अपनी आँखो से देखने के लिए द्वारकामाई के बाहर लोग भारी

संख्या में उपस्थित होने लगे। कुछ लोगों ने तो दिन–रात द्वारकामाई मे डेरा डालकर निगरानी रखी। पंरतु, किसी को भी यह अन्त तक ज्ञात नही हो सका कि साई महाराज कब और कैसे उस तख्ते पर चढ़कर सोते थे और फिर नीचे उतर जाते थे। जैसे–जैसे समय बीतता गया, यह अभूतपूर्व दृश्य देखने के लिए लोग अधिकाधिक संख्या में एकत्रित होने लगे। परिणामस्वरूप श्री बाबा को उचित मात्रा में निद्रा और विश्राम मिलना नितान्त असम्भव हो गया और एक दिन क्रोध में आकर उन्होंने उस तख्ते को तोड़ कर फेंक दिया।

श्री साई महाराज की सेवा के लिए अष्टसिद्धियाँ सदैव उपस्थित रहती थीं। उन्हीं के बल पर वे अपना शरीर वायु की भाँति हलका बनाकर अधर में टँगे हुए तख्ते पर सो सकते थे और खौलते हुए तेल की कढ़ाई में हाथ डालने जैसी आश्चर्यजनक एवं हतबुद्धि करने वाली क्रियाएँ सहज ही करके दिखा सकते थे। यद्यपि अष्टसिद्धियाँ सम्पूर्णतः उनके वश में थी, तथापि कभी किसी अवसर पर केवल स्वार्थ–बुद्धि से प्रेरित होकर उन्होंने उनका उपयोग नही किया। सचमुच ही श्री साई महाराज पूर्णावस्था में पहुँचे हुए सिद्ध सद्गुरू थे।

एक बार श्री नानासाहेब चांदोरकर के साथ एक ऐसा विद्यार्थी शिरडी आया, जिसने योग–शास्त्र का थोडा–बहुत अध्ययन किया था। पंतजलि के योगसूत्रों का तो उसने विशेष अध्ययन किया था। श्री साई बाबा की कीर्ति से प्रभावित होकर वह मन में दीर्घ समाधि सम्बन्धी कुछ शास्त्रीय प्रयोग देखने की लालसा लिए श्री बाबा के पास आकर बैठ गया। उस समय श्री साईबाबा अल्पोपहार कर रहे थे और आचार और प्याज के साथ भाकरी (रोटी) खा रहे थे। उन्हें प्याज खाते देखकर उस विद्यार्थी ने सोचा "प्याज जैसी अपवित्र वस्तु का सेवन करने वाला एक फकीर योग–शास्त्र क्या पढ़ा सकता है ? उसी क्षण उसके मन में उठी आशंका का अन्तर्ज्ञान से जानकर श्री बाबा ने नानासाहेब की ओर अभिमुख हो कहा " अरे नाना! प्याज खाकर

उसे हजम करने के जिसमे शक्ति है, उसी को प्याज खाना चाहिए। अन्य किसी को इस फन्दे में नहीं पड़ना चाहिए।" श्री बाबा के ये उद्‌गार सुनकर वह बाल–योगी बड़ा लज्जित हुआ और अनन्य भाव से श्री बाबा की शरण में आ गया। श्री बाबा ने उसे योग–शक्ति की कुछ गुप्त बातें बताई और उसका पूर्ण समाधान किया।

एक बार दीपावली का मंगल महोत्सव मनाया जा रहा था। श्री बाबा ने नित्य की भाँति ही लकडियाँ डालकर 'धूनी' को प्रज्वलित किया और हाथपाँव सेंकते–सेंकते सहसा अपने हाथ धधकती हुई आँच में डालकर मानों उन्हें जलाने की चेष्टा की। समीप बैठ हुए माधव नाम के उनके एक सेवक तथा श्री माधवराव देशपांडे का ध्यान श्री बाबा की ओर गया। श्री बाबा के हाथ न जल जाएँ, यह सोचकर माधवराव जी ने श्री बाबा को कमर से दृढतापूर्वक पकडकर उन्हें बलपूर्वक पीछे अपनी और खींचा और घबराकर पूछा– " हे देव, आपने यह क्या किया ?" समाधि भंग होते ही श्री बाबा पूर्ण शांति के साथ बोले–"अरे, मेरे एक लुहार भक्त की स्त्री भट्‌टी के पास बैठी थी। अपने पति के पुकारने पर वह तत्परता से उठी थी और घबराहट में उसकी गोद का नन्हा बच्चा जलती हुई भट्‌टी में गिर पड़ा। मैंने शीघ्रता से आँच में हाथ डालकर उस बच्चे को ही बाहर निकाला और उसे बचाया। मेरे हाथ जल गये या झुलस गये, इस बात का मुझे यत्किंचित भी दुःख नहीं। उस अबोध नन्हें बच्चे के प्राण बच गये, यह बहुत अच्छा हुआ।" इस घटना से यह स्पष्ट हो जाता है कि साई अपने भक्तों का कितना ध्यान रखते थे। बाद में बहुत दिनों तक श्री बाबा ने अपने हाथ पर पट्‌टी बाँधकर रखी।

श्री साई बाबा अतीन्द्रिय भी थे। एक ही क्षण में भिन्न–भिन्न देह धारण कर भक्तों को दर्शन दिये जाने के अनेक अनुभव प्राप्त है। योगाभ्यास द्वारा ऋद्धि–सिद्धियाँ प्राप्त करने के पश्चात् सिद्ध पुरूषों को यह शक्ति उपलब्ध होती है। एक दिन बाबा ने भक्त लोगों ने नित्य–नियम के अनुसार रात्रि में उनकी आरती की। जब दूसरे दिन वही भक्त लोग पुनः उनके दर्शनों

के लिए गये तो श्री साई महाराज ने कहा–"कल मैं दक्षिण दिशा की ओर घूमने गया था।" श्री बाबा के इस कथन का कोई भी अर्थ नही लगा सका। केवल आश्चर्य प्रकट कर सब लोग स्तब्ध बैठे रह गये। कुछ ही समय बीता होगा कि वहाँ दक्षिण की ओर बसे हुए एक गाँव का व्यक्ति आया। उसने बताया "कल शाम को तो बाबा हमारे गाँव में पधारे थे।" यह सुनकर उपस्थित भक्तों ने श्री बाबा के पहले कहे हुए शब्दों का अर्थ तुरन्त ही समझ लिया। वे श्री साई महाराज की एक समय में दो या अधिक देह धारण कर सकने की अतीन्द्रिय शक्ति से पूर्णतः परिचित हो गये।

श्री कोल्हाटकर द्वारा लिखित 'श्रीमदभागवतार्थ दर्शन' नामक ग्रंथ में आत्मा के अमर होने तथा उसके द्वारा ऐसे चमत्कार किये जाने के अनेक प्रमाण दिये गये है। श्री साईबाबा भी जागृत तथा स्वप्नावस्था में भिन्न–भिन्न देह धारण कर भक्तों को दर्शन देते थे। एक रात्रि में श्री बाबा ने बलवन्तराव खापर्डे को स्वप्न में दर्शन दिया और उनके घर पर भोजन कर आनन्द से झूले पर कुछ समय बैठकर पान खाकर चले आये इस घटना के पश्चात् किसी से भी इस बात का उल्लेख किये बिना वे घर के लोगों के आग्रहवश श्री बाबाके दर्शनों के लिये उपस्थित हुए। उन्हें देखते ही बाबा बोले–"कल शाम को मैंने आपके घर पर पेट भर भोजन किया, परंतु आपने मुझे दक्षिणा नहीं दी।" यह कहकर उन्होंने बलवन्तराव जी से तुरन्त दक्षिणा प्राप्त की। परम भक्त श्री खापर्डे जी का यह अनुभव भी श्री साई महाराज में अतीन्द्रिय शक्ति का होना सिद्ध करता है।

इस प्रकार श्री काकासाहेब दीक्षित का अनुभव भी बुद्धि को चकित करने वाला है। प्रातःकाल स्नान–संध्या के पश्चात दीक्षित जी ध्यान–धारण में मग्न बैठे थे। अचानक उन्हें पंढरपूर के विठोबा की साँवली मूर्ति आँखो के आगे दिखाई दी। जप पूर्ण होने के बाद काकासाहेब द्वारकामाई में श्रीसाई के दर्शनों के लिये गये। उनकी ओर देखते हुए प्रसन्नता से हँसकर श्री बाबा उठे "क्यों ? विटठ्ल पाटील आया था न ? उसे भली–भाँति देख लिया न?

वह बड़ा चालाक भगोड़ा है।उसे अच्छी तरह पकड़ कर रखो, नहीं तो वह नौ दो ग्यारह हो जायेगा।" श्री बाबा के यह शब्द सुनकर काकासाहेब की क्या दशा हुई होगी, इसका अनुमान पाठक ही लगा सकते है। दीक्षित जी की आँखे आँसुओ से भर गई। उन्होंने श्री बाबा के चरण पकड़ लिये, भोजन के लिये जब वे भोजन–गृह में पधारे तो उसी समय देवी–देवताओं के चित्र बेचता हुआ एक फेरीवाला वहाँ पहुँचा। श्री साई महाराज की लीलाएँ अगाध है। उनका वर्णन करते समय साधारण मनुष्य का मन आश्चर्य में गोते खाने लगता है। फेरीवाले के पास जो चित्र थे, उनमें 'विटठ्ल' का भी एक चित्र था। प्रातःकाल ध्यान–मग्न अवस्था में उन्होंने विटठ्ल का जो रूप देखा था, वही रूप उस चित्र में अंकित था। श्री बाबा की आज्ञा का पालन करते हुए दीक्षितजी ने तुरन्त ही वह चित्र खरीद लिया और नित्य पूजा अर्चना के लिये अपने पास रख लिया।

एक बार श्री साई महाराज ने दासगणू महाराज को 'नाम–सप्ताह' आरम्भ करने की आज्ञा दी। जब दासगणू महाराज ने उत्तर दिया कि 'यदि सातवे दिन प्रत्यक्ष विटठ्ल का दर्शन प्राप्त हो तो ही सप्ताह आरम्भ करूँगा' तब श्री साई सीना तानकर आत्मविश्वास के साथ बोले, "अरे पगले, विटठ्ल तो यहाँ बैठा है। उसे देखना हो तो भक्त के मन में उत्कृष्ठ अभिलाषा और निष्ठा होना चाहिए। यह शिरडी विटठ्ल का पुरातन स्थान है। "संयोगवश श्री बाबा के भक्त श्री देव ने, जो एक सरकारी अफसर थे, शिरडी के प्राचीन इतिहास के संबंध में खोज आरम्भ की और पर्याप्त अन्वेषण के पश्चात यह सिद्ध किया कि शिरडी या शीलधी एक अत्यन्त प्राचीन गाँव है और उसकी गणना पुराने पंढरपुर के क्षेत्र में होती थी।

बहुत लोगों का विचार है कि साई महाराज लिखना–पढ़ना नहीं जानते थे, क्योंकि उन्होंने अपने जीवनकाल में न कुछ लिखा था और न ही कुछ पढा था। परंतु जो सत्पुरूष आत्मज्ञानी होते है, उन्हें वर्तमान काल का ही नही, अपितु भूत तथा भविष्य की भी बातों का यथार्थ ज्ञान होता है। श्री

साई महाराज यद्यपि सर्वज्ञ थे, तथापि व्यावहारिक दृष्टिकोण से उन्होंने न कुछ लिखा था और न पढा था। परंतु वे उचित अवसर पर कार्य करके ही दिखाते थे।

अपनी पुत्री की अकाल मृत्यु से श्री दीक्षित जी बहुत दुःखी थे। किसी बात में भी उनका जी नही लगता था। दुःख पीडित एवं मलिन–मुख श्री दीक्षितजी श्री साई महाराज के पास बैठे थे। उसी समय डाकिया दीक्षितजी के नाम का एक वी.पी. पार्सल लेकर वहाँ पहुँचा। दीक्षितजी ने 'भावार्थ रामायण' की एक प्रति मँगवाई थी। पुस्तक का वाचन आरम्भ करने से पूर्व दीक्षितजी ने वह श्री बाबा के हाथ में दी। श्री बाबा ने पुस्तक उलटी पकड़ कर उसके कुछ पृष्ठ पलटे और अन्त में दीक्षितजी को किष्किंधाकांड का वह प्रसंग पढ़ने की आज्ञा दी, जिसमें बालि का वध हो जाने पर उसकी शोक–निमग्न पत्नि तारा को श्री रामचंन्द्र जी ने उपदेश दिया था। श्री बाबा दीक्षितजी की उस समय की मनःस्थिति तथा मनोव्यथा को देखकर ही उन्हें एक यथोचित प्रसंग पढ़ने की आज्ञा देकर सचमुच ही अपनी दिव्य एवं अलौकिक शक्ति का परिचय दिया, यह तो अवश्यमेव मानना पड़ेगा।

सन् १९१६ के लगभग बापूशास्त्री गुलवे नामक एक सज्जन श्री साई महाराज के दर्शनों के लिये शिरडी पहुँचे। काशी से पवित्र गंगा नदी का जल वह अपने साथ लाये थे। शास्त्रीजी ने गंगा के पवित्र जल से शास्त्रानुसार श्री बाबा का अभिषेक किया और श्री रामदास–नवमी के दिन सज्जनगढ के लिये प्रयाण करने की आज्ञा माँगी। श्री बाबा ने कहा "अवश्य जाओ। उधर भी मैं ही हूँ।"

श्री बाबा की आज्ञानुसार शास्त्री जी सज्जनगढ़ पहुँच गये और रामदासनवमी के दिन प्रातःकाल कोई पाँच बजे के लगभग श्री बाबा ने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और अपने पैर दबाने की आज्ञा दी। शास्त्री जी को थोडी देर अपनी सेवा का अवसर देकर श्री बाबा अदृश्य हो गये।

श्री बाबा के सशरीर प्रत्यक्ष दर्शन देने के कई उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते है। श्री साई का अपने एक परमभक्त श्री देवसाहब के घर पधारकर वहाँ भोजन करना, एक ऐसी ही अत्यंत हृदयस्पर्शी एवं चिरस्मरणीय घटना है। बम्बई के निकट डहाणू गाँव में श्री देव के घर किसी व्रत के उद्यापन का आयोजन किया गया था। श्री देव की इच्छा थी कि इस निमित्त से ही श्री बाबा हमारे घर में चरण रखें। इसी अभिप्राय से उन्होंने तुरन्त ही शिरडी के श्री बापूसाहेब जोग को एक पत्र लिखा। बापूसाहब ने श्री बाबा के सम्मुख श्री देव का पत्र पढ़ा और उनकी ओर से श्री बाबा को भोजन का निमन्त्रण दिया। श्री साई महाराज ने तुरन्त ही यह उत्तर भेजने की आज्ञा दी कि "दो अन्य साथियों के साथ मैं अवश्य ही भोजन में सम्मिलित होऊँगा।"

श्री साई महाराज का उत्तर पढकर श्री देव को अत्यन्त हर्ष हुआ। कुछ ही दिनों के बाद एक बंगाली संन्यासी गोशाला के लिए धन एकत्रित करने हेतु डहाणू गाँव में पहुँचा। श्री देव ने संन्यासी का उचित आदर–सत्कार किया। अधिक सहायता के लिए श्री देव ने उस बंगाली सन्यासी को एक महीने के पश्चात आने का परामर्श दिया। परन्तु एक दिन वही संन्यासी श्री देव के घर ताँगे पर सवार होकर आया। श्री देव उस समय उद्यापन के संबंध में आयोजित भोजन की व्यवस्था में व्यस्त थे। सन्यासी के यह कहने पर कि वह धन इकटठ्ा करने की अभिलाषा से न आकर केवल भोजन करने के उददेश्य से ही आया है, श्री देव ने उसका स्वागत किया। वह सन्यासी यह कहकर कि, 'मेरे साथ दो अन्य साथी भी हैं और उन्हें ले आकर मैं अभी उपस्थित होता हूँ" चला गया। ठीक भोजन के समय सचमुच ही अपने दो साथियों के साथ वह सन्यासी आया और यथेष्ठ भोजन कर वे तीनों ही चले गये। पर, इधर श्री देव इस बात पर बड़े अप्रसन्न हो रहे थे कि अपने वचनानुसार श्री बाबा उनके घर भोजन करने उपस्थित नहीं हुए। उन्होंने तुरन्त श्री बापुसाहेब जोग के नाम उपालम्भ का एक पत्र शिरडी भेज दिया। श्री साई महाराज ने जब वह पत्र सुनाया गया, तब वे हँसकर बोले, "अरे भाई,

मैं अपने वचन के अनुसार अपने दो सन्यासी साथियों के साथ देव के घर गया था और पेट भर खा–पीकर वापिस लौट आया। जब उन्होंने मुझे पहचाना ही नहीं तो मैं क्या करूँ ? पत्र लिखकर देव से यह पूछो कि उद्यापन के दिन सन्यासी भोजन में सम्मिलित हुए थे या नहीं और अपने मन का समाधान कर लो।'' श्री बाबा के साथ हुए इस वार्तालाप के विषय में श्री जोग का पत्र पढ़कर तो श्रीदेव की प्रसन्नता का पारावार न रहा, पंरतु उन्हें इस बात का खेद बराबर बना रहा कि उन्होंने अपने घर पधारे हुए श्रीसाई को पहचाना तक नहीं।

श्रीसाई महाराज की सभी लीलाएँ ऐसी ही विस्मयजनक और मति कुंठित करने वाली है। श्रीं बाबा का प्रत्येक आचरण, इतना ही नहीं, उनके मुख से स्वभाविक ढंग से निकले हुए शब्द भी अति मूल्यवान सिद्ध हो चुके है। स्व. अण्णासाहेब दाभोलकरजी को श्री साई महाराज 'हेमाडपन्त' के नाम से पुकारते थे। आरम्भ में श्री दाभोलकर तथा अन्य लोगों को यही भ्रम हुआ कि श्री बाबा हँसी–मजाक में ही उन्हें इस नाम से पुकारते है। परंतु आगे श्री दाभोलकर जी के हाथों से जो ठोस कार्य पूर्ण हुआ। उसे देखकर कोई भी व्यक्ति श्री बाबा की लीलाओं पर अचरज किये बिना नहीं रह सकता। प्राचीन काल में रामदेव राजा के दरबार में 'हेमाडपन्त' नामक एक अत्यन्त चतुर बुद्धिमान मंत्री थे। उन्होंने कई विद्वता–प्रचुर गंथों की रचना की है। मराठी की 'मोडी' लिपि के जनक वही थे। श्री दाभोलकर जी को हेमाडपन्त की पदवी से विभूषित कर श्री बाबा ने केवल विनोद ही किया था; परन्तु दाभोलकर जी ने अपने महत्वपूर्ण कार्य से श्री बाबा द्वारा प्रदत्त हेमाडपन्त की उपाधि की सार्थकता सिद्ध करके दिखाई। साई संस्थान का कारोबार उन्होंने बडी निपुणता से सँभाला। संस्थान का हिसाब–किताब रखने में भी उन्होंने बडी बुद्धिमानी का परिचय दिया। श्री साई महाराज की लीलाओं और उपदेशों से परिपूर्ण ''श्री साई सच्चरित्र'' नामक मूल्यवान ग्रंथ की रचना कर उन्होंने भी श्री साई भक्तों पर महान उपकार किया। यह ग्रंथ

श्री अण्णासाहेब दाभोलकर ने श्री साई महाराज की आज्ञा से ही आरम्भ किया था। इसका प्रत्येक शब्द और वाक्य श्री बाबा के आशीर्वाद एवं कृपा का ही फल है। इस दृष्टि से श्रीसाई महाराज के भक्तों के लिये तो " श्री साई सच्चरित्र" अति महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है।

संसार–जाल में फँसे हुए मनुष्यों को सद्‌गुरू की आवश्यकता है या नहीं, इस प्रश्न को लेकर श्री अण्णासाहेब दाभोलकर और श्री काकासाहेब दीक्षित, दोनों ने प्रत्यक्ष परब्रम्ह श्री साई महाराज के सम्मुख चर्चा की थी। उसके बाद एक दिन बाहर जाने के लिए आज्ञा माँगते हुए श्री काकासाहेब ने यों ही प्रश्न किया, "बाबा, कहाँ जाऊ ?"

श्री बाबा ने उत्तर दिया–"ऊपर।"

इस पर श्री काकासाहेब ने तुरन्त ही दूसरा प्रश्न किया "परन्तु, मार्ग कैसा है ?"

तब श्री बाबा बोले– "अरे, भाई ऊपर जाने के लिये अनन्त मार्ग हैं। एक मार्ग यही, शिरडी है। परंतु, यह मार्ग, बड़ा भयानक और संकटपूर्ण है। शेर, सिंह, भेडियें आदि हिंसक पशु अपने जबड़े खोले हुए मार्ग रोके बैठे है।"

इस पर श्री काकासाहेब ने पुनः प्रश्न किया –"बाबा, यदि हम कोई कुशल मार्ग–दर्शक साथ लें तो ?"

श्री बाबा ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया –" बहुत ही अच्छा! योग्य मार्गदर्शक मिला तो आप अवश्य ही अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुँच सकते है। वह मार्ग के सभी विघ्नों तथा संकटो को दूर कर या उनसे बचाकर आपकों सही मार्ग दिखायेगा और आपको अपना अंतिम ध्येय प्राप्त होगा।"

श्री साई महाराज के ये उद्‌गार सुनकर श्री अण्णासाहेब दाभोलकर जी के मन में यह पूर्ण विश्वास हो गया कि सद्‌गुरू ही सच्चा मार्गदर्शक है। उसका आशीर्वाद प्राप्त किये बिना किसी भी व्यक्ति के लिय यह भवसागर पार कर मोक्षपद तक पहुँचना सम्भव नही हो सकता। केवल धार्मिक ग्रंथों का

पारायण करके या संतो के प्रवचन को सुनकर मनुष्य अपनी आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकता। परमार्थ प्राप्ति के लिये सद्गुरू की अत्यन्त आवश्यकता है। इसीलिये भक्तों को यही चाहिये कि वे सद्गुरू के चरणों में अविचल निष्ठा एवं पवित्र भक्ति–भाव से पूर्ण समर्पण करें।

श्री साई महाराज के मुख से निकले हुए सहज उद्धारों में भी विश्व की गहन–गूढ़ पहेली का निराकरण करने वाला महान् तत्व–ज्ञान भरा रहता था। उनकी भाषा, व्यवहार आदि साधारण जन के लिये तो कभी भी हल न होने वाली पहेली के समान थे।

==========

छठा अध्याय

श्री साई महाराज का ब्रम्ह तेज

श्री साई महाराज हिन्दू थे अथवा मुसलमान, यह अंत तक पहेली ही बनी रही। जिन्होंने यह सिद्ध करने का दुःसाहस किया कि श्री बाबा यवन है, उन्हें वे हिन्दू ब्राहम्ण सदृश आचरण करते दिखाई देते थे और जिन्होंने उन्हें हिन्दू बताने की चेष्टा की, उन्हें वे पूर्णतः यवन दिखाई देते थे। यही उनके भक्तों के लिये आश्चर्य की वस्तु थी। जब श्री साई महाराज का प्रत्यक्षतः शिरडी में वास रहा, तब कई भक्तों ने उनके हिन्दू या मुसलमान होने के संबंध में पर्याप्त छानबीन की। पंरतु किसी को उनके जन्म–काल का या उनके धर्म का कुछ भी पता न लग सका और न ही कभी लग सकेगा; क्योंकि जगत् का उद्धार करने के लिये जिस दयाधन परमेश्वर ने श्रीसाई महाराज के रूप में अवतार लिया, उसका हिन्दू या मुसलमान की भेदभरी संज्ञा रखने में क्या प्रायोजन हो सकता है। अज्ञानरूपी पंखो में फँसे हुए जीवों को सहारा देकर उन्हें सन्मार्ग की ओर ले जाने के पवित्र कार्य को पूर्ण करने के लिये ही स्वयं परमपिता परमेश्वर सद्‌गुरू के रूप में पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करते है। श्री साई महाराज ने भी यही मार्ग अपनाया। राम–रहीम एक ही हैं। हम सब एक ही परमेश्वर की संतान है। शरीर मन पवित्रता का रक्षण करने और आत्मोन्नति के लिए प्रत्येक व्यक्ति को धर्म की अत्यन्त आवश्यकता है। सभी धर्मों के तत्व समान रूप से ऊँचे है। इस प्रकार के ऊँचे आदर्श सामने रखकर श्री बाबा हिन्दुओं को हिन्दू धर्म के गूढ तत्वों के अनुसार तथा मुसलमानों को कुरान में लिखे हुए फरमानों के अनुसार आचरण करने के लिये उपदेश दिया करते थे। श्री साई महाराज ने अपने हिन्दु भक्तों को रामनवमी जैसे पवित्र पर्व को अत्यंत उत्साह के साथ मनाने की आज्ञा दी तो उधर मुसलमानों को भी उर्स मनाने और ताजिये निकालने के लिये पूर्ण स्वतंत्रता दी। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन भी स्वयं श्री बाबा की

उपस्थिति में भक्त लोग नृत्य, मल्ल–युद्ध और दहीकाले के प्रदर्शन का आयोजन करते थे। इसी प्रकार ईंद के अवसर पर मुसलमान फकीर भी मस्जिद(द्वारकामाई) में आकर नमाज पढ़ते थे। एक बार मोहर्रम के अवसर पर कुछ मुसलमानों ने ताजिया बना कर मस्जिद के समीप खड़ा किया। श्री बाबा ने कोई आपत्ति नहीं की और चार दिन पश्चात उसे नदी में बहाने की आज्ञा दे दी।

हिन्दुओं की प्रथा के अनुसार श्री बाबा का कर्णवेधन हुआ था। मस्जिद का द्वारकामाई नाम रख कर वहाँ एक घण्टा लगवाने के लिये उन्होंने कहा और स्वयं 'धूनी' तैयार कर अग्नि पूजा करना आरंभ किया। चक्की पर आटा पीसना, शंख, घण्टा, घड़ियाल बजाना, अग्नि प्रज्वलित करना, भजन–पूजन जप करना तथा देवी–देवताओं के समान ही अपनी शास्त्रोक्त विधियों से पूजा–अर्चना करवाना आदि अनेक बातें श्री साई महाराज के हिन्दू धर्मावलंबी होने के प्रमाण में कही जा सकती है। पंरतु साथ ही साथ उनकी मुसलमानों जैसी वेशभूषा, सदैव मस्जिद में रहना तथा उर्दू भाषा में बोलने का ढंग आदि कुछ बातें भक्तों के मन में स्वभावतः उनके हिन्दू के संबंध में शंका उत्पन्न करती थी। कई अवसरों पर दर्शन के लिये आये हुए कर्मठ सनातनी ब्राहम्णों ने भी मन की शंकाओं को दूर कर श्री बाबा के चरणों में अपना मस्तक झुकाया है। कई लोगों ने श्री बाबा यह प्रश्न पूछने का साहस भी किया था कि वे हिन्दू है या मुसलमान। पंरतु श्री सांई ने किसी को भी यह ज्ञात नही होने दिया कि वे किस जाति मे उत्पन्न हुए। इसके विपरीत, ऐसे प्रत्येक अवसर पर कोई–न–कोई अलौकिक लीला का प्रदर्शन कर श्री बाबा ने प्रश्नकर्ताओं को मुग्ध–चकित कर छोड़ दिया।

श्री साई महाराज के समाधि काल के पश्चात् भी कुछ सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत लोगों ने इस गूढ़ प्रश्न को प्रामाणित ढंग से सुलझाने का यत्न किया। परंतु आज तक किसी को भी इस संबंध में सत्य एवं प्रमाणिक घटनाओं की जानकारी प्राप्त न हो सकी। यह बात सचमुच ही

अत्यन्त विचारणीय है। सामान्यतः देखा गया है कि किसी महान् विभूति या धनी व्यक्ति का देहान्त हो जाता है तो उसके पश्चात् उसके धन या स्थान पर अधिकार प्राप्त करने के लिए कोई–न–कोई निकट संबंधी या उत्तराधिकारी खड़ा हो जाता है तो शिरडी जैसे संस्थान की अनगनित संपति तथा असाधारण पूँजी पर स्वामित्व प्राप्त करने का मोह किसी को भी क्यों न हुआ ? इसका समुचित उत्तर यही है कि श्री साई महाराज अयोनिज थे। उनका जन्म किसी भी कुल या धर्म में नही हुआ था। दुनिया के इतिहास में यह कोई असंभव बात नहीं कही जा सकती। सन्त कबीर तथा नामदेव महाराज की भाँति ही श्री साई महाराज में ब्रम्ह–स्थिति पूर्णावस्था में विकसित हुई थी और इसलिये हिन्दू–मुसलमानों के साथ वे एक–सा ही व्यवहार करते थे। इसीलिये श्री बाबा के जन्मस्थान या उनके धर्म के संबंध में वादविवाद या तर्क–वितर्क न करके, उन्हें ब्रम्ह से एकता प्राप्त किया हुआ अवतारी पुरूष मानकर उनके पवित्र चरणों में अपना मस्तक नत करना ही भक्ति के लिये श्रेयस्कर है।

इस संबंध में जो दो–तीन अन्य बातें ज्ञात हुई हैं, उन पर भी श्रद्धालु भक्तों को अवश्य विचार करना चाहिए। जब से श्री साई महाराज का शिरडी में आगमन हुआ, तभी से शिरडी गाँव के म्हालसापति सुनार सदैव उनके साथ रहे। श्री बाबा के भक्त तो अनेक थे, परंतु म्हालसापति से उन्हें अधिक स्नेह था। म्हालसापति ने भी तन–मन–धन से लगभग तीस–चालीस वर्ष तक श्री बाबा की एकनिष्ठ भाव से निरंतर सेवा की। एक दिन रात्रि में सोते समय एकान्त में म्हालसापति ने श्री बाबा से यह प्रश्न किया था कि, "आप कौन है ?" इस पर श्री साई महाराज ने उत्तर दिया था, "मै ब्राम्हण–कुल में उत्पन्न हुआ था। मै आरम्भ में 'पाथरी' मे रहता था। उसके पश्चात् मेरी माँ ने मुझे एक फकीर को सौंप दिया।" कुछ वर्षो के बाद पाथरी के एक निवासी श्री बाबा के दर्शन के लिये शिरडी आये। श्री बाबा ने उनके साथ वार्तालाप करते समय पाथरी गाँव के संबंध में काफी पूछताछ की। इससे यह पूर्णतः

सिद्ध होता है कि श्री बाबा पाथरी गाँव के संबंध में बहुत कुछ जानते थे और उनका बाल्यकाल संभवतः वहीं व्यतीत हुआ था।

इसी प्रकार पूना की सुप्रसिद्ध विदुषी काशीबाई कानिटकर ने जो अपने अनुभव लिखे है, वह भी महत्वपूर्ण एवं विचारणीय है। काशीबाई 'थियोसोफिस्ट' थी और अपनी विचार–प्रणाली के अनुसार श्री साई महाराज की विस्मयजनक लीलाओं का वृतान्त सुनकर उनके मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि श्री साई महाराज वाम मार्ग अपनाने वाले कोई तांत्रिक है। इस विषय को लेकर उनका अपने परिचित व्यक्तियों के साथ वादविवाद भी हुआ। तदनन्तर कुछ दिनों के बाद उन्हें शिरडी जाने का अवसर प्राप्त हुआ। काशीबाई को देखते हुए श्री बाबा बोल उठे –''आँखे खोलकर भली–भाँति देख लो मैं, ब्राम्हण हूँ सच्चा ब्राहम्ण कभी भी वाममार्ग को अपना कर जादू–टोना नहीं करता। इस ब्राहम्ण की पवित्र द्वारकामाई में बुरे कर्म करने वाले पैर रखने का साहस भी नहीं कर सकते।''

श्री साई महाराज के एक भक्त नानासाहेब चाँदोरकर जी ने कुछ निजी अनुभव लिखे हैं, जिनसे इस तथ्य की और भी पुष्टि हो जाती है कि श्री साई महाराज जन्म से हिन्दू थे; पंरतु उनके गुरू कोई मुसलमान फकीर थे। श्री साई महाराज ने किसी भी धर्म की अवहेलना नहीं की और न ही किसी एक विशिष्ट धर्म में अपने अंध–विश्वास का ही प्रदर्शन किया। यह सच है कि श्री बाबा के भक्तों में हिन्दूओं की संख्या अधिक रहती थी। पंरतु इस कारण को लेकर ही उन्होंने अन्य धर्मावलंबियों के साथ कभी भी भेदभावपूर्ण व्यवहार नहीं किया। आज भी सम्पूर्ण भारत वर्ष में हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि भिन्न–भिन्न धर्मो के लोग उनके भक्त हैं। सत्य तो केवल यही है कि श्री साई एक बहुत ही उच्च कोटि के सत्पुरूष थे। श्री साई महाराज जन्म से हिन्दू थे या मुसलमान, यह प्रश्न बहुत पुराना तथा विवादग्रस्त हे, इसीलिये इसके संबंध में अधिक विस्तार के साथ लिखने

का साधारण प्रयास किया गया है। बुद्धिमान पाठक अपने ही मन में विचार करे तो श्री साई महाराज स्वयं ही उन्हें साक्षात्कार देगें।

==========

सातवाँ अध्याय

आज्ञा का महत्व

श्री साई महाराज के दर्शनों के लिये आया हुआ कोई भी व्यक्ति उनकी आज्ञा के बिना वापिस नही लौट सकता था। श्री साई महाराज एक प्रकार से शिरडी के बेताज बादशाह थे। उनकी आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता था। श्री बाबा सभी भक्तों पर अपने अधिकार का प्रयोग करते थे; परंतु उनके आचरण में अहंकार या गर्व तो नाम मात्र के लिये भी दिखाई नहीं देता था, इसके विपरीत उनकी प्रत्येक आज्ञा में भक्तों के प्रति पूर्ण स्नेह और अपनत्व की सच्ची भावना ही दृष्टिगोचर होती थी। जो भक्त उनकी आज्ञा का पालन करता था। परिणाम में उसका कल्याण ही होता था। इसके विपरीत जिन भक्तों ने उनकी आज्ञा का उल्लघंन कर अपनी ही मनमानी की, उन्हें परिणाम में कटु अनुभव का सामना करना पड़ा। श्री बाबा की आज्ञा का उल्लंघन करना भी साहस का कार्य था। इस प्रकार के अनेक अनुभव सुनकर शिरडी में श्री साई बाबा के दर्शन करने के बाद वापिस लौटने के लिये उनकी आज्ञा माँगने की एक प्रथा ही चल पड़ी थी। कई लोग तो श्री बाबा की आज्ञा न मिलने के कारण शिरडी में ही रूके रहते थे।

इस प्रसंग में श्री बाबा के एक भक्त कप्तान विनायकराव हाटे का अनुभव उल्लेखनीय है। महायुद्ध में नौकरी पर जाने से पूर्व अपने नियमानुसार वह श्री बाबा के दर्शनों के लिये गये। परंतु श्री बाबा ने उन्हें वापिस लौट जाने की आज्ञा देने से साफ इन्कार कर दिया। परिवार के सब लोग चिंतित हुए। सेना के कार्यालय से आने वाले तारों का ढेर लगने लगा। पर श्री बाबा टस से मस न हुए। अंत में उचित तथा शुभ घड़ी आते ही श्री बाबा ने उन्हें शिरडी छोड़ने की स्वीकृति दी। फ्रान्स की रणभूमि में उत्कृष्ट सेवाएँ कर विनायकराव सकुशल स्वदेश वापिस लौट आये। सेवा करने के उददेश्य से बहुत दिनों तक वास करने का संकल्प मन में लेकर शिरडी आते थे। पर श्री बाबा उन्हें क्षण भर के लिये भी ठहरने की आज्ञा न देकर तुरंत लौट जाने को कह देते थे। बम्बई उच्च न्यायालय के एक कर्मचारी स्व.बालाराम बा.वगल शिरडी में कुछ दिन व्यतीत करने की इच्छा से आये। परंतु श्री बाबा ने उन्हें शीघ्र वापिस लौट जाने की आज्ञा दी। बालारामजी को बडा आश्चर्य हुआ। परंतु, श्री बाबा में पूर्ण श्रद्धा रखते हुए वे उसी क्षण वापिस चल दिये। प्रातःकाल वे घर पहुँचे तो देखा कि वहाँ बड़ा कोलाहल मचा हुआ है। उनका सब से बड़ा लडका सख्त बीमार था। घर के लोग उन्हें शिरडी तार भेजने का विचार कर रहे थे। बम्बई में बालाराम के घर में जो परिस्थिति बन गई थी, उसे अंतर्ज्ञान से जानकर ही श्री बाबा ने उन्हें उल्टे पाँव शिरडी से रवाना कर दिया।

दर्शन करने के बाद जब भक्त लोग वापिस जाने के लिये आज्ञा माँगते थे, तो श्री साई महाराज के मुख से प्रत्येक अवसर पर कुछ–न–कुछ महत्वपूर्ण सांकेतिक शब्द निकलते थे। बहुधा वह किसी संकट की पूर्व सूचना होती थी। कई अवसरों पर तो श्री बाबा के रहस्यमय उदगारों का ठीक–ठीक अर्थ तत्काल स्पष्ट नहीं होता था। परंतु बाद में भक्त को जो अनुभव मिलता था। उससे श्री बाबा के शब्दों का रहस्य उसके समक्ष खुल जाता था। एक बार श्री साई के परम भक्त तात्या कोते पाटील ताँगे में बैठकर कोपरगाँव

की मंडी में जाने के लिये निकले। श्री बाबा की आज्ञा प्राप्त करने के लिये वे जल्दी–जल्दी द्वारकामाई पहुँचे। उनकी ओर देखकर श्री बाबा ने कहा–"यह बिना बात की जल्दी कैसी ? कुछ देर यही ठहरो। बाजार उठ भी गया तो कोई हानि नहीं। पर इस समय गाँव के बाहर मत जाओ।" तात्या पाटील को किसी आवश्यक कार्य के लिये जाना ही था, इसलिये वे बेचेन हो गये। उनकी उतावली को देखकर श्री साई पुनः बोले "ठीक है, जाना चाहते हो तो जाओ। परंतु कम से कम शामा (माधवराव) को अपने साथ ले जाओ।" पर श्री बाबा की आज्ञा की अवहेलना कर तात्या पाटिल ने तुरन्त ही अपना ताँगा दौड़ाया। तात्या पाटिल ने थोडे दिन पहले ही तीन सौ रूपये खर्च कर एक नया घोड़ा खरीदा था। वह घोड़ा बडा चंचल और द्रुतगामी था। सहसा वह काबू से बाहर हो गया। फलस्वरूप अचानक उसकी छाती की नस तडाक से फट गई और गाँव के सीमा के निकट ही 'सावली विहिर' तक पहुँचते वह भूमि पर लुढक गया। ताँगा पूर्णतः टूट–फूट गया। भाग्यवश तात्या पाटिल को कोई गंभीर चोट नही पहुँची। अपने अलौकिक सामर्थ्य से श्री बाबा ने उनकी रक्षा कर ली थी। श्री बाबा के शब्दों का स्मरण होते ही तात्या पाटिल ने वहीं श्री साई महाराज को साष्टांग प्रणाम किया।

एक बार बम्बई के एक यूरोपियन सज्जन मन में कुछ गुप्त भाव लेकर शिरडी आये। श्री बाबा ने उन्हें द्वारकामाई में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी और उन्हें बाहर खड़ा रहने के लिये कहा। उस यूरोपियन सज्जन नें उसे अपमान समझा। अतः उसने रूष्ट होकर तुरन्त ही लौट जाने का निश्चय किया। श्री बाबा ने उन्हें बाहर खुले स्थान में तम्बू में एक रात्रि व्यतीत करने के लिये कहा। पर वह श्री बाबा के आदेश की उपेक्षा कर तुरन्त ताँगे में बैठकर शिरडी से कोपरगाँव की ओर चल पड़े। संयोगवश सामने एक बाईसिकल का आना निमित्त–मात्र ही हुआ,और ताँगा उलट गया। यूरोपियन सज्जन धड़ाम से नीचे गिर पड़े। वे बुरी तरह से घायल हुए और उनकी पीठ तो रक्त से लथपथ हो गई। परिणाम यह हुआ की उन्हें एक लम्बे

अर्से तक कोपरगाँव के अस्पताल में उपचार कराना पड़ा। अनागत को जानने वाले श्री साई की आज्ञा कई बार भक्तों पर आने वाली विपत्ति को टालने के लिये ही होती थी। पर जो व्यक्ति उनकी आज्ञा की अवहेलना करते थे, उन्हें निश्चय ही संकट झेलना पड़ जाता था।

एक बार श्री साई के परम भक्त काका महाजनी श्रीकृष्णजन्माष्टमी के उत्सव में सम्मिलित होने के लिए आठ दिन का अवकाश लेकर शिरडी पहुँचे। जब वे श्री बाबा के दर्शनार्थ द्वारकामाई में गये तो श्री बाबा ने अचानक प्रश्न किया, "काका, तुम वापिस कब जाओगे ?" श्री बाबा का यह अप्रत्याशित प्रश्न सुन कर अपने मन की इच्छा प्रकट न करते हुए महाजनी हाथ जोड़कर बोले–"बाबा, जब आप कहेंगे, मैं उसी क्षण वापिस जाने के लिये तैयार हूँ।"

इस पर श्री बाबा ने उत्तर दिया–"अच्छा, तो फिर तुम सुबह ही गाड़ी से वापिस चले जाओ।" श्री बाबा की आज्ञा का उल्लंघन करने का साहस तो किसी भी भक्त में नहीं था। श्री बाबा की आज्ञानुसार महाजनी दूसरे दिन बम्बई पहुँच कर अपने काम पर उपस्थित हो गए। उन्होंने वहाँ जाकर देखा कि उनका उच्च अधिकारी बड़ी कठिनाई में पड़ा था। कार्यालय का एक अन्य कर्मचारी रोग–ग्रस्त हो गया था और इस कारण कार्यालय का सारा काम रूका पड़ा था। महाजनी को उनका स्वीकृत अवकाश रदद् कर, शीघ्र बम्बई अपने काम पर वापिस आने का एक पत्र भी कार्यालय से शिरडी भेजा जा चुका था। कुछ दिनों बाद वह पत्र वापिस बम्बई आ गया। शिरडी में काकासाहेब को देखते ही उनके बम्बई कार्यालय में जो अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी, वह श्री बाबा के ध्यान में आ गई और उन्होंने पत्र मिलने से पूर्व ही तुरन्त काकासाहेब को बम्बई लौटने का परामर्श दे दिया। श्री साई की इस लीला से स्पष्टतः सिद्ध हो जाता है कि वे अपने भक्तों की कठिनाईयों के प्रति कितने जागरूक रहते थे।

इसके ठीक विपरित ऐसी एक घटना श्री बापूसाहब धुमाल के

सम्बन्ध में है, जो बड़ी ही रोचक है। श्री धुमाल न्यायालय के एक कार्य के लिए निफाड़ जा रहे थे।

मार्ग में श्री बाबा के दर्शनार्थ शिरडी आये। श्री बाबा ने उन्हें कुछ दिन शिरडी में ठहरने का परामर्श दिया। पर, उधर न्यायालय में तारीख निश्चित हो चुकी थी, और इसलिए श्री धुमाल को निफाड़ में न्यायाधीश के सामने अनिवार्यतः उपस्थित होना था। परंतु, श्री बाबा ने अपनी अनुमति नही दी। श्री बाबा में पूर्ण विश्वास रख श्री धुमाल वहीं रहे। आश्चर्य की बात, कि जिस न्यायधीश की अदालत में उनका मुकदमा चल रहा था, वे स्वयं ही मुकदमे के दिन उदर पीडा से ग्रस्त हो गये और श्री धुमाल के मुकदमे की सुनवाई स्थगित हो गई। फिर कुछ महिनों के बाद मुकदमे की सुनवाई आरम्भ हुई और अंत में श्री धुमाल उस मुकदमे में विजयी हुए।

श्री साई बाबा दर्शनार्थ आये हुये किसी भक्त को यदि वापिस जाने के लिए अनुमति नही देते थे तो इसका मुख्य कारण उस भक्त पर भविष्य में आने वाली विपत्ति को टालना ही होता था। पर इसके अतिरिक्त कभी–कभी श्री साई महाराज भक्तों को उपदेश देने के अभिप्राय से भी रोक लेते थे।

एक बार ऐसे ही नानासाहेब चाँदोरकर एक कीर्तनकार को साथ लेकर शिरडी पहुँचे ? उस कीर्तनकार का किसी दूसरे गाँव में कीर्तन का आयोजन था और इस कारण वापिस लौटने के लिए वह बड़ा व्यग्र था। जब वे दोनों श्री बाबा की आज्ञा माँगने के लिए गये, तो श्री बाबा ने स्पष्टतः यह कह दिया–"आज आप दोनों न जायें तो अच्छा है।" नानासाहेब ने तो अपना निश्चय बदल दिया; परंतु कीर्तनिया श्री बाबा की अवहेलना कर वहाँ से चल दिया। उसे जाते हुए देख श्री बाबा ने नानासाहेब की और मुड़कर कहा–"देख, लोग कितने स्वार्थी होते है। जब घड़ी आती है तो अपने साथी को छोड़कर निजी स्वार्थ पूरा करते है। इसलिये सदैव ऐसा मित्र या साथी ढूँढ़ना चाहिये, जो कभी भी हमारा साथ न छोड़े। सभी भूतमात्रों से स्नेह

रखना चाहिए; परंतु संग सद्‌गुरू का ही करना चाहिये। वह अपने भक्तों का साथ कभी भी नहीं छोड़ता।'' सायंकाल नानासाहेब ने स्वस्थ चित्त से भोजन किया और पूर्ण विश्राम करने के बाद श्री बाबा की अनुमति से वे स्टेशन पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कीर्तनिया को उद्विग्न मुद्रा में बैठे देखा; क्योंकि उस दिन गाड़ी बहुत ही देर से आ रही थी। किर्तनिया को वहाँ अन्न–जल के बिना क्षुधित अवस्था में ही गाड़ी की लम्बी प्रतिक्षा करनी पड़ी।

=========

आठवाँ अध्याय

उपदेश की अमृतनिधि

कृषि विभाग में इन्सपेक्टर के पद पर काम करने वाले श्री साई महाराज के एक भक्त श्री नानासाहेब बेरे जब अपने मित्र के साथ बाबा के दर्शनार्थ गये तो बाबा ने उनसे कहा–"आप लोग तुरन्त ही यहाँ से चले जाय।" श्री बाबा की आज्ञा शिरोधार्य कर बेरे वहाँ से चले दिये। उन्होंने ताँगे वाले से ताँगा तेज चलाने के लिये कहा। बेरे के मित्र एक दूसरे ताँगे में बैठे हुए पीछे–पीछे आ रहे थे। वे सब जोर से चिल्ला कर बोले–"क्यों भाई, इतनी जल्दी क्या है ? अभी तो गाड़ी आने में काफी समय है। धीरे–धीरे मजे में चलों।" बेरे ने अपने मित्र की बात पर जरा भी ध्यान नहीं दिया; क्योंकि श्री साई महाराज में उनकी पूर्ण आस्था थी। अपने पिछले अनुभवों के आधार पर वह श्री बाबा के मुख से निकले हुए शब्दों का अर्थ भली–भाँति समझते थे और इस समय भी उन्हें श्री बाबा के कथन का रहस्य ज्ञात हो गया। बेरे का ताँगा शीघ्रता से रास्ता पार कर निर्दिष्ट स्थान तक पहुँच गया; परन्तु, बेरे के मित्रों का तांगा, जो पीछे धीरे–धीरे आ रहा था, जंगल में चोरों ने घेर लिया। चोरों ने उनका सारा समान लूट लिया और बेरे के सभी मित्रों को, जिन्होंने उनकी हँसी उड़ाई थी, उन्हें बुरी तरह मारा–पीटा। जब बेरे को इस घटना का पता लगा तो उन्होंने श्री बाबा की लीला का रहस्य जाना और सब से कहा कि श्री साई महाराज ने ही आज उनकी रक्षा की। श्री बाबा की इस लीला से भी स्पष्ट हो जाता है कि वे कितने लोकोत्तर–परायण थे। लोगों को ऐसे अनेक अनुभव नित्य होते रहते थे। इसलिए श्री बाबा में भक्तों की प्रेममय श्रद्धा एवं निष्ठा दिन–रात बढती गई। लोगों में यह विश्वास उत्पन्न हो गया कि श्री साई यथार्थ में सद्‌गुरू है और उनके दर्शनों के लिए भक्तों का ताँता बंध गया।

एक बार 'श्री साई सच्चरित्र' के लेखक श्री हेमाडपन्त(दाभोलकर)की

गाड़ी का पहिया टूट गया; पंरतु श्री बाबा ने उनकी रक्षा की। अनेक भक्तों के सामने आकस्मिक और आकल्पिक विघ्न आ खड़े हुए है; पंरतु, ऐसे प्रत्येक अवसर पर श्री साई बाबा उनके रक्षण के लिये सदैव तत्पर रहे। यह बात विशेषतः ध्यान मे रखनी चाहिये कि जिन भक्तों ने सहृदय श्री बाबा की आज्ञा की अवहेलना कर दी, श्री बाबा ने विपत्ति की घड़ियों में अपने दयालु अन्तःकरण से उनकी भी रक्षा की है। अपने बालक के अपराध को क्षमा कर माता उसे सदैव स्नेह से अपने आंचल का आश्रय देती है। श्री बाबा का मन भी भक्तों के लिए वात्सल्य से पूर्ण था। ऐसा एक भी उदाहरण विदित नहीं, जिससे यह सिद्ध हो कि श्री बाबा ने किसी से निष्ठुरता का व्यवहार किया हो। श्री साई महाराज यद्यपि अतिशीघ्र क्रोधित हो जाते थे, तथापि उन्होंने किसी भी भक्त को कभी हाथ नही लगाया। जब मन का संताप असहाय होता था, तो वे लाखो गालियाँ मुख से निकालते थे। शयनागार से द्वारकामाई तक जाते समय हाथ के डंडे को जोर–जोर से घुमाकर, मुख से गालियों की वर्षा करते हुए, उन्हें अनेक लोगों ने देखा है। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि ऐसे आवेश के क्षणों में भी, जब कि उनके मुख से लगातार अपशब्द निकलते थे, वे प्रतिक्षण 'अल्ला तेरा अच्छा करेगा, भगवान तेरा भला करेगा,' यह भी बहुत दबी, किन्तु स्पष्ट आवाज में कहते जाते थे। अत्यधिक कोप की अवस्था में भी वे सामने आए हुए भक्त को पूर्ण शांति के साथ स्नेह भरा आशीर्वाद दिया करते थे। क्या यह किसी सामान्य मनुष्य के लिए संभव है ? श्री साई तो काम, क्रोधादि वृत्तियों के वश में न आकर सदैव सत्स्वरूप में ही रमण करने वाले एक नित्यानंद साधु पुरूष थे। उनका क्रोध एक दिखावा मात्र ही होता था। श्री बाबा का अन्तःकरण सावन के मेघ की भाँति दयाद्र और सागर के सदृश गंभीर था। मेघ गरजते है, सागर में भी तूफान उठता है। पंरतु दोनों ही अहर्निश अमृत वर्षा कर चराचर सृष्टि को समृद्ध एवं विकसित करने का प्रयन्त करते है। प्रकृति का यह चमत्कार श्री साई

ने महाराज में भी दृष्टिगोचर होता था।

एक बार द्वारकामाई में आरती के समय श्री बाबा ने एकाएक ही नृसिंहावतार का–सा स्वरूप धारण किया। आरती और नैवेद्य की सारी सामग्री एकदम बाहर फेंक दी। हाथ में सँभाला हुआ डंडा जोर–जोर से भूमि पर पटकना आरंभ किया। किसी को भी आरती नही करने दी वहाँ उपस्थित श्री दादासाहब खापर्डे भी भारी उलझन में पड गये। अन्त में थोडी देर बाद ही श्री बाबा का कोप शान्त हुआ और उन्होंने 'म्हणाला' जाति के एक भक्त से, जो उनकी सेवा के लिए शिरडी में वास करता था, नित्य की भाँति अपनी पूजा–अर्चना करवाई। श्री बाबा के सन्ताप का कारण भी तब स्पष्ट हुआ। उनके एक भक्त को उस समय किसी फौजदारी अभियोग में अकारण ही बड़ा कष्ट सहन करना पड़ रहा था। इसलिये श्री बाबा का संताप असहाय हो उठा था। अन्त में श्री बाबा एक वकील के रूप में उस भक्त की सहायता के लिए पहुँचे और उसके मुक्त होने पर ही उनका क्रोध शान्त हुआ।

श्री साई महाराज की ऐसी लीलाओं का अर्थ समझना प्रत्येक व्यक्ति के लिये सभंव नहीं था और इसीलिये कुछ भक्तों के मन में संकल्प–विकल्प उत्पन्न होते रहते थे। श्री बाबा की गालियाँ देने की जो लीला थी, उससे अनेक भक्तों के मन में शंकाओं का ताँडव नृत्य होने लगता था। वे सोचते थे कि सत्पुरूषों की वाणी तो शुद्ध और पवित्र होती है, फिर श्री बाबा ने यह निंदनीय मार्ग क्यो अपनाया ? इस प्रश्न ने श्री बाबा के एक भक्त प्रो. नारके के मन में भी घर कर लिया और उन्होंने सुप्रसिद्ध सन्त श्री माली महाराज के सम्मुख अपनी शंका उपस्थित की। श्री माली महाराज ने प्रो. नारके से पूछा कि क्या तुमने श्री साई को अपशब्द कहते हुए सुना है ? सुना है, तो अपनी आँखों से देखा हुआ कोई उदाहरण मेरे सामने रखो। इस पर प्रोफेसर साहब ने तुरन्त उत्तर दिया–"अभी कुछ ही महीनों की बात है, मैं शिरडी गया था। वहाँ द्वारकामाई के बाहर एक गरीब हरिजन स्त्री श्री बाबा के दर्शन

के लिए खड़ी थी। उसकी ओर देखते हुए श्री बाबा अनाप–शनाप गालियाँ सुनानी आरंभ की। यह सब कुछ मैने स्वयं देखा और सुना।''

श्री माली महाराज कुछ क्षण ध्यानमग्न बैठे रहे और फिर हँस कर बोले ''साधुओं की निराली बातों का अर्थ आप नहीं समझ सकते। साई महाराज के चमत्कार मानवीय बुद्धि में सरलता से आने वाले नहीं होते। साई महाराज ने अपशब्दों का उच्चारण कर उस स्त्री को वास्तव में जो चाहिए था, वही दिया। चाहे तो आप उस स्त्री के गाँव जाकर उससे स्वयं मिलें और अपने मन का समाधान करें। वह स्त्री महाराज के पास संतति–प्राप्ति की इच्छा से गई थी। साई महाराज के मुख से निकले हुए अश्लील तथा कर्ण–कटु वचनों के फलस्वरूप ही उस संतति–विहीन स्त्री की गोद भर गई। श्री बाबा की कृपा से आज वह एक बच्चे की माँ बनी है।''

श्री साई की लीलाएँ ऐसी ही विलक्षण होती थी। अनेक अवसरों पर भक्तों को श्री बाबा के शब्दों का स्पष्ट अर्थ ही ज्ञात नहीं होता था। पंरतु, श्री बाबा के भक्तों में से म्हालसापति, नानासाहेब चाँदोरकर, दासगणू महाराज आदि पुराने तथा अनुभवी भक्त श्री बाबा की सांकेतिक भाषा समझने में अति कुशल थे। ये भक्त श्री बाबा के शब्दों का ठीक–ठीक अर्थ जानकर दुविधा ग्रस्त भक्तों को समझा–बुझा दिया करते थे। श्री साई महाराज के उपदेश देने की पद्धति शाब्दिक न होकर अनुभवों के आधार पर होती थी। इसलिए वे शब्दों की आवश्यकता से अधिक महत्व नहीं देते थे। जिव्हा पर जो आया, वह कह ही देते थे। किसी भी गहन–गूढ विषय को लेकर श्री साई विस्तृत व्याख्यान देने के आदि नहीं थे। सूत्र की तरह बहुत ही थोड़े शब्दों में तथा संक्षिप्त वाक्यों में अपने मन का भाव प्रकट कर, किसी भी व्यक्ति का पूर्ण समाधान करने का अद्भुत सामर्थ्य उनकी वाणी में था। पुँगी के मंजुल नाद से नृत्य करने वाले विषैले नागों की भाँति ही श्री बाबा भी आये हुए किसी भी दुष्ट प्रकृतिवाले या नीच व्यक्ति के मन को संपूर्णतः प्रभावित कर सकते थे।

श्री बाबा के मुख से निकले हुए संक्षिप्त इने–गिने शब्द बहुत मूल्यवान तथा सदुपदेश से ओत–प्रोत होते थे।

एक दिन आरती समाप्त होने के पश्चात् श्री साई महाराज ने अत्यन्त शान्तिपूर्वक तथा गंभीरता से वहाँ एकत्रित भक्तों को सदुपदेश दिया। उन्होंने कहा–''मेरे प्रिय भक्तों, आप कहीं भी हों, कुछ भी करें, पंरतु एक बात सदैव ध्यान में रखों कि आपकी सभी बुरी–भली बातें मुझे तुरंत ही ज्ञात हो जाती है। मैं सभी भक्तों के अंतःकरण में प्रवेश कर उनमे संबंधित समस्त चल ओर अचल वस्तुओं परमेश्वर की आज्ञा से सूत्रधार के रूप में गति देता हूँ। पंरतु, मेरे हाथों में यह मायापटल दूर करने की ईश्वरदत्त शक्ति है। इसीलिये मैं किसी भी व्यक्ति का, उसका कार्य सुचारू रूप से पूर्ण करने के लिये उचित मार्गदर्शन कर सकता हूँ। प्रत्येक व्यक्ति का उद्धार करना ही हमारे इस जन्म का कार्य है। साधक अवस्था में संसार के मोह–पाश में फँसे हुये जीवों पर धीरे–धीरे शुद्ध स्वरूप के संस्कार डालकर उन्हें पूर्ण परब्रम्हावस्था में पहुँचाना, ही हमारा अंतिम ध्येय है। केवल भेद इतना ही है कि अपनी गुरू–परम्परा के अनुसार हमारा मार्ग अन्य संतों के मार्ग से थोड़ा भिन्न है।''

श्री साई महाराज के उपदेश का परिणाम तत्काल ही दृष्टिगोचर होता था और भक्त को तत्क्षण कोई बुरे कर्म करने का पश्चाताप भी होता था। यह एक वकील साहब के उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। एक बार एक वकील साहब की ओर सहज भाव से दृष्टिक्षेप करते हुए कहा–''लोग भी देखिये कितने चालाक होते है। यहाँ आकर प्रणाम करते है, दक्षिणा देते है, परंतु मन में गालियाँ भी देते है।'' ये शब्द श्री बाबा किस व्यक्ति को लक्ष्य बनाकर कह रहे थे, यह किसी के भी ध्यान में नहीं आया दोपहर को भोजन के बाद जब वहाँ उपस्थित भक्त लोग विश्राम कर रहे थे, तो प्रातःकाल आये हुए वकील साहब स्वयं ही बोले–''सुबह बाबा ने जो शब्द कहे थे, वे मेरे ही संबंध में थे। हमारे मुन्सिफ साहब बाबा से प्रभावित हुए हैं। यहाँ आने के पूर्व

एक दिन हम वकील लोग एकत्रित हुए थे। उस समय मैने मुन्सिफ साहब का मजाक उड़ाया था। इसी प्रसंग मे मैं श्री बाबा की भली–भाँति भर्त्सना कर बैठा था। मुझे देखते ही उन्होंने मेरे कुकृत्य का मुझे स्मरण कराया। मुझे अच्छी शिक्षा मिली। भविष्य में मै कभी भी इस प्रकार का दुःसाहस नहीं करूँगा।''

वकील साहब की भाँति अनेक भक्तों को नित्य ऐसे अनुभव होते रहते थे और भक्तों के मन में यह भावना घर कर गई थी कि श्री साई अपने अंतर्ज्ञान से भक्तों की सारे बातें जान लेते है। मन में थोड़ा–सा भी विकार उत्पन्न हुआ हो या अपने विचार चाहे किसी से भी प्रकट न किये हों तो भी श्री बाबा अंतर्ज्ञान से उसे जान लेते है, यह दृढ भावना भक्तों के मन में बैंठ गई थी। इस कारण स्वाभाविक ही भक्तों के मन अत्यन्त प्रभावित हो चुके थे और उनके मन तथा आचरण दोनों ही क्रमशः निर्मल होते जाते थे। किसी के लिए जादू के डंडे से अनेक जन्मों के संस्कार सपूर्णतः बदलना संभव नही है, फिर भी श्री साई महाराज की लीलाओं तथा उपदेशों से भक्तों की वृत्ति में शनैःशनैः अवश्य ही परिवर्तन हो जाता था और भक्तों को अंतःकरण की गूढ़ वृत्तियों में सूक्ष्म कंपन परिवर्तन होने का प्रत्यक्ष अनुभव होता था। अनुभवों के द्वारा श्री साई की सर्वज्ञता का विश्वास मन में उत्पन्न होने से भक्तों का धैर्य बढ़ता था। श्री बाबा के विषय में पहले मन में जो भय उत्पन्न होता था, वह धीरे–धीरे नष्ट हो जाता और यह भावना उद्भुत होती थी कि ''सहृदय श्री साई माता–पिता के समान ही हमें सँभालने के लिये सदैव तत्पर हैं, हमें घबराने का कोई कारण नही।'' भक्तों के मन में इस प्रकार का आत्म–विश्वास सहज ही बैठ जाता और उनके मन में पवित्र संस्कारों का उदय होता था।

श्री साईनाथ महाराज ने लोगों को भक्ति–मार्ग दिखला कर उन्हें अपने इष्ट देवी–देवताओं की शास्त्रानुकूल आराधना तथा पूजा करने की

शिक्षा दी। स्वयं उनके मुख से परमात्मा के नाम का अखण्ड जप चलता ही रहता था। रात्रि में निद्रावस्था में न होते हुए भी जानबूझ कर आँखे बंद कर निद्रावस्था में होने का भान कराते थे। केवल श्री बाबा के दर्शन मात्र से भक्तों के अंतःकरण में भक्ति की लहरें तरंगित होती थी और उनकी ओर देखने मात्र से भक्तों की आँखों के सामने उनके आराध्य देवता की मंगलमय प्रतिमा आ खड़ी होती थी। इस चमत्कार का अनुभव एक–दो नहीं, अनेक भक्तों को हो चुका है। श्री बाबा के एक भक्त गौलीबुवा को जो साक्षात्कार हुआ, वह वास्तव में विचारणीय है।

गौलीबुवा श्री साई के बहुत पुराने भक्तों में से एक थे। वर्ष के आठ माह वे पंढरपूर में श्री विटठ्ल के चरणों में बिताते थे और बाकी चार महीने गोदावरी के तट पर इधर–उधर भ्रमण करने में व्यतीत करते थे। प्रतिवर्ष पंढरपूर में श्री विटठ्ल के दर्शनार्थ जाने के पूर्व वे श्री साईनाथ महाराज के दर्शनों के लिये शिरडी भी आते थे। उनके साथ उनका परिवार तथा शिष्य मंडली भी होती थी। जब वे श्री बाबा के दर्शनार्थ आते थे तो एकाग्रचित्त से ध्यानस्थ श्री साई की दृष्टि की ओर देखते हुए बैठ जाया करते थे। समाधि भंग होने के बाद गौलीबुवा अपनी शिष्य–मंडली को कहते थे–"दीन–दयाधन परम दयालु साई तो पंढरी के श्री विठोबा के प्रत्यक्ष अवतार है। साई महाराज की व्यर्थ ही स्तुति करने के हेतु से मैं यह नहीं कह रहा हूँ। पंरतु, बिल्कुल निर्मल एवं शुद्ध पवित्र बुद्धि से मैं कहता हूँ कि श्री साई के रूप में प्रत्यक्ष विटठ्ल ने मुझे दर्शन दिये है।" गौलीबुवा की भाँति अन्य सामान्य व्यक्तियों को भी ऐसे ही अनेक अनुभव हो चुके है; परन्तु ग्रंथ विस्तार के भय से उनका वर्णन यहाँ नहीं किया जा सकता।

अपने भक्तों के प्रति श्री साई महाराज के मन में पूर्ण गर्व और स्नेह भरा रहता था। किसी भक्त पर दैवगति से यदि कोई आपत्ति आ जाती तो श्री बाबा का संताप भी असहाय हो जाता था। श्री बाबा के तन–बदन में भी

मानो आग लग जाती थी। अपना सारा सामर्थ्य जुटा कर वे भक्त को संकट–मुक्त करते थे या कम–से–कम उसकी रक्षा करने का प्रयत्न करते ही थे। "श्री साई सच्चरित्र" के लेखक हेमाडपन्त ने श्री साईनाथ महाराज की लीलाओं का विशेष गहराई और बुद्धिमतापूर्वक अध्ययन किया है। एक बार श्री साई महाराज ने उनसे कहा–"वैसे तो इस संसार में हर एक को सुख दुःख भोगने ही पडेंगे, परंतु मैं अपने एकनिष्ठ भक्त को कुटुंब–निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तुओं की यानी अन्न–वस्त्र आदि की कमी अनुभव होने नहीं दूँगा। मुझ जैसे एक अकिंचन फकीर से भक्तों को अधिक आशा नहीं रखनी चाहिए। क्षणभुंगर संपति और मान–मान्यता के सम्बन्ध में झूठी आशाओं को मन में स्थान न दो। जो बातें मेरी शक्ति के बाहर की हैं, उन्हें पाने के लिये मेरे चरणों का आसरा न लो। उसके बदले में यदि आप सच्चिदानंद दयाधन प्रभु की एकनिष्ठता से आराधना करेंगे तो वही आपकी पुकार सुनकर आपकी रक्षा के लिये दौड़कर आयेगा। हम तो निमित्त मात्र के लिये परमेश्वर के बंदे, गुलाम है। किसी भी धर्म के परमेश्वर का ध्यान एक बार मन में निश्चित कर लो। अनन्य भाव और परम भक्ति से अपने इष्ट देवता की आराधना करो और फिर आपको मुझ में द्वैत भाव दिखाई नहीं देगा। मन की एकाग्रता तथा समाधि की पूर्व स्थिति प्राप्त करने के लिए अपना मन सदैव शुभ या शिव–संकल्पों की ओर प्रवृत्त करना चाहिये। दुष्ट, नीच विचारों के परित्याग कर सदैव सदाचरण से जीवन व्यतीत करने वाले मित्रों की ही संगति करनी चाहिये।" श्री महाराज की हेमाडपन्त से कही हुई बातें सचमुच ही भक्तों के हाथ आई हुई एक अमृतनिधी है। श्रद्धालु भक्तों के लिये तो इसका एक–एक शब्द लाख–लाख के मोल का सिद्ध होता है।

=========

नौवाँ अध्याय

शिरडी के धन्वंतरि

देखा गया है कि प्रायः प्रत्येक मनुष्य को विपत्ति के समय परमेश्वर का स्मरण होता है आनन्द और सुख के समय में मनुष्य की आँखे सम्पत्ति के नशे से अंधी हुई रहती है। उसके आचरण में विवेक की कमी आ जाती है। साधु–संत तो अपने बहुमूल्य समय का अपव्यय करने वाले फक्कड लोग होते है, ऐसा सोचकर बहुत से लोग जहाँ तक सम्भव हो, उनसे दूर ही रहने की चेष्टा करते है। पंरतु जब आपत्तियों के पहाड़ टूट पड़ते है, भयानक एवं असह्य रोगों से शरीर पीड़ित हो जाता है, तब परमात्मा का स्मरण होता है, और साधु–संतों के चरण स्पर्श की प्रबल कामना उत्पन्न होती है। संसार के प्रति विरक्ति उत्पन्न होने के कारण संत–समागम के प्रेमी अथवा परमात्मा मे अनन्य भक्ति रखने वाले जन बहुत थोड़े होते है। श्री साई महाराज का कीर्ति–परिमल जैसे जैसे फैलता गया, वैसे–वैसे ही दूर–दूर के लोग उनके दर्शनार्थ आने लगे। उनमें से अधिकांश लोग तो रोगों से ग्रस्त हुए श्री बाबा की कृपा से रोग–मुक्त होने की भावना से आते थे। श्री साई का औषधि सम्बन्धी ज्ञान परमोच्च कोटि का था। वे इस भूतल पर मानों मनुष्य–रूप में दूसरे धन्वंतरी ही थे। सहस्त्रों मनुष्यों को श्री बाबा द्वारा रोग दूर कराने का प्रत्यक्ष अनुभव था। श्री साई महाराज को आयुर्वेद तथा भिन्न–भिन्न वनस्पतियों, भस्मों आदि का अच्छा–खासा ज्ञान था, यह प्रत्यक्ष प्रमाण से भी सिद्ध हो गया था। शिरडी में आने के पश्चात् उन्होंने पहले तो युनानी पद्धति के अनुसार औषधि–उपचार करने की प्रथा आरंभ की। यदि गाँव का कोई मनुष्य रोग ग्रस्त होता तो श्री बाबा स्वयं ही उसके घर जाकर उचित औषधि से उसका उपचार कर देते थे। वे स्वतः परिश्रम कर रोगी की शुश्रूषा भी किया करते थे। जिन्होंने इस प्रकार की घटनाएँ स्वयं अपनी आँखों से देखी है,

ऐसे कुछ वयोवृद्ध लोग आज भी गाँव में हैं। निःस्वार्थी भाव से निःशुल्क औषधि देने तथा उपचार सुश्रुषा के कार्य से श्री बाबा का नाम अड़ोस–पड़ोस के गाँवों में भी फैल गया और लोगों के झुंड के झुंड शिरडी आने लगे। श्री साई महाराज की औषधियाँ भी भिन्न–भिन्न प्रकार की तथा विलक्षण होती थी। उनके रोगग्रस्त भक्तों का अनुभव भी यदि किसी ने संकलित करने का प्रयास किया तो निश्चय ही एक ऐसा आश्चर्यजनक बृहद् ग्रंथ तैयार हो सकेगा। जिससे श्री साई बाबा की प्रचंड बुद्धिमत्ता का अनुमान लगाया जा सके। किंतु, यहाँ भक्तों के विविध अनुभवों मे से कुछ चुने हुए अनुभवों का ही वर्णन करना समाचीन होगा।

श्री साई महाराज के लक्ष्मणराव उर्फ तात्या साहेब नूलकर नामक एक भक्त पंढरपुर के मुंसिफ थे। उनकी आँखों मे कोई भयानक रोग हो गया था। दृष्टि में विकृति उत्पन्न हो गई और असहय वेदना से वे तड़पने लगे। अनेक सुविख्यात नेत्र–वैद्यो से उन्होंने औषधियाँ ली। पर, कोई भी अनुकूल सिद्ध न हुई। अंत में निराश होकर, अंतिम उपाय के तौर पर वे गुरू–पूर्णिमा के दिन शिरडी पहुँचे। दो दिन तक आँखों पर पटट्टी बाँधे और श्री साई महाराज के नाम का जप करते हुए वे वही पड़े रहे। दूसरे दिन माधवराव को बुलाकर, अपनी आँखों पर हाथ रखते हुए श्री साई महाराज बोले–"शामा, आज मेरी आँखों में बडी पीड़ा हो रही है।" श्री साई के मुख से ये शब्द निकलने के पश्चात् नूलकर जी की आँखें, अपने आप ही धीरे–धीरे ठीक होती गई और कुछ दिनों के बाद बिना किसी उपचार के उनका नेत्ररोग पूर्णतः जाता रहा। क्या श्री साई महाराज का यह चमत्कार मन को चकित करने वाला नही है ? स्पष्ट है, जब भक्त के लिये वेदना असह्य हुई तो श्री साई महाराज ने स्वयं ही उस रोग पीड़ित हो, भक्त को आराम पहुँचाया।

शिरडी ग्राम में उस समय कोई अच्छा डॉक्टर नहीं था। एक बार श्री साई के पास एक रोगी आया। उसकी आँखे लाल हो रही थी और उनमे

सूजन भी आ गई थी। श्री बाबा ने उसे देखते ही पत्थर से भिलावाँ पीसकर उसकी दो गोलियाँ बनाई और रोगी की आँखो पर दोनों गोलियाँ रखकर ऊपर से कस कर कपडे की पटट्री बाँध दी। कुछ समय बीतने पर उसकी पटट्री खोल दी गई आँखो पर निरंतर जल छिड़कना आरम्भ किया। चमत्कार यह हुआ कि आँखो की सूजन पूर्णतः नष्ट हो गई और वे पूर्ववत् निर्मल हो गई। इस प्रकार श्री साई का उपचार बड़ा विलक्षण होता था। आँखो जैसे शरीर के कोमलांग के लिए भिलावाँ का साहसिक प्रयोग सत्पुरूष श्री साई महाराज के सिवाय अन्य कोई हकीम नहीं कर सकता। श्री साई की औषधि योजना केवल भक्तों के मन का समाधान करने के लिये निमित्त मात्र ही होती थी। श्री साई महाराज के मुख पर सदैव दीप्तिमान रहने वाले तेज और उनकी वाणी का ऐसा विलक्षण प्रभाव होता था, कि उनके सामर्थ्य का सही आकलन करना मानवीय मन की बात नही थी।

आलन्दी के पद्मनाथ स्वामी ने भी पत्र द्वारा निजी अनुभव प्रकाशित किये है। एक बार कान में कोई ऐसा विकार उत्पन्न हुआ, जिससे उन्हें असहय वेदना हुई। बम्बई के तत्कालीन सुप्रसिद्ध डॉक्टर अंडरवूड ने कान मे शल्य–क्रिया की आवश्यकता बतलायी। संयोग से श्री साई की कीर्ति सुनकर उसी समय पद्मानाभ स्वामी उनके दर्शनार्थ शिरडी आये। "प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षयः" इस श्रुति वाक्य में पूर्ण विश्वास रखते हुए स्वामी जी ने अपने रोग के संबंध में श्री साई महाराज से बात करने में संकोच अनुभव किया। किन्तु, समीप ही खडे माधवराव ने स्वामीजी के रोग–ग्रस्त होने की बात श्री बाबा से कह दी। उसी समय "अल्ला अच्छा करेगा।" ये स्नेह भरे शब्द श्री साई के मुख से निकले और उसी क्षण पद्मानाभ स्वामी जी के कान की व्यथा पूर्ण रूप से नष्ट हो गई। जब वे बम्बई लौटे तो वहाँ के सुप्रसिद्ध डॉक्टरों ने भी इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि औषधि के बिना ही रोग कैसे नष्ट हो गया।

किसी को जब कोई व्यथा होती तो उपचार के तौर पर श्री साई

महाराज जो उपाय करते थे, वह इतना निराला होता था कि देखने वाले की मति कुण्ठित हो जाती थी और वह अवाक् खड़ा रह जाता था। बालाभाऊ गणपत शिंपी मलेरिया से पीड़ित था। हर प्रकार की चिकित्सा की गई। डॉक्टरों की औषधियाँ और वैद्यों की भस्म व चूर्णों का प्रयोग किया गया ; परंतु मलेरिया किसी प्रकार भी न टूटा। प्रत्येक दिन नियत बुखार आ जाता था। अंत में निराश हो बालाभाऊ शिरडी आया और अनन्य भाव से श्री साई के चरणों की शरण ली। श्री बाबा ने दयालु अंतःकरण से एक बहुत ही विस्मयजनक उपाय बताया। उन्होंने कहा–"श्री लक्ष्मी के मंदिर के निकट एक पत्ते में दही भात रख एक काले कुत्ते को खिला दो।" पहले तो बालाभाऊ असमंजस में पड़ गया ; पर, घर जाकर देखा तो दही–चावंल तैयार ही था। उसमे से थोडा दही–चावल लेकर बालाभाऊ तत्परता से मंदिर की ओर चल पड़ा। चमत्कार यह हुआ कि उसी समय मंदिर के निकट पहले कभी भी न दिखाई देने वाला एक काला कुत्ता पूँछ हिलाता हुआ बालाभाऊ के लाये हुये भोजन की मानो प्रतिक्षा ही कर रहा था। देखते–देखते ही उस काले कुत्ते ने तुरन्त हाथ मे रखे हुए पत्ते की ओर लपककर सारा दही भात चट कर लिया। श्री साई महाराज का बालाभाऊ के लिये किया हुआ यह प्रयोग सफ़ल हुआ और बालाभाऊ का मलेरिया, जिससे वह बहुत दिनों से परेशान था, पूर्णतः नष्ट हो गया। श्री साई की यह लीलाएँ कितनी अवर्णनीय और विस्मयकारी होती थी ?

श्री साई की निजी इच्छा–शक्ति भी पूर्ण अवस्था में पहुँची हुई थी; क्योंकि कुछ असाध्य रोग तो उन्होंने केवल अपनी तीक्ष्ण दृष्टि की एकाग्रता से दूर कर दिए थे। एक बार श्रीमान बापूसाहेब बूटी अतिसार से पीड़ित हुए और उन्हें लगातार उल्टियाँ आनी भी आरम्भ हुई। बापूसाहब के पास औषधियों का बहुमूल्य संग्रह था ; परंतु, समय पर एक भी औषधि काम नहीं आई। बापूसाहब धैर्य खो बैठे और दुर्बलता बढने से उनका उठना–बैठना भी

बन्द हो गया। जब अपने नित्य नियम के अनुसार श्री बाबा दर्शन के लिये जाना भी असम्भव हो गया तो श्री बाबा ने स्वयं ही उन्हे कहला भेजा कि वह जिस अवस्था में भी हों, वैसे ही तुरंत मेरे पास आ जाये। श्री बाबा की आज्ञानुसार बापूसाहब बड़ी कठिनाईयों से द्वारकामाई आये और श्री बाबा के सम्मुख बैठ गए। उनकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए श्री बाबा बोले– "सावधान! हिलो मत। अब तुम्हें दस्त नही होंगे।" श्री बाबा की वाणी के दिव्य सामर्थ्य के कारण कहिये या मंत्र सामर्थ्य के कारण कहिये, उसी क्षण से बापूसाहब के स्वास्थ्य में सुधार होना आरंभ हो गया। पर कुछ दिनों के पश्चात् यही बापूसाहब पुनः हैजे के शिकार हुए। प्यास के मारे उनका गला सूख गया। डॉ. पिल्ले ने रोग को वश मे लोने का भरसक प्रयत्न किया ; किसी प्रकार का लाभ न हुआ। उधर बापूसाहब ने श्री बाबा के पास जाने का हठ किया। अंत में उन्हें वैसे ही उठाकर श्री बाबा के सामने लाया गया। श्री बाबा ने उसके स्वास्थ्य के संबंध में पूरी जानकारी प्राप्त की और उन्हें बादाम–पिश्तों की गाढी खीर पीने का परामर्श दिया। बापूसाहब ने उनकी आज्ञा का पालन किया और उन्हें पूर्ण आराम पहुँचा। अब यदि कोई डॉक्टर हैजे के रोगी को बादम–पिश्ते जैसी गरिष्ठ वस्तुएँ खाने के लिए कह दे तो लोग अवश्य ही उसकी गणना पागलों मे करेंगे। किन्तु, श्री बाबा की लीलाएँ तो ऐसी ही अद्भुत होती थी।

जब श्री बाबा के परम भक्त काका महाजनी आँव जैसे भयानक रोग से ग्रस्त हुए तो श्री बाबा ने उन्हें कच्ची मूँगफली के दाने खाने के लिए दिए थे। तात्पर्य यह है कि किसी भी रोग के लिए श्री बाबा, जो उनके मन मे आता था, वही औषधि उपचार करते थे। यद्यपि उनकी बताई हुई वस्तुओं में रोग नष्ट करने का सामर्थ्य प्रत्यक्षतः दिखाई नहीं देता था, तथापि श्री बाबा के सान्निध्य में सदैव वास करने वाली ऋद्धिसिद्धयाँ उनकी आज्ञानुसार सेवा करने के लिए तत्पर रहती थी और अलौकिक चमत्कार उत्पन्न करती थीं।

शिरडी के माधवराव देशपांडे जब बवासीर से ग्रस्त हुए तो श्री बाबा

ने उन्हें सोनामुखी का काढ़ा बना कर दे दिया। माधवराव का रोग तुरंत ही नष्ट हो गया; परंतु कुछ दिनों के बाद जब माधवराव दुबारा बवासीर से पीडित हुए तो उन्होंने श्री बाबा से पूछे बिना सोनामुखी के काढे का प्रयोग किया। परंतु, कोई लाभ न होकर रोग ने अधिक भयानक रूप धारण कर लिया। सच बात तो यह है, कि सोनामुखी का काढ़ा बवासीर के लिए कोई औषधि नही थी, यह तो श्री बाबा के हाथों तथा उनकी कृपा–दृष्टि में ही रोगों को दूर करने का अलौकिक सामर्थ्य था।

अनेक बार तो भक्तों की श्री साई महाराज में मनोमय श्रद्धा ही उपयोगी सिद्ध होती थी। श्री बाबा ने प्रत्यक्ष पैर तले की मिट्टी भी उठा कर दी तो वह भी सुवर्ण भस्म में रूपान्तरित होकर अचूक गुणवाली सिद्ध होती थी। साँप या वृश्चिक के काटने से विष चढ़े हुए अनेक भक्तों को श्री बाबा ने केवल मंत्रबल से या मिट्टी के फूँक से ठीक करके दिखाया। किसी पहुँचे हुए जादूगर की तरह ही ऐसे अवसरों पर श्री बाबा भी विस्मयजनक प्रयोग करके दिखाते थे और भक्तों की पीड़ाएँ दूर करते थे। एक भक्त को स्वप्न में दृष्टान्त देकर औषधि योजना बतलाने की घटना तो बहुत ध्यान देने योग्य है। बेलापुर की समीप तुर्भे ग्राम में रहने वाली शांताबाई नाम की एक स्त्री लगभग सात–आठ वर्ष से व्याधिग्रस्त थी। उसके बांये हाथ के अँगूठे की हड्डी में कोई रोग हो गया था। वह रोग दूर होना असम्भव प्रतीत होता था। उसने श्री बाबा की मनोभाव से आराधना की। तब श्री बाबा ने प्रसन्न हो एक दिन स्वप्न में दृष्टान्त दिया और एक विशिष्ट औषधि का उपयोग करने का परामर्श दिया। शांताबाई ने श्री बाबा की बतलाई हुई औषधि का प्रयोग करना आरंभ किया। और कुछ ही दिनों बाद उसका रोग सम्पूर्णतः नष्ट हुआ। शांताबाई ने अपनें हाथ से दिनांक १ सितम्बर, १९१८ को श्री बाबा को एक पत्र लिखा, जिसमें श्री बाबा को प्रणाम भेजते हुए उन्हें अनेक धन्यवाद दिए।

इसी तरह श्री बाबा के परम भक्त नानासाहेब चाँदोरकर को एक बार

जब उदर पीड़ा हुई तो श्री बाबा ने उन्हे बर्फी घी में भून कर खाने के लिए कहा। ऐसा करने से नानासाहेब की उदरपीड़ा तुरंत ही दूर हो गई। इस प्रकार प्रारम्भ में कई वर्ष श्री बाबा ने जन–सेवा का व्रत स्वीकार किया था। शिरडी में श्री बाबा के दर्शन की कामना तथा उनके हाथ का प्रसाद ग्रहण करने के उद्देश्य से भिन्न–भिन्न प्रकार के लोग वहाँ आते रहते थे। उनमें से बहुत से तो अंधे और लूले लँगड़े लोग होते थे। बिल्कुल असाध्य तथा घृणास्पद रोगों से पीडित रोगियों से भी श्री बाबा स्नेह तथा अपनत्व की भावना से व्यवहार करते थे। रक्त–पित्त से ग्रस्त लोग भी श्री बाबा की सेवा के लिए उपस्थित रहा करते थे। श्री बाबा किसी भी रोगी का अपमान नही करते थे। अपने दैवी सामर्थ्य तथा औषधियों से, जहाँ तक सम्भव होता, वे सदैव उन्हें रोग मुक्त करने मे ही प्रयत्नशील रहते थे। कुष्ठ रोग से पीड़ित भागोजी तो कई वर्षो तक श्री बाबा की सेवा चाकरी करता रहा। संसार ताप से पीड़ित आबालवृद्ध की सहायता करना और वह भी बिना मूल्य, यही श्री बाबा का आरम्भ से निश्चित किया हुआ जीवनध्येय था। उस काल में श्री बाबा ने असंख्य लोगों को उपकृत किया और आज भी श्रद्धालु भक्तों को श्री बाबा की सहृदयता का प्रमाण देखने को मिल रहा है। भूतकाल के सभी संतो ने अपने जीवनकाल में विशेष सिद्धि प्राप्त की थी ; परंतु उनके इहलोक से लीला संवरण करने पश्चात लोग उन्हें सर्वथा भूल गए। श्री साईनाथ महाराज के अवतार कार्य से संबंधित जो मुग्धकारी दृश्य दिखाई देता है, यह यही कि श्री बाबा भूतल पर जब अपना लोक जागृति का कार्य कर रहे थे, तब जितने लोग उनके दर्शनार्थ शिरडी जाया करते थे, उससे हजारो–लाखों गुने अधिक भक्त आज भी शिरडी के ओर आकर्षित हो रहे हैं। श्री बाबा के कार्य की छाप भक्तों के अंतःकरण मे इतनी मजबूत तथा गहरी बैठी हुई है कि सच्चे अर्थो मे श्रद्धालु एवं अनन्य भक्त अपने कर्तव्य–पथ से एक पल भर के लिए भी पदच्युत नहीं होगा।

रोगो से पीड़ित लोगों को श्री बाबा औषधि–उपचार से रोगमुक्त करते थे; पर इससे अतिरिक्त वे अन्य स्वस्थ लोगों के आरोग्य के सम्बन्ध में भी पूर्ण सर्तक रहा करते थे। जब गाँव में किसी महामारी के फैलने के लक्षण दिखाई देते थे तो वे तुरंत ही अपनी लीलाओं से सब निवासियों को सचेत रहने का संकेत कर देते थे। स्वयं हाथ में झाड़ू लेकर वे गाँव में सफाई का कार्य आरंभ करते थे और इतना करने बावजूद यदि कोई भक्त रोग की लपेट मे आ ही जाता जो उसकी प्राण रक्षा का सारा उत्तरदायित्व स्वयं उठाते थे। सर्व सामान्य लोगों के आरोग्य के सम्बन्ध में श्री बाबा कितने अधिक चिंतित रहा करते थे, यह निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। महीने में एक दिन श्री बाबा सोनामुखी तथा अन्य औषधियों का मिश्रण कर जुलाब का काढ़ा तैयार करते थे और वहाँ उपस्थित हर एक व्यक्ति को एक–एक प्याला आग्रहपूर्वक पिलाकर ऊपर से खाने के लिए चना दिया करते थे। श्री बाबा की इच्छा का कोई भी सहसा अनादर नहीं करता था; क्योंकि स्वास्थ्य की दृष्टि से श्री बाबा के प्रत्येक कार्य का परिणाम शुभ ही होता था। श्री बाबा का यही दस्तूर अखंड रूप से कितने ही वर्षो तक चलता रहा। पंरतु बाद में एक दिन एक रोगी को उन्होंने औषधि दी और कुछ पथ्य भी बताया। परंतु रोगी भक्त ने श्री बाबा की आज्ञानुसार आचरण किया और उसकी मृत्यु हो गई। श्री बाबा को उस समय अपार दुःख हुआ। उनका ह्रदय मानो चूर–चूर हो गया। इस दुर्घटना से श्री बाबा के मन को इतना आघात पहुँचा कि उसी क्षण से उन्होंने औषधियों का वितरण बिल्कुल बन्द कर दिया और किसी औषधि का भूल से भी मुख से उल्लेख तक नहीं किया। पर भक्तों के आग्रह पर श्री साई ने द्वारकामाई मे सदैव प्रज्वलित धूनी से भस्म देना आरंभ कर दिया। भक्त के लिए यही बाबा का प्रसाद था। उनकी दी हुई विभूति में भी इतना सामर्थ्य होता था कि उससे भक्तों के सब रोग दूर हो जाते थे और उनकी मनोकामनाएँ पूर्ण होती थी।

=========

दसवाँ अध्याय

ऊदी का दिव्य प्रभाव

द्वारकामाई में सतत् प्रज्जलित रहने वाली धूनी की विभूति(ऊदी) के सम्बन्ध में सहस्त्रों लोगों को विलक्षण अनुभव हो चुके है। एक पारसी सज्जन की छोटी लड़की अपस्मार (मिर्गी) के रोग से ग्रस्त हो गई थी। दिन में कई बार उसके हाथ–पैंर ऐठ जाते और वह मूर्च्छित हो जाती थी। उस पारसी सज्जन ने श्री बाबा की दी हुई ऊदी का प्रयोग किया और धीरे–धीरे लड़की रोग–मुक्त हो गई।

श्री साई महाराज की लीलाओं का जब हम सूक्ष्म अध्ययन करते है, तो हमारी बुद्धि कुंठित हो जाती है। हम चकित–भ्रमित रह जाते है। इसी तरह एक अमरावती के दादासाहेब खापर्डे कुटुंब सहित शिरडी मे वास करने के लिए आए। उनके कुछ दिन तो श्री बाबा के सहवास में बडे मजे से व्यतीत हुए। परंतु, एक दिन उनके लड़के को ज्वर ने घेर लिया और देखते–देखते ही ज्वर ने प्लेग का उग्र रूप धारण कर लिया। दादासाहेब और उनकी पत्नी के पैरों के नीचे से धरती खिसक गई। सांयकाल का समय था। श्री बाबा नित्य कर्म के अनुसार धीरे–धीरे लेंडी बाग की ओर जा रहे थे। दादासाहेब की पत्नी श्री बाबा के पीछे–पीछे दौड़ती हुई आई और श्री बाबा का मार्ग रोककर सिसकियाँ भरते हुए कम्पित स्वर से बोली," बाबा, अब क्या करूँ ? बच्चे को प्लेग हो गया।" श्री बाबा क्षणभर के लिए उसकी ओर देखते हुए खड़े रहे और फिर धीर गंभीर मुद्रा धारण कर शान्त भाव से आकाश की ओर दृष्टि लगा कर बोले–"सारा आकाश काले–काले बादलों से घिरा हुआ है। परंतु थोड़े ही समय के पश्चात सारे बादल हट जाएँगे। आकाश पूर्ववत् निरभ्र हो जायेगा।" इतना कहकर श्री बाबा ने बाजार में ही इकटठे् हुए लोगों के समक्ष अपनी कफनी ऊपर उठाई। सभी लोगों यह देखकर आश्चर्य हुआ कि श्री बाबा की कमर के ऊपरी भाग में अंडो के आकार की चार बड़ी–बड़ी

गुठलियाँ उभर आई हैं। उन गिलटियों की ओर देखते हुए और वहाँ उपस्थित लोगों को लक्ष्य करते हुए श्री बाबा पुनः बोले–"देखिये, भक्तों के हित के लिए मुझे कितना कष्ट उठाना पडता है। भक्तों का दुःख मुझे सहना पड़ता है।" खापर्डे के बच्चे का ज्वर तो हट गया और उसकी प्लेग की गुठलियाँ भी नष्ट हुई; परंतु साथ ही साथ श्री बाबा के दिखाये हुए चमत्कारों के कारण अन्य लोगों के मन में उत्पन्न शंकाएँ भी नष्ट हो गई। सच्चे अर्थ में जो सत्पुरूष होते है, वे कभी भी अपने भक्तों को संकट में पडा नहीं देख सकते। वरन् उसका संकट अपने ऊपर ले लेते है। सचमुच ही संत का ह्दय मोम से भी नरम तथा मक्खन से भी कोमल होता है। सत्पुरूष अपने भक्तों से किसी भी प्रकार की उपेक्षा न रखते हुए केवल निरपेक्ष शुद्ध भावना के साथ ही उन पर पुत्रवत् प्रेम की वर्षा करते है।

जब एक बार किसी भक्त को श्री बाबा अपनाते थे, तो उसकी भलाई के लिए सतत् प्रयत्नशील रहते थे और इसके लिए स्वयं परमेश्वर की आराधना करते थें।

नारायण गाँव के भीमाजी पाटिल को नामसाहेब चाँदोरकर ने श्री बाबा से परिचत करवाया था। भीमाजी एक धनी–मानी व्यक्ति थे। जीवन में जब वह क्षय रोग से पीडित हुए और उनका उठना–बैठना भी भारी हो गया, तो भीमाजी ने ईश्वर को पुकारा। उन्होंने नानासाहेब को पत्र लिखकर अपनी दुर्दशा की कहानी सुनाई और पूछा कि, "अब क्या उपाय करना चाहिये ?" नानासाहेब चाँदोरकर ने तुरंत ही लिखकर भेजा की, "श्री सद्गुरू साई बाबा के चरण कमलों में शरण लो, तुम्हे बचाने के लिये वही एक समर्थ सद्गुरू है।" पत्र का उत्तर मिलते ही भीमाजी शिरडी रवाना हुए।

श्री साईबाबा जब द्वारकामाई में बैठे हुए थे, तो भीमाजी पाटील को लगभग मृतावस्था में ही उनके समक्ष लाकर रखा गया। भीमाजी को देखते ही श्री बाबा के मुँह से यह उद्गार निकले, "यह तो अपने पूर्व जन्म के कर्मो

का फल ही भोग रहा है। मैं कुछ भी नही कर सकता।" और वह उठकर जाने लगे। उसी समय निराश हो भीमाजी ने आर्त स्वर से बाबा को पुकारा और अनन्य भाव से उनकी शरण में जाकर उनके चरण पकड़ लिये। कुछ क्षणों के लिए कठोर बना हुआ श्री बाबा का हृदय द्रवित हो उठा और शान्त भाव से भीमाजी को आशीर्वाद देते हुए वे बोले–"अच्छा, चिंता न करो। यही रहो। मुझे तुम्हें रोग–मुक्त करना ही होगा। जब इस द्वारकामाई में एक बार कोई भक्त पैर रखता है तो उसके दुःखों का अंत होना ही चाहिये। ईश्वर बड़ा दयालु है। मन में पूर्ण विश्वास रखो, वह तुम पर अवश्य कृपा–दृष्टि करेगा।"

श्री बाबा जी के केवल आशीर्वाद से भीमाजी का रोग नष्ट होता चला गया। रक्त की उलटियाँ बंद हो गई और वह स्फूर्ति भी अनुभव करने लगा। भीमा बाई के घर पर भीमाजी के रहने की व्यवस्था कर श्री बाबा स्वयं अपनी दैवी शक्ति के बल पर प्रयोग करने लगे। रात्रि में भीमाजी को नियमपूर्वक स्वप्न आते थे। एक बार स्वप्न मे हाथ में छड़ी लिए मास्टर जी दिखाई दिये और उन्होंने छड़ी से भीमाजी की खासी ताड़ना की। फिर कुछ दिनों के बाद भीमाजी ने एक और स्वप्न मे किसी अज्ञात व्यक्ति को एक बहुत बड़े पत्थर से अपनी छाती पर प्रहार करते हुए देखा। स्पप्न में भीमाजी को भयंकर मार पड़ती थी और वेदना तो असहनीय हो जाया करती थी ; परंतु जागृतावस्था में भीमाजी यह अनुभव करते थे कि उनका रोग धीरे–धीरे नष्ट होता जा रहा है। कुछ महीनों के पश्चात् भीमाजी पूर्णतः रोग–मुक्त हुए। यही भीमाजी स्वस्थ होने पर श्री बाबा के अनन्य भक्त बने। उन्होंने सत्यनारायण की पूजा की भांति प्रतिवर्ष नियम से "श्री सत्यसाई व्रत–पूजा" करने की परिपाटी आरम्भ की।

श्री सदगुरू साईनाथ में ऐसा विलक्षण सामर्थ्य था कि किसी औषधि या ऊदी के प्रयोग के बिना केवल हस्त–स्पर्श से भी कभी–कभी भक्त

का असाध्य रोग चुटकियों में नष्ट कर देते थे। हरदा के दत्तोपंत नामक एक सज्जन चौदह वर्षो सें उदर पीड़ा से दुःखी थे। नाना प्रकार के उपाय और मंत्र–तंत्र आदि करते करते वे थक गये थे। अंत में एक मित्र के मुख से श्री साईबाबा की लीलाओं का वर्णन सुन दत्तोपंत श्री बाबा के दर्शनार्थ शिरडी गये। और अनन्य भाव से श्री बाबा के चरणों में अपना मस्तक झुका दिया। श्री बाबा ने दत्तोपंत की ओर एक ही बार कृपा–दृष्टि से देखा। अत्यन्त प्रेम से उनके उदर पर हाथ फेरकर मुक्त कंठ से दत्तोपंत का रोग दूर होता गया और जिस रोग से लगातार चौदह वर्षो तक उनके जीवन को नरक बना रखा था, वह असाध्य रोग पूर्णतः नष्ट हो गया।

साधु–संत मनुष्य देह को तोते के पिंजडे की उपमा देते है। तोता पिंजडे को ही अपना सर्वस्व समझता है और उसी में आनन्द से विहार करता है। उसी प्रकार मनुष्य की आत्मा शरीर रूपी मायाजाल से निर्मित पिंजडे में स्वयं को उलझा लेती है और सुख–समाधान के भ्रम में अपने सच्चे स्वरूप को भूल जाती है। ऐसी स्थिति में किसी योग्य गुरू से भेंट हो जाती है तो वही उचित मार्गदर्शन करता है और मनुष्य की सद्गति होती है। श्री साईनाथ सच्चे सद्गुरू थे। उनके दर्शनमात्र से अनेक जीवों को सत्य का मार्ग दिखाई दिया और समय आने पर उन्होंने सद्गति प्राप्त की। श्री बाबा के कुछ लोगों को भक्ति–मार्ग का उपदेश देकर परमोच्च अवस्था में पहुँचाया।

श्री साईनाथ महाराज ने किसी को भी मंत्र नहीं दिया, यद्यपि वे स्वयं मंत्र–विद्या में पूर्णतः पारंगत थे। वृश्चिक के काटने पर मंत्र द्वारा विष प्रभाव दूर करने के उनके अनेक उदाहरण बतलाए जा सकते है। इसी प्रकार सर्प दंश के पश्चात् केवल 'चले जाओ' शब्दों का उच्चारण कर अपने परम भक्त शामा (माधवराव) को विष–प्रभाव से बचा लिया। शामा को एक बार विषैले सर्प ने काट लिया और शीघ्र ही विष सारे शरीर में फैल गया। गांवों में

प्रचलित पद्धति के अनुसार पंचाक्षरी (तांत्रिक) बुलाये गये और उन्होंने शामा को उठा कर 'विठोबा' के मंदिर में ले जाने का निश्चय किया। परंतु शामा का श्री बाबा में पूर्ण विश्वास था। इसलिए उन्होंने उस मंदिर में जाना अस्वीकार कर दिया और दौडते हुए द्वारकामाई मे जाकर श्री बाबा के चरणों में शरण ली। उन्हें उस लड़खड़ाती अवस्था में देखकर श्री बाबा ने अंतर्ज्ञान से सब कुछ जान लिया और एकाएक क्रोधित हो गालियों की बौछार करने लगे।''' औ ब्राहम्ण के बच्चे, जाता है कि नहीं ? खबरदार, ऊपर चढ के आया तो ! नीचे उतर, चले जाओ।'' इस प्रकार के क्रोध में कहे हुए शब्द सुनकर शामा (माधवराव) को बडा दुःख हुआ। ''श्री बाबा की द्वारकामाई अपना ही घर है। श्री बाबा के चरण तो अपना आश्रय–स्थान है। दयालु बाबा अपने चरण–कमलों से कभी भी किसी को दूर नहीं हटायेंगे''–यह भावना मन में रखकर ही तो शामा(माधवराव) बडी आशा से दौडकर आये थे ; किंतु श्री बाबा को क्रोधावस्था में देख वे दुविधा में पड़ गये और श्री साई नाम का जप करते हुए वही पड़े रहे। थोड़ी देर बाद बाबा का कोप शांत हुआ। शामा की पीठ पर प्रेम से हाथ फेरते हुए वे बोले, ''बेटा, घबराओ नहीं। कोई चिंता न करो। दयालु परमेश्वर तुम्हारी रक्षा करेगा।'' तदनंतर श्री साई ने वापस घर जाने की अनुमति दे दी। शामा के जाने के बाद श्री बाबा ने तात्या पाटील और दीक्षित को बुलाकर कहा, ''तुरंत ही शामा के घर जाओ। उसे अपनी इच्छानुसार कुछ भी खाने दो, घर में कही भी टहलने दो, एक बात का पूरा–पूरा ध्यान रखने के लिये कहो और वह यह है कि आज रात को वह जमीन पर सीधे लेटकर बिल्कुल न सोये।'' शामा ने श्री बाबा की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया और फलस्वरूप सर्पदंश के विष का उन पर जरा भी असर न हुआ। अब यहां एक बात विशेषतः ध्यान रखनी चाहिये, और वह यह है कि श्री बाबा का उद्‌गार सुन शामा को भ्रम हो गया था। श्री बाबा ने क्रोध में जो शब्द कहे थे, वे शामा को लक्ष्यकर नहीं कहे गये थे। वे शब्द

तो सर्प का विष दूर करने के लिए ही कहे गये 'पंचाक्षरी' मंत्र के समान थे। ऐसे कार्य के लिए अन्य तांत्रिको की भाँति श्री बाबा चावल, नींबू, धूप आदि वस्तुओं की आवश्यकता अनुभव नही करते थे।

श्री बाबा भक्तगणों के अधिकार पूर्वक दक्षिणा माँगा करते थे और उसका व्यय सदैव उचित कार्यो के लिए ही किया करते थे। नित्य ईंधन इकटठा कर वे अखण्ड जलने वाली पवित्र धुनी प्रज्वलित रखा करते थे। लकड़ी जलने के बाद श्री बाबा बची हुई राख, जिसे ऊदी कहते थे, सभी भक्तों को विदा होने के समय प्रसाद के रूप में बाँटा करते थे। श्री बाबा के इस विचित्र आचरण में अत्यन्त गहन अर्थ भरा हुआ था। इस पृथ्वी की सभी चराचर वस्तुएँ नश्वर है, राख है। अपनी अत्यन्त प्रिय यह हाडमांस की देह भी अंत में राख में ही रूपान्तरित होती है। हमें आज दिखाई देने वाली भव्य देह, हमारा सौंदर्य, हमारी बहुमूल्य संपति, इतना ही नही, हमें अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय दिखने वाले हमारे स्वजन–सम्बन्धी आदि सब भविष्य में नष्ट हो जायेंगे और अंत में सब ही राख ही हो जायेगी। इसलिये इन नश्वर वस्तुओं मे अत्याधिक आसक्ति रखकर हम कितनी मूर्खता कर रहे है, प्रत्येक भक्त के हृदय में इसकी सदैव कल्पना जागृत रखने के लिए ही श्री बाबा भक्त के हाथों में प्रसाद के रूप में ऊदी दिया करते थे। इस जग में शाश्वत, चिरंजीवी केवल ब्रम्हा ही है और मनुष्य–जन्म में यदि हम गुरू–कृपा से उस ब्रम्ह–ज्ञान से परिचित न हुए तो हमारा जन्म व्यर्थ ही जायेगा। पुनः पुनः जन्म लेकर इस जन्म–मरण के चक्कर में हमारी जीवात्मा सुख–दुःख भोगते हुए अनन्त काल तक फँसी रहेगी। हम अकेले हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने प्रारब्ध भोग के अनुसार अकेले ही जन्म लेता है और अकेला ही मृत्यु पाता है। अपने धर्म का यह महान तत्व मानो श्री बाबा के ऊदी–प्रसाद में गुंथित हुआ था। इसीलिये उस समय श्री बाबा की ऊदी का महत्व लोगों ने स्वीकार किया था; परंतु वर्तमान समय में भी श्री बाबा के हस्तस्पर्श से पुनीत

हुई धूनी की ऊदी भक्तों के लिए एक अत्यन्त मूल्यवान निधि है।

इस ऊदी ने हजारों भक्तों की मानसिक तथा शारीरिक व्यथाओं को दूर करने का अद्भुत चमत्कार कर दिखाया है। इस चराचर जगत की सब सत्य तथा असत्य वस्तुओं की यथातथ्य स्थिति को भक्तों के मन में बैठाने के लिए श्री बाबा ने ऊदी बाँटने तथा दक्षिणा माँगने का मार्ग अपनाया था। शरीर नश्वर है। उसमें मोंह रखना सर्वथा अनुचित है, यह तत्व उन्होंने ऊदी के द्वारा लोगों के समक्ष रखा तो दूसरी ओर भक्तों से दक्षिणा माँगने की अपनी प्रथा से त्याग की भावना को भी विकसित किया।

श्री बाबा श्रद्धालु भक्त के मस्तक पर अपने हाथ से ऊदी लगाते थे और मुक्त हस्त से ऊदी का भंडार लूटने की अनुमति भी देते थे। उस अवसर पर भक्तों के हृदयों में अपरिमित आनन्द की लहरें उठती थी। स्वयं श्री बाबा भी ऐसे क्षणों में स्वर्गीय आनन्द में रमण करते हुए प्रतीत होते थे। आनन्दोल्लास से उनका हृदय ओत–प्रोत हो जाता था और प्रेमानंद में रत हो वे अपने अति शुद्ध सुरीले एवं मधुर कण्ठ से एक गीत गाया करते थे, जिसके बोल थे, "रमते राम आओजी आओजी। ऊदिया की गोनिया लाओ जी।" यह भक्ति रस से ओत प्रोत गीत स्वयं श्री बाबा के मुख से जिन भक्तों ने सुना है, वे सचमुच ही परम भाग्यशाली है।

पवित्र नासिक क्षेत्र में नारायण मोतीराम जानी नाम के एक सज्जन श्री साई महाराज के परम भक्त रामचंद्र मोडक के पास नौकरी करते थे। एक दिन अनायास ही नारायणराव को श्री बाबा के दर्शनार्थ जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। दर्शन करते समय नारायणराव की माता ने श्री बाबा से अपने पुत्र पर कृपा–दृष्टि रखने की प्रार्थना की। श्री बाबा ने नारायणराव को आशीर्वाद देते हुए कहा, "अब इसके उपरांत किसी की सेवा–चाकरी न करो। अपना ही कोई स्वतंत्र व्यवसाय आरम्भ करो।" उसी क्षण नारायणराव ने अपनी नौकरी से त्याग–पत्र दे दिया और नासिक में 'आनंदाश्रम' की स्थापना कर

शीघ्र ही अपने व्यापार में पर्याप्त उन्नति की।

कुछ दिनों के बाद नारायणराव के इसी 'आनंदाश्रम' में उनका एक चिर–परिचित मित्र थोड़े दिन रहने के उद्देश्य से आया। एक दिन एकाएक उसे वृश्चिक ने काट लिया। वृश्चिक के काटने से होने वाली वेदना दूर करने का सामर्थ्य श्री बाबा के ऊदी में है, यह नारायणराव भली–भाँति जानते थे। अतएव वे तुरंत ही ऊदी ढूँढने लगे। पंरतु शिरडी से जो ऊदी वे लाये थे, वह समाप्त हो चुकी थी। इधर उनका मित्र असह्य वेदना से तड़प रहा था। आखिर नारायणराव ने श्री बाबा का चित्र के सम्मुख रख वहाँ एक सुगन्धित अगरबत्ती जलाई और श्री बाबा के नाम का जप करना आरम्भ कर दिया। नियम समय पर जप पूरा होने के पश्चात् चित्र के सामने पडी हुई अगरबत्ती की राख में से एक चुटकी भर राख उठाकर नारायणराव ने उसे ही श्री बाबा की ऊदी मानकर मित्र के उसी अंग पर लेप कर दिया, जहाँ वृश्चिक ने काटा था। मित्र की वेदना तुरंत बंद हो गई और वृश्चिक का विष उतर गया। नारायणराव का मित्र पूर्ववत् स्वस्थ चित्त हो गया। नारायणराव बहुत प्रसन्न हुए और श्री बाबा में उनकी भक्ति और भी दृढ़ हो गई।

श्री बाबा द्वारा अपने हाथों से दी हुई ऊदी का जितना गुणकारी प्रभाव होता था, उतनी ही उनके श्रद्धालु भक्तों द्वारा उनके नाम पर दी हुई भस्म भी अचूक फलदायी सिद्ध होती थी। नानासाहेब चाँदोरकर एक बार अपनी पत्नी सहित कल्याण जा रहे थे। मार्ग में ठाणा स्टेशन पर बांद्रा में रहने वाले उनका एक मित्र उन्हें मिला और बड़ी घबड़ाहट में उसने सूचित किया कि उसकी लड़की को प्लेग हो गया। नानासाहेब के पास उस समय श्री बाबा की ऊदी नहीं थी। पंरतु भक्ति और श्रद्धा से श्री बाबा का नाम स्मरण कर उन्होंने अपने पैर तले की एक चुटकी भर मिटट्ी लेकर अपने मित्र को दे दी ओर उसे श्री साई महाराज के चरणों में लीन होने का आदेश दिया। नानासाहेब का मित्र ने घर जाकर प्लेग की गुठलियों पर ऊदी का

लेप लगा दिया। उसी क्षण से लडकी का ज्वर दूर होना आरम्भ हो गया और प्लेग जैसे असाध्य रोग से लड़की शीघ्र ही रोग मुक्त हो गई। श्री बाबा का केवल नाम स्मरण कर उठाई हुई मिटट्री ने भी कितना अद्‌भुत चमत्कार कर दिखाया।

नानासाहेब चाँदोरकर ने श्री बाबा का नाम लेकर ऊदी के बदले मिटट्री देकर जिस साहस का परिचय दिया, उसका एकमेव कारण था श्री बाबा में उनका अटूट विश्वास तथा अविचल श्रद्धा। जब वे स्वयं जामनेर में तहसीलदार का पद सुशोभित कर रहे थे तो एक बार श्री बाबा की ऊदी का उन्हें भी विलक्षण अनुभव हुआ था। खानदेश जिले के जामनेर जैसे एक साधारण तथा सर्वथा अपरिचित गाँव में जब वे कार्यवश निवास कर रहे थे तो उन्हें एक बार अति विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ा था। उनकी लाड़ली बेटी मैनाताई प्रसव के लिए जामनेर आई हुई थी। दिन पूरे होते ही एकाएक उसकी अवस्था गम्भीर हुई। लगातार तीन दिन प्रसव वेदना जारी रही। स्थिति में सुधार होने की संभावना दिखाई न दी ओर सभी लोग चिंता में डूब गये। नानासाहेब तथा उनकी पत्नी ने श्री बाबा का नाम स्मरण आरम्भ किया। ठीक इसी समय शिरडी में बैठे–बैठे श्री बाबा ने अंतर्ज्ञान से जान लिया कि उनका भक्त संकट में है। उन्होंने खानदेश मे अपने गाँव जाने के लिए उद्यत एक साधु रामगीर बुवा को बुलवाया और उसे आज्ञा दी कि गाँव जाते समय मार्ग में जामनेर में थोड़ी देर ठहर कर नानासाहेब चाँदोरकर के पास ऊदी और आरती की एक प्रति पहुँचा दे। रामगीर बुवा ने नम्रता से उत्तर दिया कि उसके पास केवल दो ही रूपये बाकी है, जो जलगाँव तक ही रेल का किराया चुकाने के लिए पर्याप्त है। इस पर श्री बाबा के यह कहने पर कि वह कोई चिंता न करे, उसकी सारी व्यवस्था हो जायेगी, रामगीर बुवा निःसंदेह मन से श्री बाबा की आज्ञानुसार दोनों वस्तुएँ लेकर चल पड़े। जलगाँव स्टेशन पर वे रात को लगभग तीन बजे उतरें। उस समय उनके

पास केवल दो आने ही बचे थे। चिंता में व्याप्त हो रामगीर बुवा यह सोच ही रहे थे कि आगे क्या करना चाहिएँ कि तभी एक अपरिचित व्यक्ति ने आकर प्रश्न किया–"शिरडी का रामगीर बुवा कौन है ?" रामगीर बुवा को जब ज्ञात हुआ कि नानासाहेब ने ही उस व्यक्ति को ताँगा साथ लेकर भेजा है, तो वे उसके साथ ताँगे में बैंठ जामनेर की ओर चल दिए। ताँगा द्रुतगति से चल पडा और प्रातःकाल के समय एक स्थान पर विश्राम के लिए रूक गया। ताँगें वाला घोडों को पानी पिलाने ले गया और स्टेशन पर रामगीर बुवा को लेने आये हुए व्यक्ति ने रामगीर बुवा से थोडा जल–पान करने का आग्रह किया। उस मनुष्य की दाढी मूँछे तथा वेश–भूषा देखकर रामगीर बुवा के मन में यह कोई मुसलमान है। अतः उन्होंने जल–पान करने में असमर्थता प्रकट कर दी। पंरतु जब उस व्यक्ति ने बतलाया कि वह गढ़वाल का क्षत्रिय वंशीय हिन्दू है, तथा जलपान की सारी सामग्री स्वयं नानासाहेब ने विशेष रूप से उनके लिये ही भेजी है। तब रामगीर बुवा का पूर्ण समाधान हुआ और दोनों ने मिल कर यथेष्ठ जल–पान किया। पुनः ताँगे में बैठ वे आगे रवाना हुए और प्रातःकाल जामनेर पहुँचे। गाँव की सीमा के निकट पहुँचने पर रामगीर बुवा लघुशंका से निवृत्त होने के लिए थोडी देर के लिए ताँगे में से उतरे। वापस आकर देखा तो वह मनुष्य और ताँगा दोनों ही अदृश्य हो चुके थे। इस घटना से रामगीर बुवा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अकेले ही समीप एक कचहरी में प्रवेश कर उन्होंने नानासाहेब के संबंध में पूछताछ की और पूछते–पूछते उनके घर पहुँच गये। रामगीर बुवा ने नानासाहेब को बतलाया कि श्री बाबा की आज्ञा से वे शिरडी से जामनेर आये है। श्री बाबा की दी हुई ऊदी तथा आरती का कागज उन्होंने नानासाहेब को सौंप दिया। उस नानासाहेब की लड़की मैनाताई बहुत गंभीर तथा संकटपूर्ण अवस्था में थी, मानो अंतिम साँसे ले रही हो। घर के सभी लोग नितांत निराश हो बैठे थे। नानासाहेब ने पत्नी को बुलाकर श्री बाबा की भेजी हुई ऊदी उसके सुपुर्द कर

दी। लड़की के कमरे मे प्रवेश कर नानासाहेब की पत्नी ने ऊदी पानी मे घोलकर उसे पिला दी और वह स्वयं श्री बाबा की भेजी हुई आरती गाने लगी। श्री बाबा की ऊदी ने अद्‌भुत चमत्कार दिखाया। कुछ ही देर बाद मैनाताई कुशलतापूर्वक प्रसव पीडा से मुक्त हो गई और एक सुंदर कोमल बालक के रोने की आवाज वहाँ उपस्थित लोगों के कानों में गूँज उठी। सब की प्रसन्नता का पारावार न रहा। सभी ने अत्यन्त प्रेम एवं श्रद्धा से श्री बाबा के चरणों मे अपने मस्तक नत किये। रामगीर बुवा ने धन्यवाद देते हुए नानासाहेब से कहा कि उन्होंने ठीक समय पर अपना आदमी और ताँगा भेज दिया था, इसलिये वे ठीक समय पर उपस्थित हो सके। परंतु, रामगीर बुवा के ये शब्द सुनकर तो नानासाहेब अचम्भे में पड़ गए, क्योंकि ये बातें उनके ध्यान में ही नहीं आई थी। अपनी पुत्री के लिए वे इतने अधिक चिंताग्रस्त थे कि यह सब कुछ करना उनके लिए बिल्कुल असम्भव था और वैसे भी नानासाहेब ने किसी भी व्यक्ति को ताँगे के साथ स्टेशन नहीं भेजा था, क्योंकि रामगीर बुवा के जामनेर आने की कोई पूर्व सूचना तो उन्हें थी नही। तदनंतर सभी उपस्थित लोगों ने उस गढ़वाली क्षत्रिय मनुष्य तथा उसके ताँगे की पर्याप्त खोज की। परंतु उसका कहीं भी पता न लग सका। वास्तव में प्रत्यक्ष श्री साई महाराज ही अपने भक्त के संकट निवारणार्थ वहाँ प्रकट हुए थे। श्री बाबा की लीलाएँ ऐसी ही विस्मयकारी होती थी। इस घटना से नानासाहेब का श्री बाबा में विश्वास और भी दृढ़ हो गया। इसमें आश्चर्य की कोई बात ही नहीं।

नास्तिक मनुष्य सहज ही में इन बातों में विश्वास नही रखते। अपनी–अपनी कल्पनाओं के अनुसार वे नाना प्रकार से करते रहते है और अंत में तात्कालीन न्याय पद्धति से इन सब बातों का होना संभव है, इस प्रकार मन का समाधान कर चुप्पी साध लेते है। ऐसे दुराग्रही लोगों को भी श्री बाबा की लीलाएँ देखकर हाथ मलकर बैठना पड़ा और अंत में उन्हें श्री

बाबा की शरण में जाना पड़ा। सामान्य मनुष्य, चाहे वह अपने व्यवसाय में कितना भी कार्यतत्पर और निपुण हो, प्रत्यक्ष अनुभव तथा अभ्यास के बिना साधुओं की लीलाओं का अर्थ नहीं समझ सकता। मालेगाँव के एक सुप्रसिद्ध डॉक्टर की सत्य–कथा सुनकर इस विचारधारा की पुष्टि होती है। इन डॉक्टर साहब का एक तरूण भतीजा हड्डी के क्षय–रोग से ग्रस्त हुआ। स्वयं डॉक्टर साहब ने निजी प्रयत्नों से उसे स्वस्थ करने में कोई कसर न छोडी।

अन्य प्रसिद्ध सर्जनों से विचार–विमर्श किया गया। अंतिम उपाय के रूप में उस लडके पर शल्य–क्रिया भी की गई। पंरतु, रूपये में आना भर भी लाभ न हुआ। अंततः कुछ समझदार लोगों ने लडके के माता–पिता को किसी दैवी उपाय का आश्रय लेने का परामर्श दिया और इस अभिप्राय से ही श्री साई महाराज का उल्लेख किया। लड़के के माता–पिता ने तुरंत ही शिरडी के लिए प्रस्थान किया और श्री बाबा के चरणों में लड़के को डालकर उसे जीवन–दान देने के लिए उनसे अनन्य भाव से प्रार्थना की। मुस्कुराते हुए लड़के की ओर देखकर श्री बाबा बोले, "इस द्वारकामाई का जिसने सहारा लिया, उसे कभी भी कोई दुःख सहन नहीं करना पड़ेगा। आप यत्किंचित चिंता न करें। ईश्वर में पूर्ण भरोसा रखो और मेरी धूनी की ऊदी का रोग–ग्रस्त स्थान पर सतत् लेप करते रहो। एक सप्ताह में लड़का रोग–मुक्त हो जायेगा।" लड़के संबंधियों ने श्री बाबा का बताया हुआ उपचार करने का दृढ़ निश्चय किया। श्री बाबा ने लड़के को अपने पास बैठाया। उसके शरीर के रोग–ग्रस्त भाग पर प्रेम से धीरे–धीरे हाथ फेरकर और एक क्षण के लिए एकाग्रचित्त से उसकी और देखते हुए श्री बाबा पुनः बोले– "यह मस्जिद नही, वरन् प्रत्यक्ष भगवान श्रीकृष्ण की द्वारावती है। यहाँ आने से सब दुःख तथा पापों का नाश होना ही चाहिये।" श्री बाबा के मुख से इतने आत्मविश्वास के साथ निकले हुए बोल असत्य कैसे सिद्ध हो सकते है ? वह लड़का केवल

आठ दिनों में पूर्णतः रोग मुक्त हुआ और श्री बाबा से ऊदी प्रसाद प्राप्त कर सब लोग हर्ष–विभोर हो अपने गाँव लौट गये। लड़के को बिल्कुल स्वस्थ देख उसके चाचा को, जो स्वयं डॉक्टर थे, बडा आश्चर्य हुआ और उन्होंने इसे एक चमत्कार ही समझा।

कुछ दिनों पश्चात् डॉक्टर साहब निजी व्यवसाय के कारण बम्बई जाने के लिए निकले। उन्होने मार्ग में शिरडी में उतरकर श्री बाबा के दर्शन करने का भी मन–ही–मन निश्चय किया। पंरतु मालेगाँव से मनमाड़ के मध्य मिले हुए कुछ मित्रों ने श्री बाबा के विषय में कुछ असत्य तथा मनगढ़न्त कहानियाँ सुनाकर उन का मन कलुषित कर दिया। अब शिरडी जाने का संकल्प त्यागकर डॉक्टर साहब सीधे बम्बई पहुँचे। वहाँ लगातार तीन रात सपनों में डॉक्टर साहब के कानों में कोई मनुष्य चिल्लाकर "अब भी तुम्हारा मुझमें विश्वास नहीं ?" ये शब्द स्पष्टतः उच्चार करता रहा। स्वप्न में मिली हुई इस शिक्षा के बल पर डॉक्टर-साहब ने शिरडी जाने का पुनः दृढ़ निश्चय किया। उस समय उनके पास उपचार के लिए आये हुए एक रोगी की अवस्था गम्भीर थी। उसका ज्वर लगातार बढ़ता ही जा रहा था। "मेरे रोगी का ज्वर यदि तुरंत ही दूर हुआ तो एक क्षण के लिए भी विलम्ब न कर शिरडी पहुँचूंगा" इस प्रकार मन में निश्चय कर नित्य की भाँति डॉक्टर साहब रोगी को देखने के उददे्श्य से चल पड़े। आश्चर्य यह हुआ कि उस दिन रोगी को ज्वर नही आया। डॉक्टर साहब का पूर्ण समाधान हुआ। श्री बाबा कोई सामान्य व्यक्ति न होकर परमोच्च कोटि पर पहुँची हुई एक असामान्य विभूति है, यह दृढ़ भावना डॉक्टर साहब के मन में उत्पन्न हुई और उन्होंने शिरडी पहुँचते ही नम्रता से श्री बाबा के चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया। वहाँ भी श्री बाबा ने कुछ और लीलाएँ दिखाकर, द्वारकामाई की ऊदी में कितना प्रचण्ड सामर्थ्य भरा हुआ है, यह प्रमाणों सहित सिद्ध कर दिखाया। डॉक्टर साहेब तदनंतर श्री बाबा की सेवा में तल्लीन हुए बहुत दिन शिरडी में रहे और

ऊदी प्रसाद प्राप्त कर वापिस गाँव पहुँचे। मालेगाँव पहुँचते ही उन्हें बीजापुर में एक उच्च पद पर नियुक्त होने की सूचना मिली। भतीजे का रोग–ग्रस्त होना एक निमित्त मात्र हुआ और डॉक्टर साहब को एक परमोच्च कोटि में पहुँचे हुए सिद्ध पुरूष के सहवास का दुर्लभ अवसर मिला। यह सचमुच पूर्व जन्म का पुण्यों का फल ही समझना चाहिए।

=========

ग्यारहवाँ अध्याय
ऊदी के चमत्कार

अपने पूर्व जन्म के कर्मों के कारण ही प्रत्येक मनुष्य को इस जन्म में सुख–दुःख भोगने पड़ते है, यह सिद्धांत श्री साई महाराज ने अपने एक परम भक्त के समक्ष सिद्ध कर दिखाया था। श्री बाबा के भक्तों में डॉ. पिल्ले नामक एक सज्जन थे, जिन पर श्री बाबा की विशेष कृपा थी। वे स्वयं उन्हें 'भाऊ' नाम से पुकारते थे। वे सदैव उनके साथ विचार–विनिमय करते थे और अनेक अवसरों पर उनके परामर्श के अनुसार आचरण भी करते थे। एक बार डॉ. पिल्ले नारू की व्यथा से पीड़ित हुए। स्वयं डॉक्टर होने पर भी निरोग होने के उनके सारे प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए। वेदना इतनी असह्य हुई कि डॉ. साहब ने मर जाना श्रेयस्कर समझा। काकासाहेब दीक्षित को अपनी दुःख भरी कहानी सुनाकर डॉक्टर साहब ने अपने पूर्व जन्म के कर्मो

को दोष देते हुए कहा कि वे ओर दस जन्म लेकर दुःख भोगने के लिये तैयार है, किन्तु इस समय तो श्री बाबा को उन्हें अवश्य बचाना चाहिये। एक दिन श्री बाबा को प्रसन्न मुद्रा में देखकर काकासाहेब ने धीरे से डॉक्टर साहब के रोग ग्रस्त होने की बात छेड़ दी। इस पर श्री बाबा बोले–"जाओ, उससे कह दो, चिंता करने की बात नहीं। पूर्व जन्मों के कर्मो के फल भोगने के लिए उसे दस जन्मों की क्या आवश्यकता है ? इसी जन्म में अगले दस ही दिनों में वह अपने पूर्व कर्मो के दुःख से मुक्त हो जायेगा। उसका दुःख हरण कर उसे शांति प्रदान करने लिए मै समर्थ हूँ। अकारण ही मृत्यु को क्यों पुकार रहा है ? किसी की पीठ पर लादकर उसे यहाँ ले आओ। देखो, उसका रोग एक चुटकी के साथ कैसे दूर करता हूँ।"

श्री बाबा की आज्ञानुसार डॉ. पिल्ले को उनके सामने लाया गया। श्री बाबा ने उन्हें अपनी दायी और जहाँ फकीर बाबा बैठा करते थे, बैठाया और अपना कंबल उनके आगे डालकर श्री बाबा ने कहा," इस कंबल पर आराम से पड़े रहो। तुम्हारे पूर्व जन्मों के पापों का फल तो तुम्हें भोगना ही पडेगा। अच्छे कर्मो से सुख मिलता है और बुरे कर्मो के कारण दुःख भोगना पड़ता है। अब इस जन्म में निराश होने से कुछ नहीं बनेगा। सुख दुःख शांति के साथ सहन करना चाहिए। ईश्वर में अविचल श्रद्धा रखो। वह दीनदयालु परमेश्वर सबकी रक्षा करेगा। अनन्य भाव से उसकी शरण में जाने से ही तुम्हारे पूर्व जन्मों के सारे पाप कर्म अपने आप धुल जायेंगे।

रोग का कोई उपचार करने के स्थान पर श्री बाबा का यह प्रवचन सुनकर डॉक्टर पिल्ले दुःखी होकर बोले–"बाबा, आपका कहना ठीक ही है। परंतु अब इस क्षण तो मैं यह पीड़ा सहन नहीं कर सकता। नाना ने पैर पर भली–भाँति मरहम पटट्ी तो की है; परंतु उसका कोई लाभ नही हुआ। "यह सुनते ही श्री बाबा एकदम बरस पडे–"अरे, वह नाना तो मूर्ख है। यह कपडा तुरंत ही हटा दो, नही तो यों ही मर जाओंगे। अब ऐसे ही पड़े रहो। अभी

थोड़ी देर में ही यहाँ एक कौआ आएगा। वह तुम्हारे घाव पर चोंच मारेगा और फिर तुम बिल्कुल ठीक हो जाओंगे।''

इस प्रकार वार्तालाप हो ही रहा था, कि द्वारकामाई में नित्य बुहारी लगाने तथा सफाई काम करने वाला अब्दुल शीघ्रता से दियों में तेल डालने के लिए वहाँ आ पहुँचा। डॉक्टर पिल्ले अपना पैर, जिस पर सूजन थी और फोड़े के कारण सात स्थानों पर घाव थे, पैर फैलाकर श्री बाबा के साथ वार्तालाप में व्यस्त थे। जल्दी में होने के कारण असावधानीवश् अब्दुल का पैर डॉक्टर साहब के घावों पर पड गया। डॉक्टर साहब असहय वेदना से चीख पड़े। पंरतु, संयोग से इस दुर्घटना के कारण डॉक्टर साहब के सातों नासूर के फोड़े फूट गए और उनमें से सात कीडे, पीब आदि सारी गंदगी बाहर निकल गई। कुछ क्षण तो डॉक्टर साहब असह्य वेदना से व्याकुल हो उठे, पंरतु थोड़ी ही देर बाद वे कुछ स्वस्थ हो गए। कुछ और समय बीतने पर तो डॉक्टर साहब दुःख दर्द भूलकर परमात्मा की स्तुति में गीत गाने लगे। मुस्कुराते हुए उनकी और देखकर श्री बाबा बोले—''क्यो, रोग से मुक्ति पाकर अब गा रहे हो क्या ?''

कृतज्ञतापूर्वक श्री बाबा ने चरणों में अपनी दृष्टि झुकाए डॉक्टर साहब ने उत्तर दिया—''जी हाँ, अब बहुत कुछ ठीक हूँ। पंरतु बाबा, अभी वह कौआ चोंच मारने नहीं आया ?''

''क्यो ? कौआ देखा नही ? अब वह फिर नहीं आयेगा। अपना अब्दुल ही तो वह कौआ था। जाओ, अब विश्राम करो।''

इस घटना के बाद कुछ दिन डॉक्टर पिल्ले ने किसी भी औषधि का उपयोग नहीं किया। केवल ऊदी के प्रयोग से ही उनका रोग संपूर्णतः दूर हो गया।

श्री बाबा की ऊदी में अद्वितीय सामर्थ्य भरा था, पंरतु फिर भी वे स्वयं सफलता का कोई श्रेय नहीं लेते थे। प्रत्युत परमेश्वर की अगाध लीलाओं की

ओर संकेत कर स्वयं प्रसिद्धि से दूर रहने का प्रयत्न करते थे। शामा (माधवराव) जैसे उनके अत्यन्त प्रिय भक्त ने भी स्वयं अनुभव प्राप्त कर श्री बाबा के साथ इस संबंध में अनेक बार प्रश्नोत्तर किये है।

शामा(माधवराव) का छोटा भाई शिरडी के निकट ही रहता था। उसकी पत्नी एक बार प्लेग से पीड़ित हुई। ज्वर ने उग्र रूप धारण किया और दोनो और प्लेग की गुठलियाँ उभर आई। बापाजी बहुत घबराया और तुंरत शामा के पास भागा–भागा पहुँचा। शामा को श्री बाबा के चमत्कारों का अनुभव था। अतः तनिक भी न घबराते हुए वे बापाजी को साथ ले श्री बाबा के चरणों में झुक गए और उनसे अपनी भाभी के पास जाने की आज्ञा माँगी। पहले तो श्री बाबा क्रोधित हो उठे और चिल्ला कर बोले–"इतनी रात हुए वहाँ जाने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं। उसे मेरी ऊदी भिजवा दो, ज्वर और गुठलियाँ तुंरत ही एक चुटकी के साथ दूर भाग जायेंगी। वह दयाधन परमेश्वर ही उसके सच्चे रक्षक है। वह उसे अच्छा करेगा। तुम कल प्रातःकाल वहाँ जाना और शीघ्र वापस आ जाना।"

श्री बाबा की अनुमति के बिना कहीं आना–जाना एक भयंकर अनिष्ट को निमंत्रण देना होता है, यह शामा अपने अनुभवों के आधार पर भली–भाँति जानते थे। उन्होंने बापाजी को ऊदी देकर रवाना कर दिया। बापाजी ने घर पहूँचते ही ज्वर से व्याकुल अपनी पत्नी को ऊदी–मिश्रित जल पिलाया और प्लेग की गाँठ पर भी ऊदी का लेप किया। थोडी ही देर बाद उसके शरीर से पसीना बहने लगा। ज्वर दूर हुआ और रोग की पीड़ा से शांत होते ही बापाजी की पत्नी को आराम से सो गई। दूसरे दिन प्रातःकाल उस पूर्णतः रोग मुक्त होकर अपने गृहकार्य में निमग्न देख स्वयं उसके पति बापाजी को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ देर बाद शामा भी श्री बाबा की आज्ञा से वहाँ पहुँचे।

श्री बाबा की ऊदी का चमत्कार देखकर वह भी हक्का–बक्का रह

गये और बडे उत्साह के साथ शिरडी लौटे।

शिरडी पहुँचते ही श्री साईनाथ महाराज के चरणों में मस्तक नत करते हुए शामा बोले–''देव ! भक्तों के साथ इस प्रकार विचित्र खेल क्यों रचते हो ? पहले तो आप एकदम कुपित हो उठते हो। भयंकर तूफान मचा देते है और फिर शान्त होकर भक्तों की रक्षा करते है, इसका क्या अर्थ है?

श्री बाबा ने उत्तर दिया–''अरे, कर्म की गति अत्यन्त गूढ़ तथा विलक्षण होती है। मैं स्वयं कुछ भी नहीं करता। प्रारब्ध के कारण ही प्राणी को सब कुछ भोगना पड़ता है। मै तो नाममात्र के लिए साक्षी हूँ। प्रत्येक प्राणी के लिए जो उचित है, वही करने के लिए सर्व शक्तिमान प्रभु स्वयं ही प्रेरणा देता रहता है। अल्ला मालिक, दया का सागर है। मैं न ही देवदूत हूँ और न ही परमात्मा। मैं तो बंदा गुलाम हूँ। परमेश्वर में मेरी जैसी ही अविचल श्रद्धा रखो। अपने मिथ्या अभिमान को त्याग कर मन में सदैव परमेश्वर का स्मरण रखो और उस पर मन में दृढ़ विश्वास रखो। ऐसा करने से तुम्हारी हाथ–पैरों मे पडी हुई माया की श्रृंखलाओं वासुदेव की श्रृंखलाओं की भाँति तड़क से टूट जाएँगी और तुम्हारा जन्म–जन्म के लिए कल्याण होगा।'' शामा के मन में जिस सहज शंका ने घर किया था, उसका श्री बाबा ने पूर्ण समाधानकारक उत्तर दिया, उससे श्री बाबा की आत्म–तृप्तस्थिति और परमेश्वर में उनकी अटूट श्रद्धा का पूरा परिचय भक्तों को मिल जाता है।

श्री साईनाथ महाराज ने चाहे किसी में स्वयं कितनी भी तन्मयता प्रकट की हो, वास्तव की हो, वास्तव में यह उनके मन की विशालता ही सिद्ध करती थी। भक्तों की प्रत्यक्ष अनुभवों से किसी के भी मन में यह अटल धारणा बनती थी की साई महाराज की दिव्यता में प्रतिक्षण चंद्रमा की भाँति ही वृद्धि हो रही थी और इसलिए केवल उनकी ऊदी ने ही अनेक अलौकिक चमत्कार कर दिखाये हैं।

हरदा के एक वृद्ध गृहस्थ का पथरी जैसा कष्टदायक रोग केवल

ऊदी मिश्रित जल से ही नष्ट हुआ। बम्बई के पाढेरे प्रभु जाति के एक सद्गृहस्थ की पत्नी को प्रसव–काल के समय सदैव बड़ा कष्ट होता था। संयोग से कल्याण के सुप्रसिद्ध सत्पुरूष श्री राममारूती महाराज ने उन्हें शिरडी में श्री साई महाराज का दर्शन कर आने का परामर्श दिया। दिन पूरे होते ही उक्त सज्जन की पत्नी शिरडी के वास करने के लिए गई। कुछ दिनों के पश्चात जब प्रसव–काल निकट आया तो सदैव की भाँति उसे महान वेदना हुई। भक्त लोंगो ने श्री बाबा को उसके रोग का सारा वृतान्त सुनाया और श्री बाबा ने उसे ऊदी जल में घोलकर पिला दी। ऊदी–मिश्रित जल उदर में पहुँचते ही केवल पाँच ही मिनटों के पश्चात् वह कुशलतापूर्वक प्रसव पीड़ा से मुक्त हो गई।

श्री बाबा की ऊदी शक्ति का अनुभव हजारों भक्तों को हो चुका है। इन अनुभवों की विविधता और उनमें निहित निराली भावना से भक्तो को भली–भाँति परिचित कराने के उददेश्य से यहाँ कुछ और चमत्कारों का उल्लेख किया जाता है।

बांद्रा में रहने वाले कायस्थ प्रभु जाति के एक सज्जन अनिद्रा के रोग से ग्रस्त थे। नित्य प्रति निद्रा आते ही उनके कुछ ही दिन पूर्व स्वर्गवासी हुए पिता स्वप्न में आकर उन्हें अकारण ही बुरी तरह गालियाँ दिया करते थे। इससे उन्हें सारी रात नींद बिना, बेचैनी से व्यतीत करनी पड़ती थी। यह घटना रात्रि को नित्य होने लगी। इस कारण उनके स्वास्थ्य पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ा और वे एक रोग–ग्रस्त मनुष्य की भाँति दिखने लगे। निद्रा के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की औषधियाँ का प्रयोग करते करते वे थक गए और अन्त में इस शंका से वे भयग्रस्त हुए कि कही पागल न हो जायें। संयोग से इस समय उनकी एक साई भक्त से भेंट हुई। उसने श्री साई महाराज की ऊदी के दिव्य चमत्कारों का वर्णन कर शिरडी से विशेषतः लाई हुई ऊदी उन्हें दे दी। उस रात को शयन से पूर्व वे श्री साई महाराज का नाम स्मरण

कर मस्तक पर ऊदीधारण कर सो गए। सारी रात्रि उन्हें किसी कष्ट के बिना शांत तथा गहन निद्रा का सुख मिला। लाखों रूपये की सुवर्ण राशि भी यदि उस समय उनके साथ आती तो उन्हें उतना हर्ष न होता, जितना कि उस रात सोने से हुआ। उनके मन में श्री बाबा के लिए अविचल श्रद्धा उत्पन्न हुई। तुरंत ही उन्होंने दुकान से श्री साई महाराज का रंगीन चित्र खरीद लिया और उस दिन से उन्होंने हर बृहस्पतिवार से श्री साईनाथ महाराज की आरती तथा पूजा करने का अखण्ड नियम आजीवन निभाया।

शिरडी में जब श्री साई महाराज का वास रहा, तब वहाँ आए हुए भक्तों को अपनी ऊदी के सामर्थ्य से हर कार्य में वे सहायता पहुँचाते रहे। केवल ऊदी के द्वारा अनेक असाध्य रोगों का उन्होंने समूल नाश किया। भूत–बाधा से ग्रस्त लोंगो की उन्होंने ऐसे ही रक्षा की, जैसे कोई महान अगाध समुद्र में ग्राह के मुँह में फँसे व्यक्ति को बचा लेता है। श्री बाबा ने सच्चे मुमुक्षुओं के मन में ऊदी ही दिव्य भस्म है, इस कल्पना की विकास कर और प्रपंच में फँसे हुए उनके संवेदनशील मन को परमेश्वर प्राप्ति का, नित्यानंद स्वरूप की उपलब्धि का सत्य मार्ग दिखा दिया। श्री बाबा की ऊदी ने इस प्रकार के विविध चमत्कार कर दिखाये थे।

शिरडी को तो आज एक संस्थान का स्वरूप प्राप्त हुआ है। वहाँ भक्त मंडली ने भाँति–भाँति के उत्सव–समारोह मनाने की परिपाटी आरम्भ की है। ऐसे ही श्राद्ध–समारोह के दिन उपस्थित लोगों का भण्डारा करने के समय जब मिष्ठान के लिए सारी सामग्री जुटायी गई तो श्रीमती नेवासकर को जिन्हें भोजन की व्यवस्था करने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सौंप दिया गया था, यह देखकर चिंता हुई कि भोजन के लिए निमंत्रित लोगों से भी अधिक संख्या में लोग उपस्थित हुए है। जब श्रीमती नेवासकर इस दुविधा में पड़ी थी कि इतनी थोड़ी सामग्री से इतनी भारी संख्या में उपस्थित लोगों की उदरपूर्ति किस प्रकार संभव होगी तो उनकी सास ने उन्हें श्री बाबा का नाम

स्मरण करने का परामर्श दिया और स्वयं अपने हाथ से एक–एक चुटकी ऊदी लेकर भोजन के प्रत्येक पात्र में डालकर उसे ऊपर से वस्त्र में ढँक दिया। फिर श्रीमती नेवासकर ने भोजन–पात्रों में न झांकते हुए भोजन परोसने का कार्य आरम्भ किया। सायंकाल तक कितने ही लोग भोजन करके चले गए, परंतु फिर भी भोजन–सामग्री पर्याप्त मात्रा में शेष रह गई। ऊदी के इस चमत्कार का श्रीमती नेवासकर के प्रत्यक्ष अनुभव किया था।

इसी प्रकार अहमदनगर जिले कर्जत गाँव के प्रथम श्रेणी के न्यायाधीश श्री चौगुले ने भी स्वयं अनुभव किए हुए एक चमत्कार का उल्लेख किया है। वहाँ एक सार्वजनिक पूजा तथा उत्सव के अवसर पर निमन्त्रित संख्या से लगभग पाँच गुने अधिक लोग एकाएक ही भोजन के लिए उपस्थित हुए। पर श्री बाबा की कृपा से इतनी बड़ी संख्या में लोगों के आने पर भी भोजन की जरा भी कमी अनुभव न हुई और सभी उपस्थित लोग वहाँ से यथेष्ठ भोजन कर लौटे।

==========

बारहवाँ अध्याय
शिरडी का काया-कल्प

श्री साई महाराज के आगमन और निवास से शिरडी गाँव एक तीर्थ क्षेत्र के रूप में परिवर्तित हो गया। हजारों लोग श्री बाबा के दर्शनार्थ तथा ऊदी–प्रसाद प्राप्त करने के उददे्श्य से वहाँ नित्य एकत्रित होने लगे। कुछ ही दिनों के बाद भक्तगणों ने वहाँ रामनवमी का उत्सव मनाना आरंभ किया। कोपरगाँव में गुंड नामक एक सर्कल इन्स्पेक्टर श्री बाबा के भक्त थे। उनकी तीन पत्नियाँ थी। तथापि वे पुत्र संतति से वंचित थे। जब श्री बाबा की कृपा से उन्हें पुत्र लाभ हुआ तो उन्होंने आनन्द मनाने के लिए शिरडी में एक वृहत उर्स का आयोजन करने की इच्छा व्यक्त की। अपनी इस इच्छा को उन्होंने शिरडी के श्री तात्या पाटील और श्री माधवराव देशपांडे आदि लोगों पर सविस्तार प्रकट कर दिया। सब लोगों के सहयोग से पहले तो श्री साई महाराज की अनुमति के लिए प्रार्थना–पत्र भेजा गया। कलेक्टर साहब के कार्यालय के एक कर्मचारी कुलकर्णी ने उर्स मनाये जाने का घोर विरोध किया। पंरतु, श्री बाबा के आशीर्वाद से सब कठिनाईयाँ दूर हो गई और उर्स मनाने की विधिवत् आज्ञा मिल गई। श्री बाबा ने उर्स मनाने के लिए रामनवमी का दिन निश्चित किया। स्पष्ट है कि इसमें श्री बाबा का कोई विशिष्ट उद्देश्य था। सब भक्त लोग पूर्ण उत्साह के साथ कार्यरत हुए। शिरडी एक छोटा–सा–गाँव था। वहाँ कुछ भी सरलता से प्राप्त नहीं होता था। इतना ही नही, वहाँ एकत्रित लोगों के लिए पीने का जल भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं था। गाँव में केवल दो ही कुएँ थे। उसमें से एक कुआँ तो बिल्कुल सूखा था और दूसरे का जल गंदा था। फिर भी लोगों ने हिम्मत नहीं हारी। तात्या पाटील ने गाँव के बाहर कुएँ पर मोट बँधवाई और भिश्तियों की मश्को से पानी लाकर स्थान–स्थान पर बड़े–बड़े हौज जल से भर दिए। कुछ

काम चलाऊ दुकाने बनाई गई। दामूअण्णा कासार ने संतति के लिए श्री बाबा की मनौती मानी थी। उन्होंने एक झंडा तैयार करवाया। नानासाहेब निमोणकर ने भी जरी–बूटे वाला एक और झंडा तैयार किया। लोगों ने रास्ते साफ किये। सभी स्थानों में वदंनवार लगाये गये। द्वारकामाई को तो मंदिर की भाँति फूलों की मालाओं तथा रंग बिरंगे वदंनवारों से सजाया गया। इस प्रकार शिरडी में भक्त लोगों ने सबसे पहले सन १८९७ में अत्यन्त उत्साह के साथ उर्स मनाना आरंभ किया। आज भी उर्स प्रतिवर्ष मनाया जाता है। इस उत्सव के निमित्त एक बड़ा भारी मेला लगा था और रात को बड़ी संख्या में उपस्थित लोगों ने भजनों के जयघोष और मंजुल वाद्यों के बीच श्री साई बाबा को पालकी में आसन कर उनका जुलूस निकाला था। श्री बाबा के हिन्दू भक्तों ने जब अत्यन्त हर्ष के साथ बड़े पैमाने पर यह उर्स का समारोह मनाया तो उनके मुसलमान भक्तों में भी हर्ष एवं उत्साह की लहर दौड गई। कोन्हाला गाँव के निवासी और श्री बाबा के एक परम भक्त अमीर शक्कर दलाल ने श्री बाबा के अनुमति प्राप्त कर दूसरे ही दिन हाथों में चंदन से भरी हुई थालियाँ लेकर 'संदल' का भव्य जुलूस निकाला। इस प्रथा के अनुसार प्रतिवर्ष उत्सव मनाया जाने लगा। रामनवमी के शुभपर्व के दिन उर्स तथा दूसरे दिन 'संदल' मनाने की श्री बाबा की अनुमति से यह सिद्ध होता है कि श्री साईनाथ महाराज हिन्दू–मुसलमान दोनों संप्रदायों के साथ कैसे समानता का व्यवहार किया करते थे। वे किसी भी प्रकार के समक्ष उपस्थित कर उन्हें एकता से अपने अपने धर्मो के तत्वों का भली–भाँति पालन करना सिखाया करते थे। आगे चलकर भारतवर्ष में स्थान–स्थान पर हिन्दू–मुसलमान में दंगे फसाद हुए; परंतु शिरडी में आज तक भी दोनों संप्रदाय "हम एक ही देह के दो हाथ है"– इस पवित्र भावना से, एकता और भ्रातृ–भाव से जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

श्री बाबा के सभी भक्तों को इस तथ्य का महत्व ज्ञात हो चुका है।

और इसी कारण यहाँ आने वाले भक्तों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। पहली बार श्री तात्या पाटील ने बहुत अच्छा प्रबंध किया था। राधाकृष्णमाई ने भोजन की व्यवस्था संभाली थी। उसने श्री बाबा के नित्य बैठने के स्थान, द्वारकामाई की गोबर से लिपाई–पुताई कर उसे साफ–सुथरा किया था। श्री बाबा की सदैव प्रज्वलित धूनी के कारण, द्वारकामाई की दीवारें काली हो चुकी थी। एक रात को जब श्री बाबा चावड़ी में शयन के लिए गये थे तो राधाकृष्णमाई ने उनका सारा समान बहार निकाल कर अत्यन्त तत्परता से द्वारकामाई को साफ–सुथरा करने कार्य पूर्ण किया था।

किसी भी उत्सव के अवसर पर मुक्त–हस्त से स्वयं दान–धर्म करना तथा दीन निर्धनों को पेट भर अन्न खिलाना यह श्री बाबा का विशिष्ट गुण था और इससे भली प्रकार परिचित होने के कारण राधाकृष्णमाई को ऐसे प्रत्येक अवसर पर बड़े भारी पैमाने पर भोजन की व्यवस्था करनी पड़ती थी। सभी धनी–निर्धन भक्त इस कार्य में पूर्ण उत्साह के साथ राधाकृष्णमाई का हाथ बँटाते थे।

इस उत्सव ने तथा 'संदल' के कार्यक्रम ने आगे १९१२ में एक निराला ही रूप धारण किया। तब श्री दादासाहेब खापर्डे के साथ कृष्णराव भीष्म भी शिरडी आये थे। कृष्णराव के मन में यह विचार आया कि 'उर्स' मनाने के लिए श्री बाबा ने रामनवमी का ही दिन क्यों निश्चित किया ? राम–जन्म का पावन महत्व लोगों के ध्यान में आये, यही श्री बाबा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिये यह मन मे विचार कर राम–जन्म मनाने की अपनी आंतरिक इच्छा उन्होंने अन्य भक्तों के समक्ष व्यक्त की। सभी भक्तों ने कृष्णराव की इस इच्छा का सहर्ष स्वागत किया और श्री बाबा की अनुमति प्राप्त करने के उद्देश्य से काकासाहेब महाजनी को उनके पास भेजने का निश्चय किया। श्री बाबा ने प्रसन्नतापूर्वक अनुमति दे दी। कीर्तन संबंधी जो बाधा उत्पन्न हुई थी, वह कृष्णराव भीष्म ने दूर की। उन्होंने स्वरचित 'श्री

रामजन्माख्यान' सुनाना निश्चित किया। काकासाहेब महाजनी ने हार्मोनियम पर साथ देने का वचन दिया। राधाकृष्णमाई ने घर के एक सुंदर पालना लाकर द्वारकामाई में रखा। रामजन्मोत्सव की सब तैयारी हुई। स्थान–स्थान पर वदंनवार लगाये गये और रामजन्मोत्सव का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। श्री बाबा शांत मुद्रा से सब कुछ देख रहे थे। एक फूलों की माला उठाकर उन्होंने अपने कण्ठ में डाली और दूसरी माला भीष्म को, पहनाई जो कीर्तनिया के रूप में वहीं खड़े थे। राम–जन्म हुआ। 'जय–जय राम' का जयघोष सुनाई दिया और चारों दिशाओं में गुलाल उड़ाया गया। उसमें से थोड़ा–सा गुलाल श्री बाबा के नेत्रों मे चला गया। अकस्मात् श्री बाबा ने एक भंयकर गर्जना की और वे परम क्रोधावस्था में जोर–जोर से चिल्लाने लगे। सारी द्वारकामाई मानो भय से काँपने लगी। समारोह में सम्मिलित हुए भक्त लोग घबराहट में इधर–उधर भागने लगे। जो भक्त सदैव श्री बाबा के निकट रहते थे, वो जो श्री बाबा के स्वभाव से भली–भाँति परिचित थे, वे शांतिपूर्वक अपने–अपने स्थान पर डटे रहे। श्री रामचंद्र ने अवतार के पश्चात् दुष्ट रावण का संहार करने के लिए जो उग्र स्वरूप धारण किया था, उसी का मूर्तिमय रूप उस समय श्री बाबा में दृष्टिगत् हुआ। राधाकृष्णमाई इस वास्ते सहमी हुई थी कि कहीं श्री बाबा में पालने को तोड–फोड न दें और उन्होंने काकासाहेब महाजनी को संकेत द्वारा धीरे से पालना हटाने के लिए कहा। काकासाहेब पालने की रस्सियाँ खोल ही रही थे कि श्री बाबा का क्रोध भी शांत हुआ और वे बोले–''पालना मत हटाओ, अभी उत्सव समाप्त नहीं हुआ।''

दूसरे दिन फिर कीर्तन हुआ और श्रीकृष्ण–जन्मोत्सव में जिस प्रकार दही की हांडी फोड़कर प्रसाद के रूप में दही बाँटा जाता है। वैसे ही प्रसाद बाँटने की श्री बाबा ने आज्ञा दी। सदैव की भाँति उर्स भी मनाया गया। इस प्रकार उर्स का रामनवमी के उत्सव में रूपान्तरण हुआ।

अगले वर्ष राधाकृष्णमाई ने उत्सव माने की पद्धति में कुछ और

सुधार किए। चैत मास में प्रतिपदा से नाम–सप्ताह आरम्भ करने की प्रथा राधाकृष्णमाई ने आरम्भ की। उस समय सुप्रसिद्ध "आधुनिक तुकाराम" बालाबुवा माली ने कीर्तन किया। फिर कुछ वर्षों तक बालाबुवा सातरकर यह कार्य करते रहे। पंरतु १९१४ से श्री बाबा ने कीर्तन का कार्यभार सदैव के लिए श्री दासगणू महाराज को सौंप दिया।

नदी के उद्‌गम की भाँति पैमाने पर आरम्भ हुआ यह उत्सव आगे चल कर सागर की भाँति निस्सीम और विस्तृत होता गया। असंख्य जन–समुदाय शिरडी की यात्रा करने लगा। बड़े पैमाने पर अन्न–छत्र आरम्भ हुआ। शिरडी जैसे एक सर्वथा अपरिचित एवं साधारण गाँव का अभूतपूर्व काया–कल्प हुआ। जुलूसों की भव्यता तथा सज–धज दिनों दिन बढ़ने लगी। अत्यन्त सुंदर 'श्यामकर्ण' नामक घोड़ा, सोने चाँदी से मढ़ी हुई पालकी, सुशोभित मखमल के ध्वज आदि सभी राजोचित ठाट–बाट जुटाये गये। जुलूस के आगे–आगे श्री बाबा का अति प्रिय 'श्यामकर्ण' घोड़ा बड़ी ठनक के साथ चलने लगा। किसी सार्वभौम राज के सदृश अटूट संपति श्री बाबा के चरणों में लौटती थी; परंतु इस सारी संपति का उपभोग करना तो दूर, श्री बाबा प्रत्येक वस्तु को उपेक्षा की दृष्टि से ही देखते थे। अंत तक उन्होंने अपना फकीरी बाना तथा पूर्ण वैराग्य नहीं छोड़ा। आरंभ में तो चार–पाँच हजार भक्तों का समुदाय एकत्रित होता था; परंतु, इस बात के प्रमाण है कि आगे यह संख्या हजारों तक पहुँच गई थी। पर, श्री बाबा की असीम कृपा से एक बार भी मार–पीट या झगड़े की स्थिति उत्पन्न नहीं हुई न ही वहाँ कोई दुर्घटना हुई। जल का वहाँ अत्यन्त अभाव था और लोगों की अपार भीड़ शिरडी गाँव में जुड़ती थी, फिर भी कोई संक्रामक रोग नहीं फैला। यह बात भी निःसंदेह मन को चकित करने वाली ही है।

श्री साई महाराज के भक्तों की संख्या दिनों–दिन बढ़ती गई और शिरडी में वास करने के लिए जो लोग आते थे, उनके ठहरने के लिए

धर्मशालाएँ न होने से बड़ी असुविधा अनुभव होने लगी। यह देखकर श्री बाबा ने श्री हरि विनायक साठे के मन में एक बड़ी कोठी का निर्माण कराने की प्रेरणा उत्पन्न कर दी। जिस नीम वृक्ष के नीचे श्री बाबा सदैव बैठा करते थे, वहाँ जमीन खाली पड़ी थी। वह साठे ने खरीद ली और वहाँ एक विशाल भवन का निर्माण करा दिया। श्री साठे का बनाया हुआ यह भवन 'साठे वाड़ा' शिरडी में श्री बाबा के दर्शनार्थ आने वाले भक्तों के लिए बहुत ही सुविधाजनक सिद्ध हुआ। इसी समय नीम वृक्ष के इर्द–गिर्द एक चबूतरा भी बनाया गया। इसी स्थान पर श्री बाबा के गुरू की समाधि है और इस स्थान पर हर गुरूवार और शुक्रवार को लोबान जलाने से परमेश्वर प्रसन्न होता है ओर सब दुःखों का नाश कर चिरकाल सुख देता है। ऐसी भक्तों की दृढ श्रद्धा है। शिरडी संस्थान ने इस धर्मशाला का अच्छा प्रबंध किया है। इस भवन के निर्माण के कुछ ही वर्षो के बाद बम्बई के सुप्रसिद्ध सॉलीसिटर श्री काकासाहेब दीक्षित जी ने भी वहाँ एक और धर्मशाला बना दी। इन श्री काकासाहेब के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि, जब वे यूरोप के दौरे पर थे तो उनके पैर में कोई पीड़ा हुई। मातृभूमि वापस आने पर भी पैर की पीड़ा दूर करने के लिए बहुत प्रयत्न किये। पर पैर की दशा में सुधार होने का कोई y{kk fn[kbZu fn; kA v a esaJ h ukuk lkgs p knksd j usl u~१९०९ में उन्हें श्री बाबा से परिचित कराया। काकासाहेब दीक्षित श्री बाबा के दर्शन से ऐसे मोहित हुए कि उन्होंने शिरडी में ही रहने का निश्चय व्यक्त किया और १९१० में वह वहाँ एक मकान बनवाने लगे। जिस दिन यह कार्य आरम्भ हुआ, उसी दिन से भक्तमंडली ने हर रात को चावड़ी में श्री बाबा की आरती उतारने की प्रथा आरम्भ की। दीक्षित जी का यह मकान सन १९११ में रामनवमी के दिन बन कर तैयार हुआ और यह स्थान भी शिरडी में आये हुए लोगों के ठहरने के लिए बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ था। यह भवन 'दीक्षित–वाड़ा' के नाम से विख्यात है।

शिरडी में जो एक और प्रसिद्ध भवन है। उसकी कहानी बहुत ही मनोरंजक और रहस्यमय है। नागपुर के लखपति साहूकार बूटीसाहेब ने असंख्य धन–राशि खर्च कर द्वारकामाई के समीप जमीन खरीद ली और श्री बाबा की अनुमति से वहाँ एक विशाल मंदिर का निर्माण कराया। पहले इसी स्थान पर श्री बाबा ने अपने हाथों से एक छोटा–सा सुंदर उद्यान तैयार किया था। श्री बुटीसाहेब की इच्छा इस मंदिर में मुरलीधर भगवान श्री कृष्ण की मूर्ति प्रतिष्ठित करने की थी। परंतु वह मूर्त न हो सकी। श्री साई महाराज ने स्वयं इस मकान में स्थायी वास करने की इच्छा प्रकट की थी और अंत में इसी मंदिर में श्री बाबा की समाधि बनाना निश्चित हुआ। श्री बूटीसाहब का यह भव्य भवन आज 'समाधिमंदिर' के नाम से प्रसिद्ध है। शिरडी के ये तीनों धर्मशालाएँ आज भी श्री बाबा की कृपा से भक्तों को आसरा देने के लिए सदैव तत्पर है।

श्री साई बाबा ने चुबंक भाँति लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर रखा था। श्री बाबा के मुख पर कुछ ऐसा दिव्य तेज चमकता था कि उन्होंने यदि अपने मुख से अपशब्द कहकर किसी को भगा दिया तो भी भक्त उनकी गालियों को प्रसाद की भाँति मधुर समझते थे। यह नहीं, उल्टे वे श्री बाबा की ओर आकर्षित होते थे।

श्री बाबा का भक्ति मार्ग की ओर अधिक झुकाव रहता था। वे सभी भक्तों से मुख से नाम स्मरण करने का आग्रह किया करते थे। यदि कोई भी व्यक्ति किसी–न–किसी रूप में परमेश्वर का नाम लेते हुए दिखाई देता तो वे उसे बड़े प्रेम से अपने निकट बैठाते थे। इस संबंध में शिरडी में आकर शिरडी निवासियों की ही नाक में दम करने वाले एक मुसलमान रोहिला की कहानी अति मनोरंजक है। यह रोहिला शरीर से बड़ा हष्ट–पुष्ट, उँचा और एक मस्त भैंसे की भाँति व्यवहार करने वाला था। बैरागी फकीर की भाँति लंबी कफनी पहनकर पवित्र कुरान के कलमें को अपनी भद्दी तथा बेसूरी

आवास में गाते हुए वह गाँव में भटकता फिरता था। गाँव के गरीब किसान दिनभर खेतों में शारीरिक परिश्रम कर घर जाकर जब विश्राम के लिए लेटते थे तो उस दीवाने रोहिला की गर्जना से उनकी नींद हराम होती थी। कुछ दिन तो लोगों ने यह आपत्ति सहन की; परंतु श्री बाबा के ढंग तो न्यारे ही होते थे। उन्होंने उल्टें गाँव वालों को ही डाटा और खामोश रहने का परामर्श दिया। लोगों को समझाते हुए श्री बांबा ने कहा कि रोहिला की स्त्री बड़े उग्र स्वभाव की है और उसे अपने से दूर भागने के उद्देश्य से ही वह जोर–जोर से अल्ला का नाम लेता है। लोग बेचारे श्री बाबा के समझाने से चुप रहे। वास्तव में रोहिला की कोई स्त्री नहीं थी। सदैव परमेश्वर का नाम–स्मरण कर प्रत्येक मनुष्य को अपने मन के दुष्ट विचार तथा दुबुर्द्धि भगा देनी चाहिये, यही तत्व सिखाने के लिये श्री बाबा ने रोहिला का समर्थन किया था उसके द्वारा जो असुविधा होती थी, उसे श्री गाँव वालों को सहन करना सिखाया। किसी के भी मुख से निकले हुए परमेश्वर के नाम से श्री बाबा इतने मोहित होते थे। कुछ दिनों के पश्चात् रोहिला अचानक ही कही चला गया।

श्री बाबा बहुत दूर रहने वाले मनुष्य को भी स्वयं स्फूर्ति से अपनी ओर खींच लेते थे और अनुचित मार्ग से परान्गातमुख कर उचित मार्ग पर लाते थे। भगवंतराव क्षीरसागर विठोबा के उपासक थे। उनके पिता पंढ़रपूर के विठोबा के भक्त थे ओर 'वारकरी' पंथानुसार वे नियमापूर्वक पंढरपुर की यात्रा करते थे। उसके घर में भी नित्य पूजा–अर्चना के लिए विठोबा की साँवली मनोहर मूर्ति थी। पिता की मृत्यु के पश्चात भगवंतराय ने अपने कुल की परंपरागत मान–मर्यादा तथा कुलाचार को तिलांजलि दे दी और विठोबा की पूजा करना भी बंद कर दिया। पंढरपूर की यात्रा करना तो उनके लिये दूर की बात थी। एक दिन संयोग से भगवंतराव अपने मित्रों के साथ शिरडी पहुँचे। उन्हें देखते ही श्री साईनाथ बोले–"देखो, तुम्हारे पिता को मैं भली–भाँति जानता हूँ। वह मेरे परम् मित्र थे। इसीलिये मैं तुझे जान–बूझकर ही यहाँ खीच़ लाया। तुझे हो क्या गया है? तूने घर में साँवले विटठ्ल की

पूजा–अर्चना करना ही छोड़ दिया है। प्रतिदिन नैवेद्य भी अर्पण नही करते। परम् पवित्र भगवान को और मुझे भूखा–रखकर तुम्हारा क्या कभी भी कल्याण हो सकता है ? पूर्ण विचार कर अपने मार्ग–भ्रष्ट मन को रास्ते पर ला और अपने पूर्वजों द्वारा निर्धारित कुलाचारों का पालन करना आरम्भ कर। इसी क्षण से मनोभाव से विटठ्ल की पूजा कराना आरंभ कर दे। तुझे कल्याणकारी भक्ति–मार्ग दिखाने के उद्‌देश्य से ही मैं यहाँ आया हूँ।" श्री बाबा की ऐसी अधिकार भरी वाणी से उपदेश करने का फल यह हुआ कि क्षीरसागर के मन पर तुरंत अच्छा प्रभाव पड़ा और वह भक्ति–मार्ग की ओर प्रवृत्त हुआ।

श्री साई महाराज यद्यपि कभी–कभी बहुत क्रोधित दिखाई देते थे, पर उनका अंतःकरण बहुत ही सरल था। भक्तों की प्रत्येक भंगिमा और व्यवहार की ओर तथा उनके मन में उत्पन्न होने वाले अच्छे–बुरे विचारों की ओर वे सूक्ष्म दृष्टि से देखते रहते थे। नानासाहेब चाँदोरकर जब नंदुरबार में तहसीलदार थे तो उन्हें पंढरपूर में नियुक्त होने के आज्ञा मिली। श्री नानासाहेब हर्ष–विभोर हुए। पंढरपूर तो प्रत्यक्ष विष्णु का वैकुंठपुर हैं। वहाँ जाने से श्री विटठ्ल दर्शन प्राप्त होता, इस भावना से उन्होंने तुरंत ही वहाँ जाने की सारी व्यवस्था की। पंढरपूर में अपना तबादला होने की खबर उन्होंने किसी को भी नहीं दी। केवल कार्यभार संभालकर पूर्व नियमानुसार श्री बाबा के दर्शनार्थ शिरडी पधारे। नानासाहेब की श्री साई चरणों में इतनी दृढ निष्ठा थी कि श्री बाबा को ही वे श्री विटठ्ल मानते थे और शिरडी ही जैसे उनके लिए साक्षात पंढरपूर था। नानासाहेब शिरडी जाने को उद्यत हुए। वे सोच रहे थे कि किसी को भी उनके शिरडी आने का रहस्य ज्ञात नहीं है। परंतु श्री बाबा के अंतर्ज्ञान से सब कुछ जान लिया था। नानासाहेब नीमगाँव तक ही पहुँचे थे कि इधर श्री बाबा ने द्वारकामाई में अपनी कार्यवाही आरम्भ की। म्हालसापति अप्पा शिंदे, काशीराम आदि लोगों को श्री बाबा ने शीघ्रता से

बुला लिया और संबोधित कर श्री बाबा बोले–''चलो, आप लोग सब भजन की व्यवस्था करो। आज हम भजन करेंगे। पंढरपूर के द्वार खुले है। आनन्द से विटठ्ल नाम का गायन आरम्भ करो।''

श्री बाबा की आज्ञानुसार भजन आरम्भ हुआ। श्री बाबा स्वयं ही अपने सुरीले मधुर कंठ से भजन करने लगे और उपस्थित लोगों ने ताल–मृदंग नाद से उनका साथ दिया। जब सब लोग भजन में मग्न थे तो अचानक नानासाहेब अपने परिवार सहित वहाँ आ पहुँचे। द्वारकामाई में उस समय जो कुछ हो रहा था, उसे देखकर वे विस्मित रह गये। नानासाहेब का पंढरपूर जाने का विचार श्री बाबा ने जान लिया था और प्रत्यक्ष श्री विटठ्ल का भजन आरम्भ कर यह सिद्ध किया कि भक्तों के लिए शिरडी पंढरपूर के समान ही है। नानासाहेब गदगद् हो उठे। उस समय श्री बाबा के रूप में उन्हें प्रत्यक्ष श्री विठोबा के दर्शन हुए। श्री बाबा के चरणों में नतमस्तक होकर उन्होंने पंढरपूर जाने के लिए आज्ञा माँगी और श्री बाबा से ऊदी–प्रसाद प्राप्त कर पंढरपूर के लिए प्रस्थान किया।

==========

तेरहवाँ अध्याय
अंतर्ज्ञानी श्री साई बाबा

सम्पूर्ण विश्व चमत्कारों से भरा हुआ है। हिन्दू शास्त्र के अनुसार चौरासी लाख योनियाँ है। देवता, देवदूत, असंख्य प्राणी पशु–पक्षी तथा मानव देहधारी जीवों में उनका वर्गीकरण किया गया है और ये सारे जीव अपने–अपने कर्मानुसार स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल, आकाश एवं सागर आदि स्थानों में व्याप्त है। धर्मशास्त्रों के अनुसार जीवों को उनके महान पुण्य कर्मों के संचय के फलस्वरूप ही स्वर्ग–प्राप्ति होती है और घोर पाप कर्मों के परिणामस्वरूप ही वे नरक में जाते है। पुण्य तथा पाप सम मात्रा में होने से जीवों को मनुष्य देह धारण करनी पड़ती है। मनुष्य जन्म में जीवों को अपनी उन्नति या अवनति करने का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है। जन्म और मृत्यु के चक्कर से मुक्त होकर आत्मा के सत्य स्वरूप का ज्ञान होना मनुष्य देह का अत्यन्त उत्तम श्रेणीय उच्च कोटि का ज्ञान है। मनुष्य देह धारण करने के बाद उसी परम ज्ञान की प्राप्ति जीवन की सबसे बडी आकांक्षा हो सकती है। इसी आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए सद्गुरू की बड़ी आवश्यकता होती है। ब्रम्ह–ज्ञान कराने वाले सद्गुरू को इसी कारण शास्त्रों ने प्रत्यक्ष ब्रम्ह की उपमा दी है।

विश्व के सभी प्राणियों में भूख, निद्रा, भय तथा मैथुन, ये चार महज स्वभावगत प्रवृत्तियाँ अवश्य देखने में आती है। पंरतु मनुष्यों को विधाता ने इन चारों प्रवृत्तियों के अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण वरदान भी प्रदान किया है। वह है बुद्धि–ज्ञान या विवेक की शक्ति। इस शक्ति का सामर्थ्य इतना प्रभावशाली तथा महान है कि इसके बल पर मानव को सम्पूर्ण विश्व में श्रेष्ठ पद प्राप्त हो चुका है। इतना ही नहीं, कभी–कभी तो स्वर्ग में वास करने वाले देवताओं को भी मानवों से ईर्ष्या होने लगती है और वे निजी ज्ञान

में वृद्धि करने के उद्देश्य से पुनः इस भूतल पर गुरू के रूप में मानव देह में जन्म लेने का प्रयत्न करते है।

मनुष्य जन्म अत्यन्त् अल्प व नाशवान है। वह संकटो तथा दुःखों से भरा हुआ है। फिर भी परमात्मा ने मानवीय प्राणियों को बुद्धि प्रदान की है। इस बुद्धि के बल पर वह विचार कर सकता है। ज्ञान प्राप्त कर सकता है। शरीर को कोई चाहे कितना भी आराम क्यों न पहुँचाये, पर, इससे तो सुख की तिल भर प्राप्ति होती नहीं। जब मनुष्य को अपने चारों और फैले हुए मायाजाल में अधिकाधिक फँसते जाने का सच्चा अनुभव होता है और भारी आघात पहुँचने पर जब उसकी मोह–निद्रा टूटती है, तब वह अमर ज्ञान, आत्म की अलौकिक अनुभूति प्राप्त करने के लिए अभ्यास करना आरम्भ करता है। साधना–पथ पर अंत में योग्य गुरू का साक्षात्कार होने पर वह मोक्ष पद तक पहुँच जाता है। श्री सद्गुरू साई महाराज सदैव अपने भक्तों से कहा करते थे–"कभी भी प्राप्त न होने वाला यह मनुष्य–जन्म विषयोपभोगों के चक्कर में व्यर्थ ही नष्ट न करो। जो बात आपकी समझ के बाहर है, वह मुझसे पूछिये। आपकी सेवा के लिए, आपका आध्यात्मिक स्तर ऊँचा करने के लिए ही मुझे परमेश्वर ने यहाँ भेजा है। केवल आपके लिए ही मेरा जीवन है। आपका उद्धार करना ही परमेश्वर के इस सेवक का कत्तर्व्य है। आपको भक्ति–मार्ग का उपदेश करते हुए मेरे हाथों से जन–सेवा का अनमोल कार्य भी होता रहता है। इस संसार में कोई अमर नहीं है। हर एक मनुष्य को एक–न–एक दिन मरना ही है। यह मृत्यु का भूत निरंतर अपनी आँखो के सामने रखो, ताकि कम–से–कम उसके भय से आपको परमात्मा का स्मरण होता रहेगा और आपको सदैव इस बात की चिंता रहेगी कि इस जन्म में कुछ–न–कुछ सत्कर्म अवश्य करना चाहिए।"

परमेश्वर प्राप्ति के अनन्त मार्ग है। परंतु सबसे सरल तथा सुलभ मार्ग कोई है तो वह है गुरू–कृपा। किसी योग्य सद्गुरू की कृपा प्राप्त होना

भी पूर्व जन्म के पुण्य का ही फल समझना चाहिए। भक्त के मन में जब भक्ति की प्रखर ज्वाला धधकती है। तब उसे उचित मार्ग–दर्शन करने के लिए अकस्मात् श्री साईनाथ जैसा सद्‌गुरू संयोगवश उपलब्ध हो जाता है। भक्त लोग इसी प्रकार केवल प्रारब्धानुसार श्री साई महाराज के निकट एकत्रित होने लगे। उनमें से कुछ भक्तों पर श्री बाबा का आरम्भ से ही स्नेह रहा। ऐसे भाग्यशाली लोगों में तात्या कोते पाटील तथा म्हालसापति का प्रमुख स्थान था। श्री साई महाराज के हृदय में इन दोनों के लिये इतना स्नेह था कि रात को ये दोनों भी नित्य श्री बाबा के साथ द्वारकामाई में ही शयन करते थे। द्वारकामाई क्रमशः पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर दिशा में अपने–अपने सिर रखकर ये तीनों नित्य सो जाते थे। बीच में इन तीनों के पैर एक–दूसरे पैरों से स्पर्श करते थे। मध्य रात्रि तक तीनों में गप–शप होती रहती थी। यदि तीनों में से किसी पर भी नींद अपना प्रभाव जमाती तो शेष दो उसे जगाने का प्रयत्न करते। स्वयं श्री बाबा को नींद कम ही आती थी और वे दूसरों को भी सोने नहीं देते थे। तात्या पाटील को हिला–हिलाकर और उनका सिर दबा–दबा कर श्री बाबा उन्हें जगाया करते थे तो दूसरी ओर वे म्हालसापति के पैर अपनी और खींच कर और स्नेह से उनकी पीठ पर थपकियाँ मारकर उन्हें जगाने के लिए विवश कर देते थे। इन तीनों आदमियों का सोने का यह विचित्र कम चौदह साल तक अबोध गति से चलता रहा। श्री बाबा के स्नेह वश तात्या पाटील और म्हालसापति दोनों ने ही अपने सांसरिक प्रपंच तथा घर–बार से लगभग संबंध विच्छेद कर लिया था। परंतु अपने पिता का स्वर्गवास होने पर अपने कंधे पर आ पड़े दायित्व को समझ कर केवल विवशतावश तात्या पाटील को द्वारकामाई छोड़ कर अंत में अपने घर जाना पड़ा। परंतु म्हालसापति अंत तक श्री साई महाराज के साथ रहे।

राहाता गाँव के निवासी चंद्रभान (मारवाडी) पर भी श्री बाबा की इसी प्रकार कृपा–दृष्टि रही। बडे सेठ की मृत्यु के पश्चात खुशालचंद नामक

उनके भतीजे को भी साई महाराज का वैसा ही स्नेह प्राप्त होता रहा। परम क्रोधावस्था में भी वे खुशालचंद का स्मरण करते थे और सदैव उनकी देखभाल करते थे। खुशालचंद भी श्री बाबा का उचित आदर–सत्कार किया करते थे। एक बार जब श्री साई महाराज राहाता गाँव गये थे तो सब ग्राम निवासियों ने बाजे–गाजे के साथ उनकी सवारी निकाली और बड़ी धूमधाम के साथ उन्हें सेठ जी के निवास स्थान पर ले गए, जहाँ उनकी विधिवत् पूजा–अर्चना की गई।

शिरडी गाँव राहाता और नीमगाँव, इन दो गाँवों के बिल्कुल मध्य में है। अपने सारे जीवन काल में श्री बाबा इन तीनों गाँवों के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं गये। उन्होंने कभी किसी वाहन का भी उपयोग नहीं किया। रेलगाड़ी का तो श्री बाबा ने दर्शन तक भी नहीं किया था। फिर भी कोपरगाँव आने–जाने वाली गाड़ियों की समय–तालिका उन्हें बराबर ज्ञात रहती थी। इस संबंध में अनेक भक्तों को विचित्र अनुभव हो चुके थे। कभी–कभी तो भक्तों को ऐसा भ्रम होता था, मानो श्री बाबा की आज्ञा से ही रेल गाड़ियों का आना–जाना होता है।

श्री साई महाराज तो परमेश्वर के अवतार ही थे, फिर वे साधारण मनुष्य की भाँति भिक्षा माँगकर क्यों निर्वाह करते थे ? भक्त के मन में ऐसा संशय होना स्वाभाविक है। हिंदु शास्त्र के अनुसार जिन व्यक्तियों ने संसार परित्याग कर सन्यास आश्रम स्वीकार किया है। जिनकी सभी इच्छाएँ तृप्त हो चुकी हैं, अथवा जिन्होंने घर बार छोड़ कर वानप्रस्थाश्रम का अवलंबन लिया है। ऐसी सभी विभूतियों को भिक्षा माँगने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। साई महाराज एक विरक्त संन्यासी थे। हजारों भक्त उनकी सेवा में तत्पर रहते थे, तथापि उन्होंने जीवन पर्यंत मधुकरी द्वारा उदर–पूर्ति की। ऐसे महान योगियों को भिक्षा देने से पुण्य लाभ होता है। गृहस्थ–धर्म का वह एक आधार है और पवित्र कर्तव्य भी।

हमारा भोजन जब तैयार होता है तो हमारे हाथो से पाँच प्रकार की हिंसा होती है। चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली और पानी का घड़ा इन पाँचों के नीचे अथवा इनके द्वारा अत्यन्त सूक्ष्म जीवों पर अनिवार्य रूप से हिंसा हो जाती है।

पकाए हुए अन्न पर इन पाँचों ही क्रियाओं के संस्कार पड़ना स्वाभाविक है। इस प्रकार दूषित हुए अन्न का शरीर और मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। श्री साई महाराज जैसे परम उत्कर्ष की भूमिका में पहुँचे हुए योगी यदि अपने मन और शरीर के शुद्धिकरण के लिए ऐसे अन्न का परित्याग कर भिक्षा—मार्ग का अवलंबन ग्रहण करे तो कोई आश्चर्य नही; क्योंकि भिक्षा द्वारा प्राप्त भोजन मे कोई दोष नहीं होता।

श्री साई महाराज को भिक्षा देने या पूजा के उपरान्त नैवेद्य अर्पण करने के संबधं में भक्त के मन में किसी प्रकार का विकल्प नहीं आना चाहिए, क्योंकि श्री बाबा भिक्षा या नैवेद्य ग्रहण करने की पूरी योग्यता रखते थे। यदि कोई भक्त अपने नित्यनियम के अनुसार किसी दिन पूजा के समय नैवेद्य चढ़ाना भूल जाता तो श्री साई महाराज स्वयं उसे स्मरण दिलाते थे और अपना अधिकार जताकर प्रसाद ग्रहण करते थे। इस संबंध में श्री साई महाराज के एक भक्त श्री बाबा साहेब तर्खड के प्रत्यक्ष अनुभव से भक्तों का पूर्ण समाधान हो जायेगा।

श्री रामचंद्र आत्माराम तर्खड बम्बई के एक उपनगर बांद्रा में रहते थे और वे "प्रार्थना समाजी" थे। उनकी पत्नी और पुत्र श्री साईनाथ महाराज के परम भक्तों में से थे। श्री बाबा में उनका दृढ विश्वास था। प्रतिदिन नियमपूर्व श्री साई महाराज की पूजा कर उन्हें नैवेद्य चढ़ाये बिना वे दोनों

---

* गृहस्थ के लिए पाँच पापों से निवृत्ति के लिए पाँच यज्ञ बताये है। ब्रम्ह—यज्ञ, देव—यज्ञ, पितृ—यज्ञ, भूत—यज्ञ और नृ—यज्ञ। पर यह गृहस्थाश्रम में ही संभव है। सन्यासाश्रम में नही।

अन्न ग्रहण नहीं करते थे। एक बार तर्खड साहब का पुत्र अपनी माता के साथ श्री साई महाराज के दर्शनार्थ शिरडी गया। प्रस्थान करने से पूर्व उन्होंने घर में श्री साईनाथ महाराज की पूजा–अर्चना करने का भार अपने पिताजी को सौंप दिया। श्री बाबासाहेब पूजा करने के आदि नहीं थे; परंतु अपने पुत्र का भाव जानकर उन्होंने नित्य–नियमापूर्वक पूजा करना आरम्भ किया। एक दिन अधिक कार्य में व्यस्त होने के कारण श्री साईनाथ को नैवेद्य चढ़ाए बिना वे दफ्तर चले गए। शाम को घर लौटने पर उन्होंने अपनी भूल के संबंध में पुत्र को विस्तारपूर्वक पत्र लिखकर शिरडी भेज दिया। इधर ठीक उसी दिन शिरडी में तर्खड साहब के पुत्र अपनी माता के साथ जब श्री साई महाराज की पूजा करने के लिए द्वारकामाई में पहुँचे तो उनकी ओर मंद मुस्कान से देखते हुए श्री बाबा बोल उठे,"माँ, आज मुझे कुछ खाने को मिलेगा, इस आशा से बांद्रा पहुँचा; परंतु देखा तो किवाड़ बंद थे। मै वैसे ही अंदर घुस गया, पर आज तो भाऊ ने मुझे निराश किया। मुझे प्रसाद नहीं मिला और मै वैसे ही लौट आया।"

तर्खड साहब की पत्नी श्री बाबा के मुख से निकले हुए इन उद्‌गारों का कोई भी अर्थ नहीं समझ सकी पर उनके पुत्र ने सारी परिस्थिति का ठीक–ठीक अनुमान लगा लिया। उसे विश्वास हो गया कि आज उसके पिताजी से अवश्य कोई भूल हो गई होगी और उसने तुरंत ही श्री बाबा से क्षमा याचना की। श्री बाबा ने भी उदार अंतःकरण से उसे क्षमा कर दिया और उससे वहीं विधिपूर्वक पूजा स्वीकार की। तर्खड साहब के पुत्र ने इस घटना का पूर्ण विवरण पत्र द्वारा अपने पिता को भेज दिया और दो दिनों के पश्चात श्री बाबासाहब का पत्र भी शिरडी आ पहुँचा। क्या इस घटना को केवल संयोग की बात कहने का कोई साहस कर सकता है ? सत्य तो यह है कि साई महाराज अंतर्ज्ञानी और उत्तम भूमिका तक पहुँचे हुए सद्‌गुरू थे।

भगवान श्री रामचंद्रजी ने शबरी के खाए हुए जूठे बेर प्रेम से स्वीकार

किये थे। भक्तों का भाव जानकर श्री साई महाराज भी प्रसाद–स्वरूप भेजी हुई छोटी–सी भेंट भी अत्यन्त प्रेम से स्वीकार करते थे। तर्खड साहब की पत्नी ने भी एक बार श्री बाबा को श्री पुरंदरे की पत्नी के साथ दो बैंगन भेजे और उससे एक बैंगन का भुर्ता और दूसरे की कचरियाँ बना कर श्री बाबा के पास ले जाने की विनती की। शिरडी पहुँचने पर श्री पुरंदरे की पत्नी का बैंगन का भुर्ता बनाकर भोजन के समय श्री बाबा के पास ले गई। श्री बाबा ने बड़े प्रेम से माँगकर भुर्ता स्वीकार किया और पूछा, "हमारी बैंगन की कचरियाँ कहाँ है ?" श्री बाबा की एक अन्य सेविका राधाकृष्णमाई को चिंता हुई। बैंगन का मौसम न होने से बाजार में बैंगन मिलना असंभव था। अंत में वह श्री पुरंदरे की पत्नी के पास पहूँची और पूछताछ करने पर श्री पुरंदरे की पत्नी ने स्वीकार किया कि बैगन का भुर्ता उसने ही बनाया था; परंतु बैगन की कचरियाँ वह केवल आलस्य के कारण नही बना पाई थी। उसने तुरंत ही तर्खड साहब की पत्नी द्वारा भेजे गए दूसरे बैंगन की कचरियाँ तल कर श्री बाबा के पास भेज दी।

एक अन्य अवसर पर गोविंदा नामक एक लड़का जब शिरडी जा रहा था तो तर्खड साहब की पत्नी ने जल्दी में नैवेद्य स्वरूप अर्पित किए हुए पेढ़ों में से एक पेढ़ा उठाकर गोविंदा के हाथ पर रखा और उससे विनती की कि वह पेड़ा वह याद से साई महाराज को दे दे। शिरडी पहुँच कर जब गोविंदा श्री बाबा के दर्शनार्थ द्वारकामाई में पहुँचा तो वह पेढ़े की बात बिल्कुल भूल गया और जड़वत् बैठा रहा। श्री बाबा पर्याप्त समय तक मौन रहे और जब देखा कि गोविंदा कोई वस्तु अपने साथ नहीं लाया है तो उन्होंने उससे स्पष्ट पूछा,"क्यों भाई, माई ने मुझे देने के लिए जो मिठाई दी थी, वह कहाँ है ? सुनते ही गोविंदा दौड़कर अपने निवासस्थान पर पहुँचा और श्रीमती तर्खड द्वारा भेजा गया पेढ़ा लाकर श्री बाबा के हाथ पर रख दिया। श्री बाबा ने वह बासी पेढ़ा एक ही ग्रास में अत्यन्त प्रेम से ग्रहण कर लिया। परमात्मा

प्रेम का भूखा होता है। श्री साई महाराज ने पेड़े जैसी एक साधारण भेट आग्रहपूर्व माँग कर यह सिद्ध कर दिया कि अपने भक्त के लिए उनके हृदय में कितनी अधिक ममता रहती है।

श्री बाबा ने श्रीमती तर्खड को ऐसे अनेक दृष्टान्त देकर उन्हे सदुपदेश किया। एक बार जब वह शिरडी में वास कर रही थी, तो भोजन के समय एक कुत्ता उनके समीप आया और जोर–जोर से भौंकने लगा। श्रीमती तर्खड भोजन छोडकर उठी और रोटी का एक टुकडा उन्होंने कुत्ते को खिलाया। दोपहर के समय जब श्रीमती तर्खड श्री बाबा के दर्शनों के लिए द्वारकामाई में पहुँची तो मुस्कुराते हुए श्री साई महाराज बोले,"माँ, जब मैं भूख से व्याकुल हो उठा था तो तुम्हारे दिये हुए उस रोटी के टुकडे से मेरा पेट भर गया। मेरी अर्न्तात्मा प्रसन्न हो उठी। अपना आचरण सदैव ऐसा ही रखो। अंधे, लूले, भूख से व्याकुल प्राणियों को पहले अन्न दिये बिना स्वयं कभी भोजन न करो। मेरे इन शब्दों पर विश्वास रखते हुए यदि अपना आचरण निर्धारित करोगी तो तुम्हें अवश्य ही सद्‌गति प्राप्त होगी।"

श्री साई महाराज के यह उद्‌गार सुनकर श्रीमती तर्खड असंमजस में पड़ गई। बड़ा साहस बटोर कर उन्होंने डरते हुए श्री बाबा से कहा, "आज! प्रातःकाल तो मैने आपके कुछ भी नैवेद्य अर्पण नहीं किया था।"

तब श्री बाबा ने प्रत्युत्तर दिया, "आज प्रातः भोजन करते समय क्या तुमने एक कुत्ते को रोटी नहीं दी ? मैं ही कुत्ते के रूप में वहाँ आया था। प्रत्येक प्राणी में परमेश्वर का अंश रहता है, इस तत्व का भली–भाँति स्मरण रखते हुए प्राणिमात्र के लिए भूतदया दिखाने का सदैव प्रयत्न करो।" श्री साई महाराज का यह उत्तर सुनकर श्रीमती तर्खड हतप्रभ रह गई। समय–समय पर श्री बाबा ने श्रीमती तर्खड की भाँति ही अन्य भक्तों को भी ऐसे उपदेश दिए थे। अपनी श्रेष्ठता का किंचित भी प्रदर्शन न करते हुए अत्यन्त निराभिमान हो श्री साई महाराज कहा करते थे, "मैं तो गुलामों का

भी गुलाम हूँ। मैं सभी लोगो का अत्यन्त ऋणी हूँ। जब आप मेरे पास आते है, तो आपको जितनी प्रसन्नता होती है, उससे कई गुना अधिक प्रसन्नता तो मुझे अनुभव होती है। आप धनवान उपाधिकारी, विद्धान, बडे ऊँचे कुलों में उत्पन्न हुए सच्चे पुण्यात्मा हैं। आपके सम्मुख तो मैं एक अत्यन्त साधारण भिखारी हूँ, छोटा–सा जीव हूँ। मेरे दर्शनों के लिए यहाँ आकर आप लोग ही मुझ पर अनंत उपकार कर रहे है। इन उपकारों का ऋण मैं कभी भी चुका नही सकता।''

श्री साई महाराज के ये उद्‌गार उनकी नम्रता और विशाल हृदयता के द्योतक है। श्री साई महाराज जैसी योग्यता के सत्पुरूष बिरले ही होते है।

श्री साई का सभी व्यवहार एक साधारण मनुष्य की भाँति होता था। उनके हदृय में किसी वस्तु की वासना नहीं होती थी। भक्तों की दी हुई कोई भी वस्तु वे प्रसन्नता से खाते थे; परंतु किसी भी वस्तु की रूचि का उन्हें ज्ञान नहीं होता था। प्रत्यक्षतः तो वे आँखे खुली रखते हुए किसी भी सुंदर वस्तु की ओर निहारते प्रतीत होते थे। पंरतु उसी क्षण उनकी अंतदृष्टि किसी दूसरे ही अदृश्य स्थान पर एकाग्र, स्थिर होती थी। क्रोध, प्रेम तथा अनुराग–इन सभी मनोंभावों को योग–बल से अपने अधीन रखकर वे बजरंगबली के सदृश्य सदैव स्थितप्रज्ञ अवस्था में रहते थे। श्री साई महाराज कभी–कभी अत्यन्त क्रुद्ध प्रतीत होते थे; परंतु प्रसंग विशेष पर वे गौ की भाँति इतने नम्र तथा मृदु बनते थे कि देखनेवाले को यह भ्रम होता था कि जिन श्री साई महाराज से वह परिचित हैं, वह यही है या कोई अन्य।

नानावल्ली नामक एक विचित्र और चंचल स्वभाव का मनुष्य भी साई महाराज की सेवा–चाकरी करने के उद्‌देश्य से शिरडी में रहता था। एक बार पागलपन की लहर में नानावल्ली ने श्री बाबा को अपने आसन से खडे होने की आज्ञा दी। श्री साई महाराज चुपके से उठ गये और नानावल्ली को अपने पवित्र आसन पर बैठने की पूर्ण स्वतंत्रता दे दी। थोड़ी देर बाद जब

नानावल्ली का पागलपन समाप्त हुआ तो वह स्वयं ही श्री साई बाबा के आसन से उठ खड़ा हुआ और उनके चरणों में सिर झुकाकर उनकी शरण ली। यद्यपि नानावल्ली ने द्वारकामाई में सबके समक्ष श्री बाबा को उत्तेजित करने वाला अपमानजनक कृत्य किया, फिर भी बाबा के मुख से एक भी संतापयुक्त शब्द नहीं निकला। इस नानावल्ली ने श्री साई महाराज को कई बार दुःख पहुँचाया था। वह कभी–कभी एक अत्यन्त कर्कशा स्त्री की भाँति श्री बाबा को सताता था। परंतु श्री बाबा तो सारा कष्ट और उद्वेग सहन करके असाधारण सहिष्णुता का परिचय देते थे। वैसे नानावल्ली का भी श्री बाबा से निरपेक्ष प्रेम था। श्री साई महाराज की समाधि के पश्चात् ठीक तेरहवें दिन नानावल्ली ने भी अपनी जीवन–यात्रा समाप्त की और श्री बाबा के पीछे–पीछे वह भी चला गया।

श्री साई महाराज के दैनिक कार्यक्रम की अत्यन्त साधारण बात से भी उनकी प्रबल बुद्धिमता तथा कौशल का पूर्ण परिचय मिलता था। उनका प्रत्येक आचरण भक्तों के हित के लिए होता था। पर अज्ञानी मनुष्य उनके आचरण का अर्थ नही समझ सकते थे। शीव के श्री नानासाहेब पिटकर ने भी अपना एक छोटा–सा अनुभव बतलाया है। जब वे अपने मित्रों सहित शिरडी में श्री साई महाराज के दर्शनों के लिए पहुँचे तो उन्हें देखकर श्री बाबा अत्यन्त क्रोधित हुए और उनसे तुरन्त लौट जाने के लिए कहने लगे। अपने हाथ को बडे आवेश से घुमाकर वे गरजते रहे, "चले जाओ, अभी इसी क्षण चले जाओ।" नानासाहेब असमंजस में पड़ गए और श्री बाबा के उस अप्रत्याशित आचरण का कोई अर्थ उनकी समझ में नहीं आया। साहस बाँध कर वे वहीं डटकर बैठे रहे। फिर दीक्षितसाहब ने उन्हें श्री बाबा के उस आवेशपूर्ण आदेश का अर्थ समझाया। उस समय गाँव के आस–पास प्लेग का प्रकोप था और इस बात का भय था कि कही शिरडी में भी रोग न फैल जाए। इसीलिये वे बाहर गाँव से अनजाने आये हुए भक्तों को उस भयानक

महामारी से बचाने के लिए शिरडी से तुरन्त लौट जाने का परामर्श देते थे।

=========

चौदहवाँ अध्याय
पंचमहाभूतों पर अधिकार

श्री साई महाराज ने कभी किसी को कोई आसन, प्राणायाम या मंत्र–जाप करने का उपदेश नहीं दिया। वे भक्तों को जो उपदेश दिया करते थे, वह अत्यन्त सीधा–सादा तथा आडम्बरहीन होता था, और भक्त लोग सरलता से उसे आचरण में ला सकते थे। श्री साई सदैव आग्रहपूर्वक अपने भक्तों से कहा करते थे–"अपने अहंकार को त्याग दो। अपनी इच्छानुसार किसी भी देवी–देवता की आराधना करो और मुझमें अटल विश्वास रखो। यदि आप यह सीधा–सादा और सुलभ मार्ग प्रत्यक्ष अपने आचरण में ला सकेंगे तो समझ लीजिये, आपका कार्य पूर्णतः सफल हो गया। हर एक व्यक्ति को सुख–दुःख भोगना ही है; किन्तु दुःख की तीव्रता कम करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सदैव अपने दैनिक व्यापार करने के साथ–साथ अल्पकाल के लिए भी क्यों न हो, परमात्मा का नाम–स्मरण करना चाहिये। यज्ञ–अग्नि को आहुति देना, वेद–मंत्रों का जयघोष आदि उपासनाँए और धार्मिक विधि–विधान केवल कर्मठ–ब्राम्हणों के लिए ही है। अन्य लोग यदि इन कृत्यों से दूर न रहे तो यह उनका पागलपन होगा।"

मनुष्य का मन इतना चंचल होता है कि एक क्षण के लिए वह स्थिर होकर नहीं रह सकता। नींद में भी मनुष्य का मन अनेक उलझनों में फँसा रहता है। ऐसे चंचल मन की निर्द्वन्द्व प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने की शिक्षा

केवल सद्गुरू कृपा से ही प्राप्त होती है। श्री साई महाराज भक्त से अपनी प्रथम भेंट के समय ही यह कार्य इतनी सरलता से पूरा करते थे कि स्वयं भक्त को भी इसकी कोई कल्पना नहीं होती थी। भक्त के मन से भय का अस्तित्व समूल नष्ट कर उसे अध्यात्मिक ज्ञान की ऊँची भूमिका में ले जाने का कठिन कार्य श्री साई महाराज बड़ी ही सरलता से संपादित करते थे। श्री साई महाराज ने संसार त्यागकर संन्यास–दीक्षा लेने का आग्रह कभी नहीं किया। इसके विपरीत वे आग्रहपूर्वक सदैव यही कहते थे कि हरेक व्यक्ति को चाहिए कि वह प्रपंच मे रहकर भी अपने नित्य व्यवहार को सदैव की भाँति सँभालते हुए अपनी मानसिक उन्नति करने का प्रयत्न करें।

ठाट–बाट से रहने वाले लोगों से श्री साई महाराज घृणा करते थे। सादे रहन–सहन की वे सदा प्रशंसा करते थे। वे स्वयं एक बोरी के टुकड़े पर बैठा करते थे और सोने के लिए टाट के टुकड़े का उपयोग करते थे। अंत समय तक श्री साई महाराज एक पुरानी ईंट का गर्दन के नीचे तकिये की तरह उपयोग करते रहे थे। वे अपने भक्तों का उचित सम्मान करते थे और हरेक भक्त की इच्छानुसार ही सेवा–चाकरी करने का अवसर देते थे। कुछ भक्त पंखे से हवा करते थे। कुछ भक्त मिलकर भजन और गीत गाते थे। पूजा करते समय कुछ भक्त उनके हाथ–पैर धोते थे तो कुछ भक्त उन्हें गंध–पुष्प, चंदन, इत्र आदि सुगन्धित वस्त्र अर्पित करते थे। पूना–बम्बई की ओर के भक्त अनेक प्रकार के उत्तम मिष्ठान और पकवान प्रसाद के लिए ले आते थे। कुछ अन्य भक्त, जिन्हें सदैव श्री बाबा का सान्निध्य प्राप्त रहता था। वे उन्हें चिलम, पान आदि वस्तुएँ अर्पण करते थे कहने का तात्पर्य यह है कि किसी भी भक्त को श्री बाबा की कोई भी वस्तु अर्पित करने के पूर्ण स्वतंत्रता थी।

एक बार तात्यासाहेब नूलकर के साथ आये हुए डॉ.पंडित नामक सज्जन ने श्री बाबा के एक भक्त, श्री दादाभटट् जी की पूजा की सामग्री में

से चंदन निकाल कर हाथ में लिया और श्री बाबा के भव्य ललाट पर तीन समांन्तर रेखाएँ खींचकर एक त्रिपुण्ड बनाया। इस पर श्री बाबा को रूष्ट न देखकर सब भक्त लोग आश्चर्य में पड़ गये, क्योंकि श्री साई महाराज किसी को भी अपने मस्तक पर चंदन का टीका लगाने की अनुमति नहीं देते थे। संध्या के समय दादाभटट् जी ने सहज़स्वभाव से श्री बाबा से प्रश्न किया– "बाबा, आपने डॉ. पंडित को मस्तक पर चंदन का टीका लगाने की अनुमति कैसे दी ?

श्री बाबा ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया–"अरे, उस डॉक्टर ने मुझे अपना गुरू मान लिया। धोपेकर के रघुनाथ महाराज, जो काका पुराणिक के नाम से विख्यात है, इसके गुरू है और यह डॉक्टर इसी प्रकार उन्हें चंदन का टीका लगाया करता है।" कुछ समय पश्चात् दादाभटट्जी उठे और डॉक्टर पंडित से मिलकर उनसे उनके गुरू के विषय में पूछा। डॉक्टर साहब ने अपने गुरू का नाम वही बतलाया, जो श्री बाबा ने बतलाया था और चंदन लगाने की उनकी पद्धति भी वही थी। जो श्री साई महाराज के मस्तक पर चन्दन लगाते समय उन्होनें अपनाई थी। श्री बाबा का दिव्य एवं अलौलिक सामर्थ्य देख दादाभटट्जी तो विस्मय–विमूढ़ रह गए।

परंतु इस प्रकार अपनी इच्छानुसार आचरण करने की स्वतंत्रता हर एक भक्त को सदैव नहीं मिलती थी। कुछ अवसरों पर तो भक्तों का अनुभव इसके विपरीत था। श्री बाबा एकाएक क्रुद्ध हो जाया करते थे, अपशब्दों की बौछार करते थे, पूजा की सामग्री धड़ा–धड़ इधर–उधर फेंक देते थे और एक भूत–बाधा से पीड़ित मनुष्य की भाँति भक्तों को मारने के लिए भी दौड़ पड़ते थे। ऐसे समय उनका सारा शरीर भयानक रीति से काँप उठता था और क्योंकि दो–तीन मिनिट के बाद ही वे पुनः पूर्णतः स्वस्थ चित्त हो जाते थे और अत्यंत शान्त, स्नेहयुक्त भाव से भक्त को अपने निकट बुलाकर कहते थे–"मैं क्रुद्ध हुआ था क्या ? देखो, तुम बुरा न मानना। माँ भी अपने बच्चे

से कभी–कभी रूष्ट होती है। समुद्र कैसा भी रूद्र रूप धारण करें, वह नदी को अपने से मिलने से नहीं रोकता। मेरा क्रोध, संताप, सब कुछ भक्त के शुभ, कल्याण के लिए ही होता है।

शिरडी में आने वाले सभी लोगों को श्री साई महाराज का दर्शन करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। पर उसमें से सभी लोगों को श्री बाबा का शिष्य कहलाने का अधिकार प्राप्त न था। वहाँ आये हुए हर एक व्यक्ति का हृदय श्री बाबा एक रत्नपारखी की भाँति अनेक प्रकार से परख लिया करते थे और उनकी इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही कोई मनुष्य उनके निकट आ सकता था।

एक बार कल्याण से हाजी सिद्दकी फालके नामक एक वृद्ध मुसलमान मक्का–मदीने की यात्रा कर श्री बाबा के दर्शनार्थ शिरडी आया। कुरान शरीफ का पाठ करते हुए वह आठ–दस महिने शिरडी रहा। परंतु श्री बाबा ने उसे अपने पास तक नहीं भटकने दिया। एक दिन भी बाबा ने उसे द्वारकामाई मे पैर नहीं रखने दिया। श्री साई महाराज की इस अवकृपा का अनुभव कर हाजी दुःखी हुआ। अन्य भक्तों के समझाने–बुझाने पर वह दृढ़ता से वैसे ही बाहर बैठा रहा। शंकर को प्रसन्न करने के लिए जैसे पहले नंदी की आराधना करनी पड़ती है। वैसे ही हाजी ने श्री बाबा के परमप्रिय भक्त शामा (माधवराव) की सहायता लेने का प्रयत्न किया और वह सफल भी हुआ। शामा ने श्री बाबा से प्रश्न किया, ''बाबा, आपका दर्शन करने के लिए किसी पर कोई बंधन नहीं होता। फिर आप उस गरीब वृद्ध हाजी को अपने निकट क्यों नही आने देते ?

इस पर श्री बाबा ने उत्तर दिया–''शाम, अभी तो तुम बच्चे हो। फकीर जब आज्ञा नहीं देता तो मै क्या करूँ ? उसकी आज्ञा के बिना कोई भी यहाँ आने का साहस नहीं कर सकता। अब तुम विनती कर रहे हो तो मैं प्रयत्न कर देखता हूँ।

इसके पश्चात् "तुम मेरे साथ गहरी खाई में आ सकते हो क्या, मुझे चालीस हजार रूपये दक्षिणा के रूप में देने के लिए तैयार हो ?" आदि अनेक प्रकार के विचित्र प्रश्न पूछकर श्री बाबा ने हाजी की भली–भाँति परीक्षा ली और अंत में उसे द्वारकामाई में आने की अनुमति दे दी। आगे उस हाजी पर श्री बाबा की पूर्ण कृपा रही। श्री बाबा ने समय–समय पर धन से भी उसकी सहायता की। श्री साई अपने पास आये हुए भक्त की पूर्ण परीक्षा लेकर ही उसे आश्रय देते थे और तब एक बार वे किसी भक्त अपनाते अथवा आसरा देते थे तो अंत तक वे उस पर मातृ–प्रेम की वर्षा करते थे।

गाँव के गँवार ओर छल–प्रपंच से विहीन भोले लोगों से उन्हें बहुत प्यार था। जब गाँव के निवासियों पर कोई समष्टि संकट आ पड़ता था तो वे श्री बाबा का सहारा लेते थे। वर्षा के दिनों में एक बार शिरडी मे अचानक घनघोर घटा छा गई। मेघ गरजने लगे। चारों दिशाओं में अंधकार छा गया। भयानक वर्षा होने लगी। इस भय से कि सारा शिरडी गाँव जलमग्न हो जायेगा, पशु–पक्षी और झोपड़ियाँ में रहने वाले गरीब किसान बड़ी आशा के साथ द्वारकामाई की ओर दौड़े। इतनी छोटी द्वारकामाई सभी लोगों को आश्रय कैसे दे सकती थी ? किन्तु आकाश को सीने का अलौलिक सामर्थ्य भी साई महाराज में विद्यमान था। उनकी भुजाओं में पंचमहाभूतों पर भी निजी अधिकार जमाने का सामर्थ्य था। इसलिए द्वारकामाई से उठ कर वे बाहर आए और आकाश की ओर देखते हुए मेघ के समान ही गम्भीर आवाज में गरजे, "ठहरो अपना यह नग्न–नृत्य बंद करो और शान्त हो जाओ।" केवल दो ही मिनिट में प्रलयकारी वर्षा बंद हो गई और सर्वत्र शांति का साम्राज्य छा गया। श्री साई महाराज ने प्रकृति पर विजय प्राप्त की।

एक बार सब भक्त लोग द्वारकामाई में बैठे आनंदपूर्वक वार्तालाप कर रहे थे कि एकाएक धूनी में ज्वालाएँ भड़क उठी। अग्नि की भयानक लपटें शनैःशनैः ऊँची उठकर द्वारकामाई के छप्पर तक पहुँच चुकी थी। सारी लकडियाँ जल उठेंगी और द्वारकामाई भस्म हो जायेगी, इस आशंका से वहाँ

एकत्रित भक्त लोगों में हाहाकार मच गया। श्री साई महाराज समाधि से जागृतावस्था में आए और सचेत होते ही उन्होंने भी भयानक कांड देख अपने हाथ लकड़ी का डंडा जोर से स्तम्भपर दे मारा और चिल्लाये, "खबरदार, नीचे उतरो। शांत हो जाओ।" मानो वे कुद्ध हुए प्रत्यक्ष अग्निनारायण को ही लक्ष्य कर कह रहे हों। आश्चर्य की बात यह हुई कि जो अग्नि अकस्मात् भड़क उठी थी, उसकी भयानक ज्वालाएँ धीरे–धीरे ठंडी होती गई और थोड़े ही समय बाद बिल्कुल शांत हो गई।

साधु–संतो का कार्य विविध प्रकार होता है। वे अपने पराये की भावना से दूर रहते है। पवित्र, शुद्ध अंतःकरण के लोग और पापी, स्वार्थी, दुष्ट प्रवृत्ति के लोग उनके लिए एक समान होते है। अगस्त्य मुनिके सदृश इस भवसागर के समस्त पापों को सोख लेने के लिए ही उनका अवतार होता है। जैसे सूर्य के तेज से अंधकार दूर होता है। वैसे ही साधु–संतो भक्तों के पाप समूल नष्ट करे देते है। श्री साई महाराज का अपने भक्तों पर इसी प्रकार सदैव वरद् हस्त रहता था। जब कभी श्री बाबा प्रसन्न मुद्रा में होते थे, तब अपने भक्तों को अत्यंत संक्षिप्त, किंतु सरल सारगर्भित भाषा में गूढ़ तत्व ज्ञान की बात सुगमता से समझा देते थे। एक बार श्री बाबा बोल उठे–" मै फकीर बना फिरता हूँ। मेरा घर–बार नहीं। मेरे बाल–बच्चे नहीं है। संसार की सभी वस्तुओं का त्याग कर मैने यह फकीरी वेश लिया है। फिर भी एक रोग की भाँति यह माया मुझसे चिपकी बैठी है। मैं उसे झिड़काने का बार–बार प्रयत्न करता हूँ। श्रीकृष्ण की इस माया ने ब्रम्हदेव को भी नही छोडा, फिर आप जैसे संसार मे उलझे हुए भक्तों को अपने चारों और फैले हुए मायाजाल को तोड़ने के लिए कितना परिश्रम करना पड़ता होगा, इसकी मुझे यथार्थ कल्पना है। मैं आपको दोष नही दे रहा हूँ। केवल उचित मार्ग दिखा रहा हूँ। उस दयाधन परमात्मा की भक्ति करो। भक्ति मार्ग ही अत्यन्त सुलभ मार्ग है, इसी मार्ग द्वारा सबसे निचले स्तर पर स्थित मनुष्य की भी धीरे–धीरे आध्यात्मिक

उन्नति होती है। जो भक्त लोग पूर्व जन्म के पुण्यों के फलस्वरूप पहले ही, आध्यात्मिक दृष्टिकोण से जरा ऊपर की सीढ़ी पर चढ़े हुए दिखाई देते है, वे यदि केवल 'साई–साई' नाम स्मरण ही करें तो मै स्वयं अपने बल पर उन्हें सहज ही सात समुद्र पार और विश्व के ऊँ कार स्वरूप की ओर ले जाऊँगा। इस सम्बन्ध में मन में पूर्ण विश्वास रखो। मुझे आपकी पूजा की आवश्यकता नहीं। आपके अंतःकरण में पवित्र एवं दृढ़ भक्ति उत्पन्न होते ही मैं आपका उद्धार करूँगा।

इस संसार में पूर्णतः सुखी कोई नहीं है। नांदेड शहर में रहने वाले एक प्रसिद्ध लखपति रतनजी शापुरी वाडिया कि परिस्थिति कुछ विलक्षण थी। अपार धन–सम्पति और ऐशोआराम होने के बावजूद रतनजी सुखी नहीं थे। संतति का अभाव होने के कारण वे सदा दुःखी ओर उदास रहते थे। दासगणू जी के वे भक्त थे। उनके कहने पर श्री साई महाराज के आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए रतनजी शिरडी पहुँचे। रतन जी के लाये हुए फल और मेवा मिष्ठान स्वीकार कर श्री बाबा ने उनसे केवल पाँच रूपये दक्षिणा माँगी। जब रतनजी ने पाँच रूपये देने के लिए हाथ बढ़ाया तो श्री बाबा बोलें–"अरे, इनमें से तीन रूपये चौदह आने मुझे पहले ही मिल चुके है। बाकी पैसे जो बचते है, बस वही दक्षिणा में दे दो। तेरा कार्य सफल हुआ। परमात्मा तेरी मनोकामना पूरी करेगा।"

रतनजी प्रसन्नता से अपने गाँव लौटे और दासगणू जी से उन्होंने तीन रूपये चौदह आने से सम्बन्ध में श्री बाबा के उद्‌गारों का रहस्य पूछा। दासगणू जी भी असमंजस मे पड़ गये। श्री बाबा के दर्शनों के लिए पहले कभी भी न आये हुए रतनजी से श्री बाबा ने तीन रूपये चौदह आने कैसे प्राप्त किये ? इस प्रश्न ने सभी लोगों को आश्चर्य में डाल दिया। अन्त में दासगणूजी ने पूछा, "क्या आपके यहाँ कभी कोई साधु–संत आया था ?" तब ज्ञात हुआ कि शिरडी जाने से पूर्व मौलवी साहब नामक एक फकीर

रतनजी से मिलने आये थे। उन मौलिवीसाहब को भोजन के लिए जो सामग्री का सारा प्रबन्ध उन्होंने अपने मुनीम को सौप दिया था। भोजन के लिए जो सामग्री मुनीम खरीद कर लाया था, उसकी सूची भली–भाँति देखने के पश्चात् दासगणू जी को इस बात का महान आश्चर्य हुआ कि मौलीवीसाहब को जो भोजन कराया गया था, उसका खर्च ठीक–ठीक तीन रूपये चौदह आने ही हुआ था।

श्री साई महाराज अपने भक्तों का पूरा ध्यान रखते थे। उनका सभी लोगों के हृदय मे वास रहता था। श्री बाबा के भक्त जानते थे कि श्री साई महाराज का हरेक स्थान पर अस्तित्व है। इस घटना से तो यही निष्कर्ष निकलता है कि मौलिवीसाहब को कराया गया भोजन श्री साई महाराज को प्राप्त हुआ। श्री बाबा की कृपा से रतनजी को पुत्र लाभ हुआ। रतनजी की प्रसन्नता का पारावार न रहा और उन्होंने बहुत सारा धन दान–धर्म में व्यय कर अपना आनंद व्यक्त किया।

श्री साई को यदि कोई बात बुरी या अनुचित प्रतीत होती तो वे अपने अत्यन्त प्रिय और निकट के भक्तों की भी परवाह न कर उसे भी आड़े हाथ लेते थे। दासगणूजी से श्री बाबा को विशेष स्नेह था। एक बार कीर्तन करने के लिए जाते समय गुलबन्दी, शुभ्र अँगरखा, सिर पर लाल पगड़ी जरी बूटी से कढ़ा उत्तरीय आदि से सुसज्जित हो दासगणूजी श्री बाबा के दर्शनार्थ द्वारकामाई में उपस्थित हुए। उन्हें देख श्री साई व्यंग करते हुए बोल पड़े– ''क्यों, दूल्हे की भाँति सजकर कहाँ जा रहे हो ?''दासगणूजी के नम्रतापूर्वक यह कहने पर कि वे कीर्तन करने जा रहे है, श्री बाबा गम्भीरता से बोले–''कीर्तन करते समय, ईश्वर का गुणवान करते समय ऐसे ठाट–बाट की क्या आवश्यकता है ?हमारी पुरातन कीर्तन–प्रणाली पवित्र और परोपकारी है। कीर्तनियों का हदृय जब परमेश्वर चिंतन से सदैव संतुष्ट और ओत–प्रोत होगा, तब ही तो वह दूसरों के मन पर उचित संस्कार डाल सकता है। अपने

शरीर पर जो ये वस्त्रालय है, उन्हें फेंक दो और बिल्कुल सरल, शुद्ध तथा पवित्र मन से कीर्तन करो।''

श्री साई महाराज के इस परामर्श से दासगणूजी पूर्णतया सहमत हुए। कीमती वस्त्रालंकार, ठाट–बाट आदि सब कुछ अनावश्यक है। यह उन्होंने अनुभव किया। तीनों लोकों में भ्रमण करते हुए अपनी वाणी की झंकार से कर्ण–प्रिय कीर्तन कर भक्तों के लिए परमेश्वर की लीलाओं का निरंतर गुणगान करने वाले नारद मुनि की प्रतिमा उनकी दृष्टि के सामन आ खडी हुई। दासगणूजी ने इसी दिन से केवल धोती तथा शरीर पर अँगरखा पहने सादे वेश में ही कीर्तन करने का दृढ संकल्प लिया।

दासगणूजी की कीर्तन करने की पद्धति इतनी हृदयकारी तथा प्रभावोत्पादक होती थी कि लोग आनंद–विभोर हो झूमने लगते थे। किसी को उनका निरूपण पसन्द था तो कोई उनकी कथाशैली और गीतों पर मोहित होता था। जब वे श्री साई महाराज के आख्यान सुनाते और उनका कीर्तन करते ,तो और भी रंग जमता था। ठाणा के सुप्रसिद्ध कौपीनेश्वर के मंदिर में जब दासगणूजी का श्री साई महाराज की लीलाओं पर कीर्तन हो रहा था तो चोलकर नामक एक सुशिक्षित, किंतु निर्धन भक्त आत्मानंद में लीन हो गया। उसने वही मन में श्री साईनाथ को देवता–स्वरूप मानते हुए मनौती की कि 'यदि मैं कचहरी की आगामी परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया और मेरे वेतन में वृद्धि हुई तो मैं श्री बाबा के दर्शनार्थ शिरडी जाऊँगा और आनंद प्रीत्यर्थ सभी उपस्थित लोगों में गन्ने बाटूँगा।''

संयोगवश कहिये या श्री साई महाराज की कृपा कहिये, चोलकर परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ और कुछ ही समय पश्चात् उसकी पदोन्नति भी हो गई। अब अपने संकल्प के अनुसार उसके लिए शिरडी जाना आवश्यक हो गया। पर चोलकर का परिवार बहुत बड़ा था। इसलिए शिरडी जाने के लिए वह रूपया इकटठ्ा करने में बड़ी कठिनाई अनुभव करने लगा। रोज के खर्चे

में कमी करने के लिए उसने चाय में शक्कर डालना बंद कर दिया और फीकी चाय पीनी शुरू की। इस प्रकार कुछ रूपये बचाकर वह शिरडी पहुँचा और अनन्य भाव से श्री साई महाराज के चरणों पर मस्तक रखकर उसने अपनी शक्ति अनुसार उपस्थित लोगों में गन्ने बाँट कर अपना संकल्प पूरा किया। चौलकर बापूसाहेब जोग के साथ श्री बाबा के दर्शनार्थ गया था। जब चोलकर लौटते समय श्री साई महाराज के पास आज्ञा माँगने के लिए पहुँचे तो बापूसाहब की ओर मुड़कर श्री बाबा बोले–"ठाणा से आये हुए तुम्हारे इस अतिथि को घर लौटने से पहले खूब शक्कर डालकर बहुत सारी चाय पिलाओ।"

श्री बाबा के ये उद्गार सुनकर चोलकर को महान आश्चर्य हुआ। श्री साई की अद्भूत लीला देखकर उसने नयन प्रेमाश्रु से भर आये। उसने पुनः एक बार श्री बाबा के चरणों में अपना मस्तक झुका दिया। बापूसाहब भी श्री बाबा के शब्दों का अर्थ नही समझ सके थे। जब चोलकर ने श्री बाबा के उद्गारों का स्पष्टीकरण किया तो उनके आश्चर्य का भी ठिकाना न रहा। श्री साई महाराज ने चोलकर को बिना शक्कर की चाय पीने की आदत का स्मरण कराया और उसके मन में जो भक्ति भाव था, उस और भी दृढ किया। हजारों मील दूर रहने वाले एकनिष्ठ भक्त के प्रत्येक आचरण पर श्री साई कितना ध्यान रखते थे। यह बात चोलकर के उदाहरण से भक्तों को ज्ञात होगी और साई महाराज के चरणों में उनकी निष्ठा और भी दृढ़ हो जायेगी।

==========

पंद्रहवाँ अध्याय

अलौकिक शिक्षा-पद्धति

श्री साईनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर के ही अवतार थे। दूर रहने वाले अपने भक्तों की ओर तो उनका ध्यान होता ही था। पर आखिर प्राणिमात्र की सूक्ष्मतम गतिविधियों से भी वे पूर्णतः परिचित रहते थे। यह बात दो छिपकलियों की कहानी से भली–भाँति सिद्ध हो जाती है। एक दिन जब श्री साई महाराज द्वारकामाई में बैठे थे, सामने की दीवार पर खुशी से नाचकर एक छिपकली ने चुकचुक आवाज निकाली। वहाँ बैठे हुए एक भक्त के मन में यह विचार आया कि छिपकली का इस प्रकार आवाज करना क्या अपशकुन है ? उसने श्री बाबा से यह विचित्र प्रश्न किया–"बाबा, यह छिपकली क्या कहना चाहती है ?"

श्री बाबा ने उत्तर दिया,"अरे भाई, औरंगाबाद से इसकी बहन मिलने आ रही है। इसलिये यह छिपकली आनंद–विभोर होकर नाच रही है।" प्रश्न पूछने वाला भक्त यह उत्तर सुनकर स्तब्ध मौन बैठा रह गया। थोड़ी ही देर बाद घोड़े पर सवार एक मनुष्य औरंगाबाद से शिरडी पहुँचा। अपने थके हुए घोड़े को चने खिलाने के लिए चनों से भरा हुआ एक बोरा उस यात्री ने निकाला और जमीन पर जोर से झटक दिया। इतने में ही उस बंद थैले में से एक छिपकली बाहर निकली और सब लोगों की आँखो के सामने नाचते–फुदकती हुई द्वारकामाई की दीवार पर चढ़ी और सचमुच ही उसने अपनी बहन से भेंट की। दोनो बहनों ने प्रसन्नतापूर्वक एक दूसरे से भेंट की और खुशी से इधर–उधर दौडने लगी। वह नयनाभिराम दृश्य देखकर सभी उपस्थित लोगों के हृदय भर आये और श्री साई की अद्भुत लीलाओं और उनकी सर्वज्ञता पर उन्होंने आश्चर्य किया।

श्री साई महाराज को कल्पतरू, कामधेनु या चिन्तामणि की उपमा

देना सर्वथा अनुचित होगा; क्योंकि सद्‌गुरू की योग्यता तो इन सभी से अधिक मूल्यवान होती है। कल्पवृक्ष, हम जिस वस्तु की कल्पना करेंगे वही वस्तु दिला देता है। चिंतामणी भी हम जिस वस्तु का चिन्तन करेंगे वही प्राप्त करा देगी। परंतु श्री साई जैसे उच्च कोटि के सद्‌गुरू तो भक्तों को अतर्क, गूढ़ सत्य स्थिति का दर्शन कराते है। प्रत्यक्ष ब्रम्हज्ञान से परिचित कराने का दिव्य सामर्थ्य उनमें होता है। केवल भक्त के पास ग्रहण करने की शक्ति होनी चाहिये। ब्रम्हज्ञान के सम्बन्ध में निरर्थक गप्पे लड़ाना तो सभी जानते है।

ऐसे ही एक दिन एक धनवान गृहस्थ श्री साई महाराज के पास पहुँचा और ब्रम्ह–ज्ञान प्राप्त करने का हठ पकड़कर बैठ गया। श्री साई महाराज ने उससे कहा–"मैं प्रत्यक्ष ब्रम्ह ही तुम्हें दिखाता हूँ", और उसे अपने निकट बैठा लिया। कुछ देर इधर–उधर की बातें करने के पश्चात् जब श्री बाबा ने देखा कि उस धनी मनुष्य को अपने प्रश्न को विस्मरण हो चुका है, तो उन्होंने एक लड़के को अपने पास बुलाया और उससे कहा कि नन्दु मारवाडी से पाँच रूपये उधार ले आओ। थोड़ी ही देर बाद लड़के ने लौट कर कहा कि नन्दु मारवाडी घर पर नहीं मिला। श्री बाबा ने अब उसे बाला नामक बनिये के पास भेज दिया। वहाँ से भी लड़का खाली हाथ वापिस आया। श्री बाबा ने पाँच रूपयों के लिए उसे अन्य चार–पाँच स्थानों पर भेज दिया। पर कहीं भी रूपये नहीं मिले।

श्री साई महाराज तो स्वयं ही मूर्तिमंत ब्रम्ह थे। पाँच रूपये उधार लेने का उन्होंने एक नाटक रचाया था। सामने बैठे हुए उस धनी गृहस्थ की जेब में उस क्षण पर्याप्त धन था। फिर भी श्री बाबा को केवल पाँच रूपये उधार देने की भी उसकी इच्छा न हुई। पाँच रूपये जैसी अत्यन्त अल्प रकम के मोह को भी वह न त्याग सका और संसार में अत्यन्त बहुमूल्य समझे जाने वाले ब्रम्ह–ज्ञान को प्राप्त करने का दुराग्रह मन में लेकर वह वहाँ बैठा था।

कुछ देर बाद जब वह बैठे–बैठे तंग आ गया तो उस धनी ने श्री बाबा से कहा–''बाबा, मुझे जाने के लिए देर हो रही है। आप मुझे ब्रम्ह दिखा रहे है न ?'' तब श्री बाबा ने उत्तर दिया–'' अरे मूर्ख, मैने अभी तक जो दौड़–धूप की, वह क्या व्यर्थ हो गई। ब्रम्ह ज्ञान प्राप्त करने के लिए पाँच प्रमुख वस्तुओं का त्याग करना पड़ता है। अपने पंचप्राण, इंन्द्रियाँ, मन, बुद्धि तथा देहाभिमान। इन सबका त्याग किए बिना ब्रम्ह–ज्ञान का मार्ग ढूँढना व्यर्थ है। तुझ जैसा मनुष्य पाँच रूपये का मोह छोड़ नहीं सकता और ब्रम्ह–ज्ञान की बातें करता है ? ब्रम्हज्ञान का मार्ग तलवार की धार पर चलने की भाँति विकट है। एक ही जन्म मे मनुष्य के लिए ब्रम्ह–ज्ञान प्राप्त करना बिल्कुल अंसभव है। मुमुक्षु भक्त के अंतःकरण में जब पूर्ण विरक्ति उत्पन्न होती है और वह अंतर्मुख हो जाता है, तभी धीरे–धीरे ब्रम्ह–ज्ञान की उपलब्धि होती है। जब अपने पास इसी क्षण पाँच रूपये की पचास गुनी पर्याप्त धन राशि होने पर भी तुम पाँच रूपये की जैसी क्षुद्र रकम का मोह दूर न कर सके तो फिर व्यर्थ की बातें क्यों करते हो ? तुम्हारे पास इस समय दक्षिणा देने के लिए कितने रूपये है, बताओ ?'' उस धनी व्यक्ति ने लज्जित हो तुरन्त ही अपना बटुआ निकाला और उसमें जितने रूपये थे, वे सब बाबा के चरणों में डाल दिये। चमत्कार यह हुआ कि ठीक–ठीक दो सौ पचास रूपये दस–दस रूपये के पच्चीस नोटों के रूप में थे।

श्री साई महाराज की शिक्षा पद्धति इस प्रकार विचित्र ढंग की होती थी। अन्य साधुओं के सदृश वे घोर अरण्यों में, पहाड़ों की गुफाओं में या एकांत वास में बैठ ध्यान–धारणा नहीं करते थे, वरन् प्रपंच में फँसे हुए सभी प्रकार के लोगों के संपर्क मे रहते थे। उनका मार्गदर्शन करते थे। नित्य व्यापार सहज भाव से निभाने के साथ–साथ श्री साई का शुद्धिकरण तथा आत्मिक उन्नति का कार्य चालू रहता था।

संसार में मग्न रहकर भी परमार्थ कैसे साधा जा सकता है और

नित्य के व्यवहार में भक्तों को किस प्रकार का आचरण रखना चाहिए, इस संबंध में श्री बाबा ने 'श्री साई सच्चरित्र' के लेखक हेमाडपंत के समक्ष सुन्दर विवेचन किया था। श्री बाबा ने कहा था, "कोई भी व्यक्ति पूर्व जन्मों के कार्य–कारण सम्बन्ध के बिना के किसी दूसरे व्यक्ति की ओर आकर्षित नहीं होता। इसलिये यदि आपके निकट कोई व्यक्ति या प्राणी संयोगवश आ पहुँचा तो उसे दुष्ट बुद्धि से प्रेरित होकर दूर से ही न लौटाए। अत्यन्त प्रेम से उसे अपनाइये और उससे उचित बर्ताव कीजिये। तृषितों को जल दीजिये, भूखे अतिथि को अन्न दीजिये, गरीब दीन–दुःखियों को शरीर ढकने के लिए अपने पास का वस्त्र अर्पण कीजिए और कोई निराश्रित घर पर आए तो उसे आश्रय दीजिये। भूतदया की इतनी सारी सुलभ तथा सरल बात यदि आपके नित्य आचरण में समा गई तो प्रत्यक्ष ही हरि को भी आपकी पुकार सुनते ही दौड़कर आना पड़ेगा। यदि आपकी इच्छा दान–धर्म करने की नहीं है या आपका सामर्थ्य नहीं है तो भी शांत होकर बैठिए, कुछ न बोलिए, उसे झिड़कियाँ न दीजिये। उसके दीन–दुर्बल ह्रदय पर आघात न कीजिए। यदि कोई आपकी निन्दा या बुराई करता हो तो आप भी गालियों की बौछार कर अपनी अवनति मत होने दीजिये। केवल मन को शांत रखते हुए परमेश्वर भक्ति में ही ध्यान रखिये। मेरे और आपके बीच जो अध्यात्मिक अंतर है, वह सतत् मनन और अध्ययन के द्वारा दूर करने का प्रयत्न कीजिये। ऐसा करने से आपको यह अनुभव होगा कि आपका आध्यात्मिक स्तर धीरे–धीरे ऊँचा होता जा रहा है। परमेश्वर सभी की रक्षा करता है। श्रीकृष्ण ने जैसे गीता में कहा है, उस दयाधन परमेश्वर के सत्य स्वरूप का साक्षात्कार करने का एकमात्र सरल तथा सुलभ मार्ग भक्ति है। अपने प्रारब्ध के वश ही हम एक–दूसरे के निकट आये है। इसीलिए सभी के साथ शान्ति एवं प्रेम से बर्ताव करना, यही सब धर्मों का सार है। मेरी यह विनम्र प्रार्थना है कि सभी भक्त लोग शान्ति का अभ्यास करें।" श्री साई महाराज का यह उपदेश मनन करने योग्य है। श्री साई के इन शब्दों में भक्तों का सभी धर्मों के महान तत्वों

का बिल्कुल सीधा तथा सरल अर्थ निश्चित रूप से ज्ञात होगा।

श्री साई महाराज सदैव इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते थे कि उनके भक्तों के मन में अच्छे विचार उत्पन्न हो। हमारे ऋषि–मुनियों ने कहा है कि सोते समय सदैव अपने इष्ट देवता का चिंतन करना चाहिये। प्रातःकाल उठते ही सर्वप्रथम अपने इष्ट देवता का चिंतन करना चाहिये, जिससे सारे दिन आपके मन में शुद्ध एवं उच्च कल्पनाओं का विकास होता रहे। इस प्रकार आप अपने ज्ञान–सामर्थ्य में वृद्धि होने का भी अनुभव करेंगे। 'श्रीसाई सच्चरित्र' के लेखक श्री हेमाडपंत ने मन में निश्चय किया कि अगले दिन गुरूवार है, इसलिये वे दिनभर राम–नाम जप करेंगे। दूसरे दिन प्रातःकाल आँख खुलते ही उन्हें अपने निश्चय का स्मरण हुआ। संकल्प के अनुसार राम–नाम का जप करें, वे श्री बाबा के दर्शन के लिये गये। भक्ति–भाव से पूजा अर्चना समाप्त कर वे बाहर आ ही रहे थे कि उन्होंने देखा कि बुटी की हवेली के निकट औरंगाबादकर नामक श्री बाबा के एक अन्य भक्त अपनी सुरीली एवं मधुर आवाज में प्रभु श्री रामचंद्र जी से संबंधित एक भक्ति–पद गा रहे थे। एकनाथ महाराज के उस पद में गुरू कृपा से भक्तों को दिव्य दृष्टि प्राप्त होने और प्रभु रामचंद्र जी के प्रत्यक्ष दर्शन देने की दशा का बहुत ही हृदयहारी वर्णन किया गया था। ठीक उसी समय औंरगाबादकर के मन में वही पद गाने की प्रेरणा कर श्री साई महाराज ने श्री हेमाडपंत के मन में उत्पन्न अच्छी कल्पना की और भी पुष्टि की। समय या स्थान का विचार न करते हुए श्री बाबा अपनी इच्छा के अनुसार भक्तों को ऐसी विचित्र रीति से उपदेश दिया करते थे।

श्री बाबा को किसी की निंदा या बुराई करना पंसद नही था। एक बार एक भक्त ने श्री साई के निकट बैठ कर एक अन्य भक्त की निंदा करना आरम्भ किया। उस समय तो श्री बाबा ने उसकी बातें ध्यान से सुनी। इसके उपरांत दोपहर को लेंडी बाग से लौटते समय उसी भक्त को सामने खड़ा

देखकर श्री बाबा ने कीचड में मुँह गड़ाये बैठे एक गंदे सुअर की ओर उँगली से संकेत करते हुए कहा–"देखो, वह सुअर कैसी प्रसन्नता से गंदगी चाट रहा है। तुम्हारा आचरण भी कुछ इसी ढंग का होता है। अपने भाई की निंदा कर तुम्हें स्वर्ग का आनंद मिलता है। पूर्व जन्म के पुण्य संचय से ही तुम्हे यह मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है, और इस जन्म में भी ऐसे दुष्कर्म करते रहने से यह शिरडी तुम्हे कैसे लाभदायक सिद्ध हो सकती है ?" श्री बाबा के यह शब्द सुनते ही भक्त का सिर लज्जा से झुक गया। श्री बाबा की शिक्षा–पद्धति ऐसी ही विलक्षण हुआ करती थी। सहसा भक्त के हृदय पर आघात करने वाले शब्द भी बाबा कभी अपने मुख से नही निकलने देते थे। श्री बाबा का सदैव यही महान प्रयत्न रहता था कि भक्त लोग अपना आचरण शुद्ध रखें। उनका यह हठ कभी न रहा कि केवल उनके नाम का जप किया जाय। श्रवण एवं मनन करते हुए "मैं कौन हूँ ?" इस प्रश्न का सभी भक्त लोग विचार करें, यही उनकी हार्दिक इच्छा होती थी। जिन भक्तों की उनमें अविचल श्रद्धा थी, उन्हें वे साई नाम का स्मरण करने के लिए कहा करते थे, तो कई भक्तो से अध्यात्म–रामायण, ज्ञानेश्वरी, भगवद्‌गीता आदि धार्मिक ग्रंथो का अध्ययन करने का आग्रह करते थे। किसी भी विशिष्ट देवी–देवता या धर्म का उन्हें विशेष आग्रह नहीं था। सभी देवता और धर्म उनके लिए समान थे। कुछ भक्तों से वे मनुष्य देह में प्रत्यक्ष भेंट कर साक्षात्कार करते थे, तो कुछ भक्तों से स्वप्न में भेंटकर उन्हें सावधान करते थे। बड़े पक्के शराबियों के स्वप्न में प्रकट हो वे उनकी छाती पर बैठकर उन्हें बुरी तरह मारते थे और उन्हें इस विनाशकारी व्यसन से परांगमुख करने का प्रयत्न करते थे। उपासनी महाराज की भाँति जो भक्त आध्यात्मिक ज्ञान में पर्याप्त प्रगति कर चुके थे, उन्हें वे आध्यात्मिक प्रयोग बताते थे। अन्य सामान्य भक्तों को अध्यात्मिक विषयों से दूर ही रखते थे। हठ–योगियों को वे सप्रमाण बतलाते थे कि उनका मार्ग गलत है और उन्हें धर्मयुक्त समाधि अवस्था का अनुभव बता देते थे। हर एक मनुष्य को परिश्रम करना चाहिये, और हर एक

को उसके परिश्रम का फल मिलता ही चाहिए, यह उनका निश्चित मत था। एक बार श्री बाबा सीढ़ी से वामन गोंदकर के मकान पर चढ़े और वहाँ से राधाकृष्णमाई के मकान की छत पर चढ़कर पुनः नीचे उतर आये। उतरते ही उन्होंने सीढ़ी लाने वाले मजदूर को दो रूपये दिये। जिसे परिश्रम लिया जाता है, उसे उसका फल मिलना ही चाहिये, यह तत्व भली–भाँति बताने के लिए ही श्री बाबा ने यह लीला रचाई थी। चमत्कार दिखाकर अत्यन्त जटिल प्रश्न भी चुटकियों से हल कर डालना श्री बाबा का विशेष गुण था। दासगणुजी ने 'ईशावस्योपनिषद' के आधार पर मराठी भाषा में एक ग्रंथ लिखना आरम्भ किया। मूल संस्कृत ग्रंथ का आकलन करने में बहुत कठिनाई होने के कारण दासगणूजी के मराठी रूपान्तरण में अनेक त्रुटियाँ रह गई। उन्होंने पर्याप्त प्रयत्न किया; इस प्रश्न पर अपना ही समाधान नहीं कर सके। "आत्म समाधान एवं सुख" इस प्रश्न पर आधारित एक मंत्र का वास्तविक अर्थ समझ में नहीं आ सका। अन्त में उन्होंने आत्म–ज्ञान का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने वाले श्री साईनाथ के समक्ष ही अपना प्रश्न उपस्थित करने का साहस किया। श्री बाबा ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा–"चिंता का कोई कारण नहीं। अर्थ बिल्कुल सीधा–सादा है। विलेपार्ले जाओ। वहाँ काकासाहेब दीक्षित की सेविका तुम्हारे मन में उत्पन्न हुई शंका का निराकरण करेगी।" इस प्रकार अटपटा–सा उत्तर सुनकर भक्त लोग यही समझे कि श्री बाबा मजाक कर रहे है। परन्तु दासगणूजी का श्री बाबा में पूर्ण विश्वास था। उन्होनें तुरन्त ही मुम्बई के लिए प्रस्थान किया।

विलेपार्ले में जब दासगणूजी ध्यान–पूजा में मग्न थे, उनके कानों में किसी गीत के मंजूल, मधुर स्वर सुनाई दिये। बाहर आते ही उन्होंने देखा कि काकासाहेब की तरूण नौकरानी बर्तन माँजते–माँजते गीत गा रही है। गीत का विषय तो था एक सुन्दर जरी की किनारी लगी हुई लाल रंग की साड़ी; पर उस युवती के शरीर पर तो एक फटी–पुरानी साड़ी ही थी।

दासगणूजी गीत सुनकर पूर्णतया मोहित हो गये थे और उन्होंने श्री मोरेश्वर प्रधान के कह कर हाथों–हाथ एक सुन्दर–सी साड़ी खरीदवा कर युवती को पुरस्कार स्वरूप दे डाली। भूखे मनुष्य को अन्न मिलने से जैसा आनंद होता है। उसी प्रकार वह युवती हर्षविभोर हो उठी। दासगणूजी की दी हुई साड़ी पहन कर वह लगातार दो दिन घर के काम–काज के लिए आती रही। अपना कार्य समाप्त कर वह हर्षोल्लास से नाचती–उछलती हुई अन्य समवयस्क लड़कियों के साथ खेलकर घर लौट जाती थी। तीसरे दिन उसने वह साड़ी यत्नपूर्वक बक्से में बंद कर रख दी और फिर वही फटी–पुरानी साड़ी पहनकर घर पर काम–काज करने आने लगी। पर नई साड़ी प्राप्त होने से उसे जो हर्षोल्लास हुआ था, उसमें किसी प्रकार कोई कमी दिखाई नही दी। यह दृश्य देख कर दासगणूजी को ईशावास्योपनिषद के मन्त्र का सच्चा अर्थ ज्ञात हुआ। लड़की परिस्थिति से गरीब थी, उसके शरीर पर वही जीर्ण अर्थ थे; किंतु केवल इस कल्पना से कि उसके पास एक बहुत ही सुन्दर जरी–बूटे वाली साड़ी भी है, उसका मन आनन्द से फूला नही समा रहा था। हमारे अन्तःकरण में भी सुख–दुःख की कल्पना इसी प्रकार के मनोंभावों पर आधारित होती है। परमेश्वर ने जिस स्थिति में रखा है, उसी में सुख मानते हुए, सन्तोष वृत्ति से जीवन बिताने का यदि मनुष्य प्रयत्न करे तो उसे आजीवन कभी दुःख कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ेगा। काकासाहेब की नौकरानी ने अपने सहज आचरण से दासगणूजी को उपनिषदों में वर्णित आत्मसमाधान (आत्म–वृत्ति) का वास्तविक अर्थ स्पष्ट कर दिया। श्री साई महाराज की यह लीला कैसी अतर्क्य और मन को मोहित करने वाली है।

हमारी इस भारत–भूमि में सन्तों की एक श्रृंखला या संस्था का होना संम्भव ही है; क्योंकि भिन्न–भिन्न स्थानों में विचरते हुए ये सभी सन्त लोग एक दूसरे के सम्पर्क स्थापित कर लेते है। श्री साई महाराज के जीवन काल में भी समय–समय पर ऐसे अनेक प्रसंग भक्त अनुभव कर चुके हैं ? ठाकुर

नामक एक सज्जन भूमि–कर विभाग में नौकरी कर रहे थे। बेलगाँव के निकट बड़गाँव में जब वे किसी कार्यवश गये तो वहाँ प्रसिद्ध कानडी सन्त श्री अप्पा महाराज से उनकी भेंट हुई। अप्पा महाराज ने उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा–"विचार–सागर ग्रंथ (वेदान्त) का अध्ययन करो। तुम्हारी सब मनोकामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी। आगे कुछ वर्षो के पश्चात् जब किसी कार्यवश तुम्हारा उत्तर दिशा की ओर जाना होगा, तब वहाँ तुम्हारे पूर्व पुण्यों के फलस्वरूप एक माने हुए सद्‌गुरू से तुम्हारी भेंट होगी और वे ही आगे तुम्हारा मार्ग–दर्शन करेंगे।"

कुछ समय पश्चात् ठाकुर का जुन्नर में तबादला हो गया। वहाँ जाते हुए मार्ग में 'नाणेघाट' नामक पहाड़ी पार करने में उन्हें भारी कठिनाई अनुभव हुई। पहाड़ के बहुत ही तंग रास्तों में से भ्रमण करते हुए कहीं–कहीं उन्हें भैसे की भी सवारी करनी पड़ी। जुन्नर में कुछ वर्ष बिताने के बाद ठाकुर कल्याण आये। वहाँ चाँदोरकरजी से भेट होने पर उन्हें श्री साई महाराज के सम्बन्ध में जानकारी हुई और श्री बाबा के दर्शनों के लिए ठाकुर शिरडी पहुँचे। श्री बाबा के दर्शन मात्र से ठाकुर बहुत ही प्रसन्न हुए और भक्ति–भाव से हाथ जोड़कर उन्होंने श्री बाबा से आशीर्वाद माँगा। अन्तर्ज्ञान से सब कुछ जानकर उनकी ओर देखते हुए श्री साई बोले–"हमारा मार्ग कानडी अप्पा के बताये हुए मार्ग की भाँति सुगम नही है। भैंसे की पीठ पर सवार होकर दुर्गम पहाडियाँ पार करने की अपेक्षा हमारा मार्ग अधिक कठिन है। इस आध्यात्मिक मार्ग में तुम्हे प्रंचप्राण भी बलिदान करने होंगे।" श्री बाबा के यह उद्‌गार सुनकर ठाकुर का पूर्ण समाधान हुआ और उन्होंने श्री बाबा के चरणों में मस्तक झुका दिया। ठाकुर का समाधान करने के लिए श्री साई पुनः बोले–"अरे, तुम्हारे अप्पा ने जो मार्ग बतलाया है, वही मार्ग आरम्भ में ठीक है। केवल ग्रंथों का पारायण करने कुछ लाभ नही होता। परंतु उन्हें निर्दिष्ट तत्वों का मनन कर उन्हें प्रत्यक्ष आचरण में लाने का सदैव प्रयत्न होना चाहिए। गुरू–कृपा से भक्त को आध्यात्मिक उन्नति की यह अगली अवस्था

प्राप्त होती है।"कानडी अप्पा ने जो कार्य अधूरा छोड़ दिया था, उसे श्री साई महाराज ने आगे पूर्ण किया।

पूना के श्री अनन्तराव पाटणकर ने एक बार श्री बाबा से कहा–"बाबा मैंने वेद–वेदांग, उपनिषदों तथा सभी पुराणों का गूढ़ अध्ययन किया; परंतु फिर भी मेरे मन को शान्ति न मिली। कृपा कर मुझे मार्ग दिखाइये।" श्री बाबा ने एक सौदागर की कहानी सुनाकर नवधा– भक्ति का सत्य स्वरूप पूर्णतया समझा दिया।

यहाँ बम्बई के प्रसिद्ध पितले परिवार के श्री हरिश्चन्द्र पितले के प्रत्यक्ष अनुभव का उल्लेख करना अप्रासंगिक सिद्ध नहीं होगा। उनका ज्येष्ठ पुत्र द्वारकानाथ बचपन से ही मिर्गी के रोग से पीड़ित था। बम्बई के सुप्रसिद्ध डॉक्टर–वैद्यों से निराश हो पितले ने गुरू–कृपा का मार्ग अंगीकार किया। बम्बई में माधवबाग में दासगणूजी का कीर्तन सुनने हरिश्चन्द्र भी गये थे और वहाँ श्री साई का व्याख्यान सुनकर उन्हें शिरडी जाने की प्रबल इच्छा हुई। अपनी पत्नी और पुत्र के साथ वे श्री बाबा के दर्शनार्थ शिरडी पहुँचे। श्री बाबा की पूजा–अर्चना के पश्चात् उन्होनें अपने रोग–ग्रस्त पुत्र को श्री बाबा के चरणों में डाल दिया। चमत्कार यह हुआ कि रोग ने एकाएक उग्र रूप धारण किया। लड़के की आँखें बाहर निकल आई। मुँह से झाग निकलना आरम्भ हुआ और थोडी ही देर बाद लड़का मूर्च्छित हो गया। बड़ी आशा से श्री बाबा के दर्शन के लिए आते ही यह शोकजनक घटना देखकर हरिश्चन्द्र और उनकी पत्नी किंकर्त्यव्यविमूढ़ हो गए। उनकी पत्नी ने तो दुःखावेश में रोना आरम्भ किया।

---

* १ **नवधा–भक्ति** – सन्त समागम, कथा–प्रेम, गुरू–सेवा, भगवद्–गुणगान, मन्त्र–जाप, विरति, सब में आत्मभाव, सन्तोष और परदोष न देखना एवं भगवान का भरोसा और सबसे छलहीन रहना।

और अनन्य भाव से श्री बाबा को पुकारा। श्री बाबा का दयाशील अन्तःकरण द्रवित हो गया। हरिश्चंद्र की पत्नी का समाधान करते हुए श्री बाबा बोले–" माँ, दुख न करो! इस बच्चे को अपने निवास–स्थान पर ले जाओ और 'थोड़ी देर प्रतीक्षा करो। केवल आधे घण्टे के अन्दर यह चैतन्य हो जायेगा।"

श्री बाबा की आज्ञानुसार तुरन्त ही लड़के को घर पहूँचाया गया और सचमुच ही आधे घण्टे के भीतर लड़के ने चैतन्यावस्था प्राप्त की। पितले कुटुम्ब के सभी लोगों को अपार प्रसन्नता हुई। श्री बाबा के आशीर्वाद से सभी लोगों में मिठाई बाँटी गई। स्वयं पितले अपनी पत्नी के साथ द्वारकामाई पहुँचे और श्री बाबा के सेवा में रत हुए। कुछ समय शिरडी में श्री बाबा की सेवा–चाकरी करने के उपरान्त पितले और उनके सम्बन्धी बम्बई लौट आये। श्रीमती पितले पर बाबा की विशेष कृपा रही। वह साध्वी स्त्री अत्यन्त सीधी–सादी, स्नेहमयी और सात्विक वृत्ति की थी। श्री बाबा की अनुमति प्राप्त करने के लिए जब श्रीमती पितले द्वारकामाई में गई तो श्री बाबा ने स्वयं अपने हाथों से आशीर्वाद के साथ ऊदी दी और पितले की ओर देखते हुए बोले–"बापू, दो रूपये तो मैंने तुम्हें पहले ही दिये है। उनके साथ ये तीन रूपये और देता हूँ। अपने घर देवी–देवताओं की मूर्तिओं के साथ इन्हें रखो और प्रतिदिन इनकी पूजा करो। तुम्हारा सदैव कल्याण होगा।"

श्री साई का आशीर्वाद प्राप्त कर पितले बम्बई लौटे। श्री बाबा के शब्द उनके कानों में गूँज रहे थे। वह इस विचार में दिन–रात डूबे रहे, कि जब वे पहले कभी श्री बाबा के दर्शन के लिए नहीं गए तो" दो रूपये तो मैंने पहिले ही दिये हैं ?" श्री बाबा के इन शब्दों का अर्थ क्या हो सकता है ? मुझे श्री बाबा ने रूपये कब दिये? इस प्रश्न ने उन्हें असमंजस में डाल दिया। अन्त में वे अपने वृद्धा माता के पास पहुँचे और शिरडी का सारा वृतान्त सुनाकर उनसे दो रूपये के सम्बन्ध में प्रश्न किया। कुछ देर विचार करने के पश्चात् पितले की वृद्ध माता ने कहा–" बेटा, अब मै समझ गई। जब तुम बच्चे थे तो इसी प्रकार तुम्हारे पिता सब को साथ अक्कलकोट महाराज के

दर्शनों के लिये गये थे। उस समय प्रसाद को स्वरूप स्वामीजी ने तुम्हारे पिता को दो रूपये दिये थे और वे पूजा के लिए अब तक रखे हुए थे। तुम्हारे पिता भक्तिभाव से उन रूपयों की नित्य पूजा करते थे। परंतु उनके पश्चात् तुम्हें उन रूपयों का विस्मरण हो गया और वे रूपये न जाने कहाँ गये। श्री साई महाराज से तुम्हें उचित पाठ सीखना चाहिए और अपने कुल में जो परंपरा सी चली आई सभी पूजा–विधि उचित रूप से चालू रखनी चाहिये।''

पितले अपनी माता के विचारों से पूर्णतया सहमत हुए और श्री बाबा के दो रूपयों का अर्थ भी हो गया। श्री साई की इस अद्भुत लीला से उनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा और दिन से उन्होंने अपने मन को भक्ति मार्ग की ओर प्रवृत्त किया।

श्री सद्गुरू साई महाराज दत्तात्रेय के अवतार कहे जाते हैं। अक्कलकोट महाराज के पश्चात् यह श्री साई का अवतार है। ऐसी कुछ भक्तों की श्रद्धायुक्त भावना है। उपरोक्त घटना से भक्त की इस कल्पना की बहुत अंशो तक पुष्टि होती है। श्री साई महाराज को अपने अन्तर्ज्ञान द्वारा अपने पिछले अवतार में पितले के पिता को दो रूपये देने का जब स्मरण हुआ, तभी तो उन्होंने उन दो रूपयों के सम्बन्ध में अपने मुख से वे उद्गार निकाले।

==========

सोलहवाँ अध्याय

भक्तजनों के साथ लीला-विनोद

नानासाहेब डेंगले एक विद्वान ज्योतिष थे। एक बार श्रीमान बापूसाहेब बूटी की जन्मपत्री का अवलोकन करते हुए उन्होंने कहा—"बूटीसाहब, आज का दिन आपके लिए घातक है। आज आपका जीवन संकट में है।" ज्योतिषी की यह अनिष्टसूचक भविष्यवाणी सुनते ही बापूसाहेब उदास हो गए। किसी बात में भी उनका मन नही लगा। श्री साई महाराज ने भाँप लिया और उन्होंने बूटी से कहा—"बापू, यह नाना क्या व्यर्थ की बकवास कर रहा है ? क्या आज तुम्हारी मृत्यु है ? कुछ चिन्ता न करो। मैं देखूँगा, आज तुम्हें उठाने यमदूत कैसे आते है ? जाओ, स्वस्थ चित्त से बैठो।"

श्री बाबा के इस आश्वासन से बापूसाहब को धैर्य बंध गया। वे ज्योतिषी की भविष्यवाणी सर्वथा भूल गये। उनका सारा दिन आनन्द से व्यतीत हुआ। संध्या के समय जब बूटीसाहब शौच के लिए गए तो अकस्मात् वहाँ एक विकराल विषधर सर्प निकल आया। उनके सेवक लहानू ने, जो पास ही खड़ा था, सर्प को मारने के लिए बड़ा पत्थर उठाया; पर बापूसाहब ने उस सर्प को डंडे से मारने का आदेश दिया। उस घबराहट से सर्प फुँफकार करता हुआ कही अदृश्य हो गया। ज्योतिष के कथानुसार सचमुच ही वह दिन बापूसाहब के लिए घातक सिद्ध होने वाला था। परन्तु श्री बाबा की कृपा से सर्प के रूप में आये हुए यमदूत को उल्टे पाँव लौटना पड़ा।

अपने किसी भी भक्त को संकट में पड़ा हुआ देखकर श्री साई महाराज किसी भी विचित्र ढंग से उसकी रक्षा करते थे। ऐसी ही एक और घटना है। अमीर शक्कर नाम एक कसाई सन्धि-वात से पीडित था। अपना काम धंधा छोडकर वह शिरडी में श्री साई महाराज की सेवा में आकर रहने ... के निकट रहने की आज्ञा दे दी। वह स्थान

बहुत संकुचित था और विशेष हवादार भी न था, इसलिए उस कसाई का रोग उत्तरोत्तर भयानक रूप धारण करने लगा। फिर भी श्री बाबा में पूर्ण विश्वास रखते हुए वह वहीं पड़ा रहा। अमीर ने वहीं जैसे–तैसे लगभग नौ महीने काट दिए। यद्यपि श्री बाबा का दर्शन तथा सहवास उसे नित्य प्राप्त होता था, फिर भी अमीर वहाँ रहते–रहते अन्त में तंग आ गया और एक रात को चुपके से निकलकर कोपरगाँव की धर्मशाला में जा पहुँचा। वहाँ एक वृद्ध फकीर से उसकी भेंट हुई। फकीर प्यास से व्याकुल था। अमीर ने फकीर को जल दिया और उसी क्षण फकीर के प्राण पखेरू उड़ गये। अंत तो अमीर बहुत घबडाया। उसने सोचा–'फकीर की आकस्मिक मृत्यु के लिए पुलिस कहीं मुझे ही उत्तरदायी न ठहराए और पकड़ ले।' उसे अब श्री बाबा की आज्ञा का उल्लंघन करने का पश्चाताप हुआ। वह अनन्य भाव से श्री बाबा की प्रार्थना करते हुए पुनः रातों–रात शिरडी लौट आया। शिरडी आकर वह चावड़ी में वहीं जाकर सो गया, जहाँ पहले पड़ा रहता था। मार्ग में वह श्री बाबा के नाम का जप करता रहा था। कोपरगांव की धर्मशाला में आकस्मिक मृत्यु को प्राप्त होने वाले फकीर की घटना का उस पर किसी प्रकार का भी दोषारोपण न हुआ। उसका संधि–वात रोग भी उन्ही दिनों जैसे अपने आप ही नष्ट हो गया। अमीर श्री साई की आज्ञानुसार आनन्द से समय व्यतीत करने लगा।

कुछ समय बाद एक दिन श्री बाबा सोते–सोते जाग उठे और जोर–जोर से चिल्लाकर बोले–"अरे अब्दुल, कोई भयानक प्राणी मेरे बिस्तर की ओर सरपट दौड़ आ रहा है।" अब्दुल ने दीप जलाकर एक–एक कोना छान मारा; पर उसे की कुछ दिखाई नहीं दिया। इधर श्री बाबा डंडे से भूमि पर जोर–जोर से प्रहार करते हुए बराबर कह रहे थे–"भली–भाँति सारी जगह की तलाशी लो।" इस हो–हल्ला में अमीर की भी नींद टूट गई और वह भी इधर–उधर देखने लगा। किसी को कुछ भी दिखाई न दिया। अन्त

में श्री बाबा ने ही अमीर की चटाई की ओर अँगुली उठाई। सब लोगों का ध्यान उस स्थान की ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने देखा की चटाई के नीचे तकिए के निकट एक पीला विशालकाय सर्प डसने की तैयारी में फन उठाए तीव्रता से इधर–उधर डोल रहा था। अब्दुल ने बड़ी चतुराई से उसका वध कर दिया। श्री बाबा ने अमीर को सावधान कर सर्प–दंश से उसकी रक्षा की। निद्रावस्था में भी श्री साई महाराज अपने भक्तों का कितना अधिक ध्यान रखते थे, यह इस घटना से पाठकों को भली–भाँति विदित हो जायेगा।

सर्प को मार डाला गया है, यह सुनकर श्री बाबा किंचित दुःखी हो गए थे; क्योंकि उनका सदैव यही निश्चित मत रहता था कि विषैले जीवों को कभी भी नहीं मारना चाहिये। सर्प, नाग, वृश्चिक आदि प्राणी केवल श्री बाबा का नाम–स्मरण करते ही मस्तक झुकाकर चुपचाप चले जाते थे। यह अनेक भक्तों ने स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव भी किया था।

एक बार श्री बाबा के मुक्ताराम नामक भक्त का इस विषय पर श्री हेमाडपंत से कुछ वाद–विवाद हो गया था। श्री हेमाडपंत का कहना था कि ऐसे विषैले प्राणियों पर दया करना संकट का कारण हो सकता है। उन्हें तो जहाँ मिले, वही समाप्त करना अच्छा है।' अन्त में यह बात बढ़ते–बढ़ते श्री बाबा तक पहुँच गई। श्री बाबा ने न्यायधीश की भाँति दोनों की युक्तियाँ सुनने के पश्चात् यह निर्णय दिया–"परमेश्वर का अस्तित्व हरेक प्राणी में अंश रूप में रहता ही है। अखिल विश्व का नियंत्रण करने वाला परमेश्वर है। सर्प, वृश्चिक, व्याघ्र, सिंह आदि हिंसक प्राणी भी उसकी आज्ञानुसार ही आचरण करते है। परमेश्वर की इच्छा बिना कोई भी प्राणी दूसरे प्राणी पर आघात नहीं करेगा। इसीलिए हमें भी उन जीवों का वध करने का कोई अधिकार नहीं। अत्यन्त विषैला सर्प या नाग अकारण किसी व्यक्ति को नहीं डसता। यदि आप उससे छेड़–छाड़ करेंगे या आपको काटने की उसे परमेश्वर से आज्ञा मिली होगी तो ही वह आपको डस लेगा। जहाँ तक संभव हो, हमारा

कर्तव्य यही होना चाहिए कि हम प्राणी–मात्र के प्रति दया दिखाएँ और उनके साथ प्रेम से बर्ताव करें।''

श्री साई महाराज के इस निर्णय से सभी लोग संतुष्ट हुए। श्री साई एक अवतारी संत थे। उनके हाथों से कभी भी किसी प्राणी की हत्या नहीं हुई। भक्तों की परीक्षा लेने के उद्देश्य से वे कभी–कभी तामसी वृत्ति से आचरण करने का प्रयत्न करते थे। एक बार एक बहुत ही दुर्बल बकरा द्वारकामाई में आया। उसे देखते ही दाहिनी और सम्मान के साथ बैठे हुए मुहम्मद से श्री बाबा ने कहा–''बडे बाबा, इस बकरे को काट डालो।''

श्री साई महाराज मुहम्मद को बहुत सम्मान देते थे। उन्हें अपने दाहिनी ओर बैठाते थें। वह जो चिलम सुलगाकर देता था, उसे श्री बाबा बड़ी प्रसन्नता से पीते थे। जब वह बाहर जाने के लिए निकलता था तो स्वयं ही श्री बाबा पचास कदम तक उसके साथ जाते थे। सब लोग मुहम्मद को 'बड़े बाबा' कहा करते थे। श्री साईनाथ नित्यनियमानुसार अपनी दक्षिणा के रूपयों में से पचास रूपये उसे भी दे दिया करते थे। इस प्रकार यह व्यक्ति श्री बाबा के दरबार में बड़ा सम्मानित था। परंतु इन्हीं बड़े बाबा ने श्री साई बाबा से साफ–साफ कह दिया कि मैं इस गरीब जानवर की अकारण हत्या नही कर सकता।' श्री बाबा ने तब शामा को आज्ञा दी। शामा ने राधाकृष्णमाई के घर से कटार लाकर श्री बाबा के सामने रखी। इतने में ही राधाकृष्णमाई भागते हुई आई और कटार लेकर चलती बनी। दूसरी कटार लाने के बहाने शामा घर गया और वही बैठा रहा। कुछ देर राह देखने के पश्चात् श्री बाबा ने काकासाहब दीक्षित को बकरे की हत्या करने की आज्ञा दी। काकासाहेब ने अपना हृदय कठोर किया और वे साठे की हवेली में से एक बडा भारी गँडासा लाकर बकरे का वध करने को तत्पर हो गये। काकासाहेब का पवित्र ब्राम्हण–कुल में जन्म हुआ था। आचरण से वे कर्मठ सनातनी ब्राम्हण थे। सारे जीवन–काल में पशु–बलि जैसा कोई भी घोर पाप उनके हाथों से नहीं हुआ था। बड़े बाबा जैसे मुसलमान को भी जो कार्य करने में संकोच अनुभव

हुआ, वही कृत्य करने के लिए काकासाहेब उद्यत हुए। बकरे की गर्दन का ठीक–ठीक निशाना बनाकर उन्होंने अपना गँडासा वाला हाथ ऊपर उठाया और जैसे ही वे जोर से आघात करने वाले थे कि श्री बाबा चिल्लाकर कहा–''ठहरो ! हाथ नीचे रखो। कितने दुष्ट हो तुम ! ब्राह्मण होकर भी ऐसा कृत्य करते हो ?

काकासाहेब नम्रतापूर्वक गँडासा नीचे रखते हुए बोले,''बाबा ! आपका एक–एक शब्द मेरे लिए वेद–वाक्य की भाँति श्रद्धा की वस्तु है। किसी भी अच्छे–बुरे परिणाम का विचार न करते हुए, केवल आपकी आज्ञा शिरोधार्य करना मेरा परम कर्तव्य है। हम आपका स्मरण–ध्यान करते है और आपको प्रत्यक्ष परमेश्वर के सदृश समझते है। सारासार का विचार करना हमने छोड़ दिया है। आपके बताये हुए मार्ग पर चलने से हमारे हाथों से कोई पाप–कर्म नहीं होगा, यह हमारा दृढ़ विश्वास है। गुरू की किसी भी आज्ञा का शब्दशः पालन करना, यही हमारा कर्तव्य है और यही हमारा धर्म है।''

काकासाहेब का मार्मिक उत्तर सुनकर श्री साई महाराज बडे प्रसन्न हुए। प्रसन्नवदन उनकी ओर देखकर,'' मैं ही अब इसकी व्यवस्था करता हूँ'' कहते हुए श्री बाबा ने निकट खडे एक सेवक को यह आज्ञा दी कि बकरे को फकीरों के अड्डे पर पहुँचा दो। वह मूक प्राणी दीन वदन से चल पडा। परंतु मार्ग में आर्त स्वर से चिल्लाते हुए उसने प्राण त्याग दिये। श्री बाबा ने ऐसे विलक्षण ढंग से भक्तों की परीक्षा ली। श्री साई जैसे गुरू की आज्ञा को ही प्रमाण मानते हुए जो भक्त एक क्षण का भी विलंब न कर, उसे प्रत्यक्ष आचरण में लाने का प्रयत्न करता है, वही प्रथम श्रेणी का भक्त कहलाने का अधिकारी होता है।

शिरडी में हर रविवार को बाजार (पेंठ) लगता है। दूर–दूर के गाँवो से देहाती लोग शिरडी आते है और उस बाजार से एक सप्ताह के लिए आवश्यक जीवनोपयोगी वस्तुएँ खरीद ले जाते है। ऐसे ही एक रविवार को जब भक्त लोग श्री बाबा के पास बैठे थे तो अचानक श्री अण्णासाहेब

दाभोलकर के कोट की बाँहो में से भुने हुए चने बाहर निकल कर गिरे। श्री अण्णासाहेब बाजार नहीं गये थे और न ही उन्होंने चने खरीदे थे। भक्त लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ की एकाएक चने कहाँ से आये। तब श्री बाबा ने जानबूझ कर विनोद करते हुए कहा–''यह अण्णा तो बड़ा चालाक है। अकेले ही बाजार जाता है और चने खाता है। मैं इसकी आदत से परिचित हूँ। नहीं तो इसके पास ये चने कहाँ से आये ?''

श्री बाबा के परिहास पर विस्मय प्रकट करते हुए अण्णासाहेब ने कहा–''बाबा, मैं प्रातःकाल से अब तक कहीं भी नहीं गया। शिरडी का बाजार तो मैने आज तक नहीं देखा। और फिर कोई भी वस्तु चुपके से खरीद कर अकेले ही खाने की तो मेरी आदत ही नहीं है। मुझ पर यह वृथा आरोप क्यों ?''

श्री बाबा ने तुरंत प्रत्युत्तर दिया–''तू दूसरे को देता है, यह मुझे पता है। परंतु जब तेरे पास कोई उपस्थित नही होता, तब क्या करता है ? कोई भी वस्तु खाने से पहले तुझे मेरा स्मरण होता है ? मैं प्रत्यक्ष भक्तों के निकट रहता हूँ। क्या तू मुझे नैवेद्य देता है ?''

श्री साई की इस चने की लीला में गहन अर्थ भरा हुआ दिखाई दिया। चने प्रकट कर मानो श्री बाबा ने अपने भक्तों को एक छोटा–सा पाठ सिखाया। शारीरिक या मानसिक, किसी भी सुख का उपभोग करते हुए भक्त का मन इतना विरक्त होना चाहिये कि प्रतिक्षण उसे अपने गुरू का स्मरण रहे। किसी देवता को भोग (नैवेद्य) चढाते समय हम उस वस्तु का मोह या उसकी अभिलाषा छोड़ देते है और इस तरह पहले गुरू–चरणों में वस्तु अर्पण करने के बाद ही स्वयं उसे ग्रहण करते है। त्याग की यह कल्पना,''तेन त्यक्तेन भुज्जीथा'' यह श्रुति–वचन भक्तों के मन मे भली–भाँति दृढ़ करने के उददेश्य से ही श्री बाबा ने चने की लीला दिखाई थी।

भक्तों के प्रतिदिन के व्यवहार में रूखापन न आये, इस उददेश्य से

ही श्री साई महाराज समयोचित सात्विक विनोद अवलंबन लेते थे और हास्य उत्पन्न कर भक्तों के अंतःकरण सदैव प्रफुल्लित रखने का प्रयत्न करते थे। वयोवृद्ध सज्जन श्री अण्णा चिंचणीकर जो ८५ वर्ष की आयु पार कर चुके थे, बडी दक्षता से शिरडी संस्थान का जमाखर्च का हिसाब देखा करते थे। स्वभाव से वे कुछ गंभीर और स्पष्टवादी थे। किसी के दबाव में आने वालों में नहीं थे। श्री बाबा की उन पर कुछ ममता थी। अपनी सारी संपत्ति श्री बाबा के चरणों में अर्पण कर महान् त्याग का एक उत्कृष्ट आदर्श उन्होंने उपस्थित किया है। एक दिन दोपहर के समय जब श्री बाबा विश्राम कर रहे थे तो अण्णासाहेब श्री बाबा के निकट बैठ उनका बाँया हाथ दबा रहे थे, दाहिनी ओर वेणुबाई नामक एक स्त्री थी श्री बाबा की पीठ पर मालीश–सी कर रही थी मानो श्री बाबा की पीठ और पेट एक ही करना चाहती हो। उसकी पीठ मलने की क्रिया से श्री बाबा का शरीर भी लगातार हिल रहा था। अण्णासाहेब शांतिपूर्वक अपना कर्म कर रहे थे। इस घबराहट में अण्णासाहेब का सिर वेणूबाई के गाल से जा ठकराया। मजाक करते हुए वृद्धा ने तडाक से कहा–"यह अण्णा तो बड़ा ही नटखट है। मेरे गालों का चुंबन करना चाहता है। इतना बूढ़ा होने के बावजूद इसे लज्जा नहीं आती ?" वेणुबाई के ये शब्द सुनते ही अण्णासाहेब की क्रोधाग्नि भडक उठी। क्रोध से लाल–पीले होकर और अपने कुरते की बाँहे ऊपर उठाते हुए वे गरज कर बोले–"मुझे बूढ़ा कहती हो ? अकारण मुझे छेड़कर मेरा क्रोध न बढ़ाओ।"

अकस्मात ही कढ़ी में जो उफान आया तो वहाँ उपस्थित लोगों मे हँसी का फव्वारा फूट पड़ा। सभी लोग हँसते–हँसते लोट–पोट हो गए। दोनों की भक्तों पर श्री साई महाराज का निर्मल प्रेम था, इसलिए दोनों को सन्तुष्ट करने के उददेश्य से श्री बाबा ने चतुराई से, पर साथ ही मार्मिक शब्दों से कहा–"अरे अण्णा, ऐसे ही बात का बतंगड क्यो बनाते हो ? यदि अपनी बूढी माँ का उसके बेटों ने वात्सल्य भाव से चुंबन कर भी लिया तो क्या

हुआ और उसमें हानि भी क्या है ?" श्री बाबा के इस प्रासंगिक और समयोजित विनोद से सारी द्वारकामाई आनंदाश्रुओं में डूब गई।

श्री बाबा भक्तों को उनकी इच्छानुसार बर्ताव करने की स्वतंत्रता देते थे। भक्तों के मार्ग में किसी के द्वारा रूकावट डालना या उन्हें उनके मार्ग से पंरागमुख करना उन्हें पंसद नही था। ऊपर जिन वेणुबाई का उल्लेख हुआ है, वह एक दिन जोर से श्री बाबा का पेट मल रही थी। उनकी वह हास्योत्पादक मुद्रा देखकर एक भक्त को कुछ दुःख हुआ और उसके वेणुबाई को जरा सावधानी से पेट मलने का परामर्श दिया। श्री बाबा एकाएक कोधित हो उठे। उनकी आँखो से आग बरसने लगी। समीप ही रखा हुआ अपना तीन फीट लम्बा लकडी का डंडा उठाकर उन्होंने अपने पेट में जोर से धुपा लिया और सामने के खम्भे में उसका दुसरा छोर अड़ाकर वे उस डंडे को पेट में अधिक से अधिक गहराई तक घुसाने का प्रयत्न करने लगे। सब उपस्थित भक्त लोग इस भय से कि बाबा का पेट फट ना जाए, किंकर्तव्यविमूढ़ होकर खड़े रह गए। श्री बाबा क्रुद्ध होकर लगातार खम्मे की ओर बढ़ते ही जा रहे थे। उनका पेट खम्भे के स्पर्श कर गया और सारा डंडा पेट में घुसा हुआ दिखाई देने लगा। कुछ देर बाद श्री बाबा का कोप शान्त हुआ और उन्होंने वह डंडा झटके के साथ बाहर फेंक दिया। इस घटना के पश्चात् किसी भी भक्त ने श्री बाबा के मार्ग में बाधा डालने का कभी साहस न किया। उसी क्षण से शिरडी में यह नियम हो गया कि प्रत्येक भक्त अपनी इच्छानुसार श्री बाबा की सेवा करें।

भक्त लोगों की विभिन्न मनोवृत्तियों के कारण शिरडी में एक प्रकार की विचित्र स्वभावों की प्रदर्शनी सी लगी दिखाई देती थी। पर सभी भक्तों के साथ श्री बाबा कितनी निर्लिप्त बुद्धि से व्यवहार करते थे, यह बात सचमुच ध्यान देने योग्य है। शिरडी में रामनवमी का उत्सव बड़ी धूमधाम से आरम्भकराने वाले और जरी के ध्वज के साथ जुलूस निकलवाने वाले

व्यापारी, सेठ दामूअण्णा के मन में एक दिन यह संकल्प उठा कि रूई का सट्टा खेलूँ और लाखों की सम्पत्ति का स्वामी बन जाँऊ। मन मे यह विचार उत्पन्न होते ही उन्होंने श्री बाबा को पत्र लिखा और उनकी आज्ञा माँगी। श्री बाबा ने निस्पृहता से तथा बिना संकोच के दामूअण्णा को उपदेश दिया कि–"यह जुए का मार्ग पतन का मार्ग है। प्रत्येक मनुष्य को परमेश्वर की दी हुई आधी रोटी से संतुष्ट रहने का प्रयत्न करना चाहिए।" इस उत्तर से दामूअण्णा को घोर निराशा हुई; क्योंकि उसे पूर्ण विश्वास था कि व्यापारिक दृष्टिकोण से उसने जो योजना बनाई थी, उसमें उसे कोई हानि होने की किंचित भी आशंका नही थी, वरन् अगणित लाभ होने का ही उत्तम योग था। व्यापार में अवसर देखकर कार्य करना पड़ता है। श्री बाबा के उपदेश से दामूअण्णा को संतोष न हुआ और श्री बाबा से प्रत्यक्ष भेंट कर उन्हे मनाने के उददेश्य से वह शिरडी जा पहुँचा। पर वहाँ पहुँच कर श्री बाबा के सम्मुख प्रश्न उपस्थित करने का उसे साहस ही न हुआ। पंरतु उसके मन में बार–बार यही विचार उठ रहा था " यदि उस सौदे में कुछ फायदा हुआ तो उस में से कुछ भाग श्री बाबा को भी अर्पण करूँगा" यह विचार भी सहसा उसके मन में उत्पन्न हुआ। परंतु जो बात मन में थी, उसे श्री बाबा के सामने मुँह पर लाने में बराबर झिझक होती रही। श्री बाबा ने दामूअण्णा के मन में उत्पन्न हुआ विचार स्पष्ट जानते हुए सब लोगों के समक्ष कहा "बापू, इन सासंरिक, ऐहिक बातों के चक्कर में पड़कर स्वयं उलझने की मुझे इच्छा नहीं है।" श्री बाबा का यह उत्तर सुनकर दामूअण्णा ने सटट् का विचार त्याग कर श्री बाबा से प्रश्न किया,–"तो क्या मै अनाज का व्यापार कर सकता हूँ ?" इस पर श्री बाबा ने अजीब सा उत्तर देते हुए कहा–"एक रूपये के पाँच सेर के भाव से खरीद कर रूपये के सात सेर के भाव से बेचेगा" श्री बाबा द्वारा अनाज के व्यापार में भी हानि होने की संभावना प्रकट होने पर दामूअण्णा ने वह विचार भी छोड़ दिया ओर चुप्पी साध ली। उसके अन्य

व्यापारी मित्रों ने अनाज एकत्रित किया। उसी वर्ष सर्वत्र पर्याप्त वर्षा हुई और अनाज का भाव एकाएक गिर गया। दामूअण्णा के सभी व्यापारी मित्रों को बड़ा घाटा सहन करना पड़ा। दामूअण्णा का सोचा हुआ सुरक्षित रूई का सट्टा भी इसी प्रकार लोगों के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ और दामूअण्णा के शेअर बाजार के सहकारी व्यापारी भी बरबाद हो गए। दामूअण्णा को पूर्णतया विश्वास हो गया कि श्री बाबा ने ही उसकी रक्षा की और वह उनका एकनिष्ठ भक्त बन गया।

आगे दामूअण्णा को श्री बाबा की भक्ति करने और दृढ विश्वास रखने से उत्तम फल प्राप्त हुआ। व्यापार में दामूअण्णा उत्तरोत्तर उन्नति करने लगा। उसे प्रचुर संपत्ति प्राप्त हुई। उसकी दो पत्नियाँ थी; पर एक से भी संतान न हुई। एक बार गोवा के एक भक्त ने बहुत बढ़िया किस्म के तीन सौ आम श्री बाबा के पास भेट स्वरूप भेज दिये। "दाने–दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम", इस कहावत के अनुसार श्री बाबा ने यह कहते हुए कि ये दामूअण्णा के लिए है, चार आम टोकरी में से उठाये और बाकी आम शामा के सुपुर्द कर उन्हें भक्तों में बाँटने की आज्ञा दे दी। संध्या के समय अचानक दामूअण्णा श्री बाबा के दर्शनों के लिए आया। दामूअण्णा के हाथों में चार फल रखकर आशीर्वाद देते हुए श्री बाबा ने कहा–"ये चार आम अपनी छोटी पत्नी को खिला दो। इन आम्र फलों के सेवन से उसे चार पुत्र और चार कन्याएँ होगी।" इससे पूर्व ज्योतिषियों ने दामूअण्णा को भली प्रकार बताया था कि उसकी जन्मपत्री में नीच ग्रह होने के कारण वह एक भी पुत्र–संतान का सुख नहीं पायेगा। दामूअण्णा ने श्री बाबा की आज्ञा का पालन किया और भविष्य में श्री बाबा के वचन ही सच निकलने का उन्हें प्रमाण मिला। ज्योतिषिजी की भविष्यवाणी निरर्थक सिद्ध हुई। श्री साई महाराज के शब्दों में इतना विलक्षण सामर्थ्य होता था। समाधि काल से कुछ दिन पहिले श्री बाबा ने अपने भक्तों को निकट बुलाकर अधिकायुक्त वाणी से कहा था–"मैं

यह नश्वर देह छोड़कर जा रहा हूँ। परंतु आप दुःख न करे। मेरी समाधि में मेरी अस्थियाँ आपको स्फूर्ति तथा पूर्ण आत्मविश्वास प्रदान करेंगी। मेरी शरण में आये हुए भक्तों के साथ मैं समाधि में से भी संभाषण करूँगा और विचार–विनिमय के पश्चात् उन्हें जो योग्य है, वही मार्ग बताऊँगा। मैं सदा आपके सान्निध्य में हूँ, यह भावना अपनाए हुए कार्य में आपको अपयश का मुँह नही देखना पडेगा।''

श्री साई जैसे सद्गुरू की पूजा किसी प्रकार करनी चाहिये, इसका हेमाडपंत ने अपने ग्रंथ में सुंदर विवेचन किया है। हेमाडपंत कहते है–''श्री बाबा की पाद्य–पूजा करते समय नयनों से प्रेमाश्रुओं के बिंदु गिरने दीजिये। पवित्र प्रेम के चंदन से उनके ललाट पर तिलक लगाईये। पवित्र भक्ति की चादर उन्हें उढ़ाइये। सात्विक विचारों के फल–पुष्प उन्हें अर्पण करने का प्रयत्न कीजिये। इससे श्री साई संतुष्ट होंगे और अपने भक्त पर प्रसन्न होंगे। श्री साई की पूजा के लिए नवरत्नों, इत्र–गुलाबदानी अथवा फल–फूलों की, किसी की भी आवश्यकता नहीं है। श्री साई सच्चे प्रेम और भक्ति के भूखे है। मन में किंचितमात्र भी विकल्प आया तो घबराने का या संशयग्रस्त होने का कारण नही। श्री साईं सब कुछ संभाल लेंगे और योग्य मार्ग दिखलायेंगे।''

मित्रों के आग्रहवश पंत नामक एक सज्जन शिरडी गए थे। उन्होंने एक अन्य माने हुए व्यक्ति से गुरू–मंत्र लिया था और उनकी अपने गुरू में पूर्ण श्रद्धा थी। केवल मित्रों के संग ही वह बुलाते ही अप्रसन्नता से शिरडी गये थे। लेकिन द्वारकामाई में दर्शन के समय वहाँ का गंभीर दृश्य देखकर पंत के मन पर एकदम गहरा प्रभाव पड़ा और वे देखते देखते मूर्च्छित होकर गिर पड़े। श्री साई महाराज की ऊदी तथा कमंडल के जल से वहाँ उपस्थित भक्तों ने पंत की बेहोशी दूर की। श्री बाबा ने पंत के मस्तक पर हाथ रखते हुए कहा–''अरे पागल, ऐसे घबराते क्यों हो ? कहीं भी किसी भी दर्शन के लिए जाओ; पर, श्रद्धा केवल अपने गुरू में ही रखो। एक ही व्यक्ति के चरणों

में मन स्थिर करो। और मन में उसी व्यक्ति के प्रति भक्ति भाव रखो। जाओ।"

श्री साई महाराज अन्य सन्तों और माने हुए व्यक्तियों का कितना सम्मान करते थे, यह बात इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है। नित्य का अनुभव तो यही होता है कि हर एक व्यक्ति दूसरों की निंदा कर अपने ही बडप्पन का प्रदर्शन करने में व्यस्त रहता है। परंतु श्री बाबा तो इतनी क्षुद्र मनोवृत्ति के नहीं थे। उनका मन गौतम बुद्ध के सदृश बहुत ही उँचे स्तर पर स्थिर हुआ था। वे समकालीन महान विभूतियां को हृदय से मान देते थे और उनके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करते थे।

कई वर्षो के पश्चात् प्रसिद्ध संत श्री भापकर महाराज का बम्बई में आगमन हुआ था। नानासाहेब पिटकर आदि उनके भक्तों ने बड़े आग्रह के साथ उन्हें बम्बई में दो दिन रहने के लिए आतुर हो रहे थे। उनका पूर्व निश्चित दिन पर शिरडी पहुँचना आवश्यक था; क्योंकि दूर परदेश में रहने वाले अपने पुत्र को उन्होंने पत्र द्वारा संदेश भेजा था कि वह अमुक दिन शिरडी में श्री साई बाबा के पास पहुँच जायें और वे स्वयं भी उसी दिन उपस्थित रहेंगे। परंतु वे बम्बई में अपने भक्तों का आग्रह न टाल सके। उनका वश न चला और वे चुप रहे। पूर्व निश्चय के अनुसार उनका पुत्र शिरडी पहुँचा; पर वहाँ किसी से जान–पहचान न होने के कारण वह अकेला ही एक कोने में चुपचाप बैठ कर अपने पिताजी की प्रतीक्षा करने लगा। आरती प्रारंभ होने के पूर्व श्री बाबा का ध्यान भापकर महाराज के पुत्र की ओर आकृष्ट हुआ और अन्तर्ज्ञान से यह जानते हुए कि यह किसका लड़का है, उन्होंने उसे अपने पास बुलाया और भक्तों की ओर अभिमुख होकर कहा,–"अरे, इस लड़के के पिता की योग्यता तो बढ़ी चढ़ी है। वे स्वयं यहाँ आने वाले थे; पर वे अपने भक्तों की इच्छा का अनादर न कर सके। अब हमें उनका यथा–योग्य सम्मान करना ही चाहिये। आज के दरबार में इस गद्दी

पर इस लडके को बैठाओ और उसका उचित आदर–सत्कार करो।" श्री बाबा की इच्छानुसार भक्तों ने लड़के की पूजा की आरती उतारी। श्री साई का हृदय कितना विशाल था ! भापकर महाराज एक माने हुए संत थे, इसी कारण श्री बाबा ने उनका उचित रूप से सत्कार किया।

आबकारी विभाग में बहुत वर्षो तक सेवा करने के पश्चात् सेवानिवृत्त हुए श्री गोपाल नारायण अंबाडेकर का अनुभव भी यहाँ उल्लेखनीय है। ठाणा जिले में तथा जवहार संस्थान में कार्य करने के पश्चात उनकी आर्थिक स्थिति दिनों–दिन बिगडती गई। यहाँ तक कि अन्त में उन्होंने जीवन से तंग आकर शिरडी में श्री साई महाराज के चरणों में शरण ली। सन १९१६ का समय था। अपने दुःखी जीवन से ऊब कर अंबाडेकर ने विवश होकर आत्महत्या का अन्तिम मार्ग–स्वीकार किया और एक रात्रि को मन में पूर्ण निश्चय कर शिरडी के समीप ही एक कुएँ में डूब कर प्राण देने की पूरी तैयारी से वे निकल पड़े। श्री साई देखने में तो उनकी उपेक्षा कर रहे थे। गोपालराव किसी को भी सूचित किये बिना आत्महत्या के लिए कुएँ के निकट पहुँचे। ठीक उसी समय कुएँ के समीप एक भोजनालय का स्वामी, जिसका नाम सगुण मेरू नायक था, अचानक बाहर आया और उसने गोपालराव को देखकर कहा–"अजी, गोपालराव, आप यह अक्कलकोटकर महाराज का जीवन–चरित्र अवश्य पढ़िये। बहुत ही सुन्दर पुस्तक है।" गोपालराव ने अपना निश्चय त्याग दिया और सगुण से पुस्तक ले ली। पुस्तक पढ़ते समय उन्होंने सहसा एक अद्‌भूत प्रसंग पढ़ा। इसे केवल संयोग की बात नहीं कह सकते। श्री साई की अद्‌भूत लीला का ही वह एक प्रकार था। पुस्तक के उस प्रसंग में अक्कलकोटकर महाराज के एक भक्त के जीवन में जो घटना घटी थी, उसी का वर्णन था। वह भक्त जब जीवन से निराश होकर आत्महत्या करने के लिए उद्यत हुआ तो अक्कलकोटकर महाराज ने उसे कुएँ के अनुसार ही तुम्हें इस जन्म में भी भली–बुरी स्थितियों का सामना करना

होगा। आत्महत्या जैसा भयानक कर्म करने से तुम्हें निवृत्ति नहीं मिल सकती। वरन् अगले जन्म में तुम्हें इससे भी अधिक कष्ट उठाना पडेगा। इसीलिए इस जन्म में कर्मानुसार प्राप्त दुःख को इसी जन्म में भोगने में बुद्धिमत्ता और समझदारी है। कम से कम अगले जन्म में तो तुम सुख भोग सकोगे।

अपनी परिस्थिति से मिलते–जुलते प्रसंग का वह वर्णन और अक्कलकोटकर महाराज जैसे माने हुए संत का उपदेश पढ़कर गोपालराव का उद्विग्न मन भी शांत हुआ और झंझावत मैं डगमगाती हुई उनकी जीवन–नैया सुरक्षित किनारे आ लगी। श्री साई महाराज की यह लीला कितनी विलक्षण है ! गोपालराव के पिता अक्कलकोटकर महाराज के भक्त थे। श्री साई महाराज ने सगुण के द्वारा उन्हें अपने गुरू का स्मरण भी दिलाया और उसी सद्‌गुरू की भक्ति करने का उन्हें आदेश दिया।

=========

सत्रहवाँ अध्याय
स्वप्न में साक्षात्कार

समुद्र–स्नान से सब तीर्थो एवं पवित्र नदियों मे स्नान करने का पुण्य प्राप्त होता है। इसी प्रकार लोगों में यह धार्मिक भावना है कि सत्पुरूष के समागम से अपने धर्म के सभी पवित्र ग्रन्थों के अध्ययन का पुण्य लाभ होता है। फिर भी श्री साई महाराज जैसे अवतारी सत्पुरूष अपनी श्रेष्ठता को स्वीकार न करते हुए, भक्तों से नये–नये पवित्र धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करने का आग्रह करते थे। शिरडी में भक्त–अपनी रूचि का धर्म–ग्रन्थ श्री बाबा के पास ले आता था और वह उनके कर–कमलों के स्पर्श से पुनीत हुए उस पवित्र धार्मिक ग्रन्थ को नित्य की पाठ पूजा के लिए घर ले जाया करता था। श्री साई का आशीर्वाद प्राप्त होते ही, भक्तों के हृदयों से स्वतः दिव्य स्फूर्ति का संचार होता था और ग्रंथों के कठिन–से–कठिन वचन भी सरलता से बुद्धि गम्य होते थे। श्री बाबा के कर स्पर्श से पुनीत ग्रंथों द्वारा भक्तों को श्री बाबा के प्रत्यक्ष सहवास का लाभ प्राप्त होता था। एक बार काका महाजनी ने 'एकनाथ भागवत' नामक ग्रन्थ लाकर श्री बाबा के हाथों मे रख दिया। श्री बाबा ने ग्रन्थ के पृष्ठों को उलटपुलट कर देखा और इस पर कुछ संस्कार डाल दिए। फिर उन्होंने वह ग्रन्थ स्वयं अपने हाथों से शामा को देकर उसे पढ़ने की आज्ञा दी। शामा ने ग्रन्थ स्वीकार करने में आनाकानी की। तब श्री बाबा ने कहा–" इस क्षण यह ग्रन्थ काकासाहेब को देना मैं उचित नहीं समझता। यह अपने पास ही रखो।" इसके पश्चात जब काकासाहेब ने पुनः ग्रन्थ प्राप्त करने के लिए प्रयत्न किया तो श्री बाबा ने ग्रन्थ लौटा कर आशीर्वाद देते हुए कहा–"अब यह भागवत ग्रन्थ भली–भाँति यत्नपूर्वक रखो और इसका नित्य पारायण करो। तुम्हारा उद्धार होगा।"

एक बार एक रामदासी शिरडी आया और श्री बाबा के सम्मुख उसने 'अध्यात्म–रामयण' तथा 'श्रीविष्णुसहस्त्रानाम' का पारायण करना आरम्भ किया। बहुत दिनों तक उसका यह क्रम चलता रहा। एक दिन सहसा श्री बाबा को न जाने क्या धुन सवार हुई कि उन्होंने रामदासी बुवा को अपने निकट बुलाया और कहा–"अरे, मेरे पेट में नित्य पीड़ा रहती है। पाचन क्रिया भी दूषित है। तुम बाजार जाओ और सोनामुखी ले आओ।" श्री बाबा की आज्ञानुसार अपनी पोथियों को समेट कर रामदासी बाजार की ओर चल पड़ा। श्री बाबा ने तुरन्त ही उसकी पुस्तकों के संग्रह में से 'श्रीविष्णुसहस्त्रनाम' निकाला और उसे शामा को देते हुए उन्होंने कहा–"देखो शामा, यह पुस्तक अत्यन्त मूल्यवान तथा उपयोगी है। एक बार मेरा हृदय धड़कने लगा और मेरे प्राण व्याकुल हो उठे। उन कठिन क्षणों में मैंने यही ग्रन्थ हृदय से लगा लिया और मुझे अत्यधिक लाभ हुआ, मानो प्रत्यक्ष परमेश्वर का ही मुझे दर्शन हुआ हो। इस ग्रन्थ की महत्ता कुछ ऐसी ही है। तुम्हारे जैसे भक्त को इस ग्रन्थ के परिशीलन से बहुत लाभ होगा। नित्य एक श्लोक पढ़ने का भी तुम प्रयत्न करोगे तो भी तुम्हारा उददे्श्य सफल होगा।"

शामा ने बहुत कहा कि "पुस्तक रामदास की है। वह नाहक मुझ से क्रुद्ध होगा और पुस्तक की भाषा संस्कृत है। इसलिए यह मेरे लिए सर्वथा अनुपयुक्त सी है," पर श्री बाबा ने उसकी एक बात भी न मानी। रामदासी के लौटने पर नारद मुनि की भाँति अण्णासाहेब चिंचणीकर ने उसमें और शामा में झगड़े की नींव डाली। रामदासी के क्रोध की सीमा न रही और वह शामा को बुरा–भला कहने लगा। रामदासी के मुँह से निकले हुए अपशब्द सुनकर श्री साई महाराज शान्तिपूर्वक बोले–"अरे, तुम इतने क्रुद्ध क्यों हो रहे हो ? मैने ही वह पुस्तक शामा को दी थी। शामा ने कोई अपराध नहीं किया। फिर शामा अपना ही तो बच्चा है। उसने पुस्तक पढ़ी तो क्या हुआ ? तुम्हारे जैसे रामदास स्वामी के सम्प्रदाय में पले हुए मनुष्य को यह भी ज्ञात नहीं कि

विनम्र और मृदु भाषा में कैसे बोलना चाहिए ? जब तुम इस छोटे से ग्रन्थ का मोह नही त्याग सकते तो तुम समता का महान् तत्व कैसे ग्रहण कर सकोगे ? एक ही क्या, ऐसे हजारों ग्रन्थ तुम्हें मिल सकते है। परन्तु यदि किसी मनुष्य का मन टूट जाता तो उसे पुनः जोड़ने में कठिनाई होती है। शांत होकर विचार करो, ताकि तुम्हें यह ज्ञात हो जाये कि तुम्हारी यह चेष्टा कितनी मुर्खतापूर्ण थी।"

श्री साई के इस उपदेश का रामदास बुवा पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने श्री बाबा से क्षमा–याचना की और शामा से अपने ग्रन्थ के बदले 'पंचरत्न गीता' प्राप्त कर उसका अध्ययन करना आरम्भ किया। संस्कृत का लेशमात्र ज्ञान न होते हुए भी शामा 'श्रीविष्णुसहस्त्रानाम' बिना रोक–टोक शुद्ध रूप से पढ़ने लगा और कुछ दिनो बाद उसने प्रो. नारके के समक्ष ग्रन्थ के कुछ संस्कृत वाक्यों का सुबोध अर्थ भी स्पष्ट कर दिया। यह सब श्री बाबा की कृपा–दृष्टि का ही फल था।

ब्रम्ह–विद्या का अध्ययन करने वाले किसी भी व्यक्ति के प्रति श्री साई विशेष आदर तथा स्नेह व्यक्त करते थे। बापूसाहब जोग के नाम पूना से पुस्तकों का एक पार्सल आया था। बापूसाहब ने पार्सल श्री बाबा के सामने रख दिया। एक ग्रन्थ के ऊपर लिपटा हुआ कागज फाड़ते समय भूल से वह ग्रन्थ श्री बाबा के चरणों पर गिर गया। यह देखकर कि वह लोकमान्य तिलक द्वारा लिखित 'गीता रहस्य' है श्री बाबा ने अत्यन्त श्रद्धा के साथ वह ग्रन्थ उठाया। थोड़ी देर सरसरी तौर से उस पुस्तक को देखा और जेब से चाँदी का एक रूपया निकालकर पुस्तक पर रख कर उसे लौटाते हुए जोग से कहा–"बहुत ही उत्तम ग्रन्थ है। इसको पूरा पढ़ो। तुम्हें अवश्य लाभ होगा।"

किसी की सुयोग्यता का ठीक–ठीक अनुमान लगाने के पश्चात ही श्री बाबा उससे किसी ग्रंथ का मनन अथवा अध्ययन करने के लिए कहते थे।

उद्भट विद्वान पंडित भी श्री बाबा के सामने नम्रता धारण करने के लिए बाध्य होते थे। इस प्रसंग से अमरावती के प्रसिद्ध वकील दादासाहब खापर्डे का उदाहरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दादासाहब खापर्डे का जन्म एक धनी कुल में हुआ था। वे एक विद्वान सद्गृहस्थ थे। दिल्ली की 'कौन्सिल ऑफ स्टेट' के वे सदस्य थे। दादासाहब का संस्कृत ग्रंथो का अध्ययन भी बड़ा गहरा था। वेदान्त का गम्भीर अध्ययन करने वाले इस व्यक्ति का शिरडी में श्री साई महाराज के समक्ष हाथ जोडकर विनम्र भाव से खडे रहना जिन महाभागो ने देखा है, उन्हें श्री साई की योग्यता का कुछ अनुभव हो सकेगा। श्री साई महाराज एक ऐसे सत्पुरूष थे। जिन्हें आत्म–साक्षात्कार हो चुका था और पूर्ण ब्रम्ह में उनकी स्थिति थी। इसलिए खापर्डे जैसे माने हुए विद्वान भी उनके चरणों में झुकते थे और उनसे अपने मन की शंकाओं का निराकरण करा लेते थे।

सात्विक वृत्ति रखने वाली दादासाहब की धर्मनिष्ठ पत्नी पर श्री बाबा का विशेष स्नेह रहा। उसके भेजे हुए प्रसाद पर श्री साई एक क्षुधार्त की भांति टूट पड़ते थे। एक दिन शामा ने श्री बाबा से स्पष्ट पूछा–"गरीब भक्त द्वारा अर्पण किया हुआ प्रसाद तो आप दूर रख देते है; पर श्रीमती खापर्डे की नैवेद्य की थाली तो आप झपट लेते है। यह पक्षपात क्यों ?"

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री साई ने कहा–'"अरे, इस अन्न की महत्ता कितनी अधिक है। इसकी तुम कल्पना भी नही कर सकते। पिछले जन्म में यह स्त्री एक धनी व्यापारी की प्रचुर मात्रा में दूध देने वाली गौ थी। इसके पश्चात इसने एक माली के घर जन्म लिया। फिर एक क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर एक सम्पन्न व्यापारी के साथ विवाह किया और अब इस जन्म में ब्राहम्ण–कुल में इसका जन्म हुआ है। पूर्व जन्मों की इतनी लम्बी कालावधि के पश्चात अब मैं इसे देख रहा हूँ। इसके लाये हुए अन्न पर यदि मै टूट पड़ूँ तो क्या आश्चर्य है ? यह समुचित उत्तर देकर श्री बाबा ने श्रीमती

खापर्डे और शामा को प्रसाद के रूप में कुछ फल दे दिये। श्री बाबा की बात सुनकर श्रीमती खापर्डे को भी बडा आनंद हुआ और शुद्ध पवित्र भावना से वह श्री बाबा की सेवा करती हुई वही बैठी रही।''

श्रीमती खापर्डे श्री बाबा के चरणों में लौट रही थी। धीरे–धीरे दोनों की बातें भी हो रही थी। वार्तालाप के बीच में श्री साई भी श्रीमती खापर्डे का हाथ दबा रहे थे। निकट बैठे हुए शामा को यह दृश्य देख कर हँसी आई और उसने कहा–''शिष्य गुरू की सेवा करता है; परंतु आज तो मै देख रहा हूँ कि गुरू भी शिष्य की सेवा में व्यस्त है।''

श्री बाबा ने शामा के शब्दों की ओर तनिक भी ध्यान देते हुए श्रीमती खापर्डे के कानों में धीरे से 'राजाराम, राजाराम' शब्दों का उच्चारण किया और उसे अपने निकट बुलाकर कहा–''तुमने नित्य इतना भजन भी किया तो तुम्हे सद्‌गति प्राप्त होगी और तुम्हारा जन्म–जन्मान्तरों के लिए कल्याण होगा।''

सामान्य मनुष्य श्री बाबा के इस आचरण का अर्थ नहीं समझ सकता। सिद्ध पुरूष भक्तों को कल्याण का वही मार्ग दिखलाते है, जो उनके अनुकूल है। यह एक प्रकार का ''शक्तिपाठ्'' है। इस आचरण द्वारा वे अपने शरीर में स्थित दिव्य शक्ति का भक्त की देह में प्रवेश कराते है और उन्हें ऊँचे आध्यमिक स्तर पर ले जाते हुए मन की एकग्रता प्राप्त करने का उपाय बताकर असामान्य ज्ञान प्राप्त करा देते है। गुरू और शिष्य के बीच छोटा–बड़ा होने का भेद–भाव दूर हो गया, पवित्र भक्ति तथा प्रेम से उनमें एक रूपता स्थापित हो गई तो उनमें विद्यमान स्त्री–पुरूष का भेद सहज ही नष्ट हो जाता है। सभी प्राणियों में वास करने वाला आत्मा एक ही महान शक्ति का छोटा सा अणु है, यह महान तत्व उनके अंतःकरण में धुल जाता है और अगम्य, अगोचर विश्वकर्ता की अगाध शक्ति का उन्हें ज्ञान प्राप्त होता है।

दूर रहने वाले भक्त को भी अपनी ओर खींचकर लाने की श्री साई

की अतर्क्य शक्ति सचमुच ही मतिमूढ़ करने वाली है। बम्बई में नौकरी–पेशा अपनाकर समय व्यतीत करने वाले लाला लक्ष्मीचन्द को स्वप्न में एक दिन एक फकीर दिखाई दिया। स्वप्न में प्रकट हुए फकीर को उन्होंने पहले कभी न देखा था। इसलिये लाला जी असमंजस में पड़ गये। एक दिन वे अपने एक मित्र के घर दासगणूजी का कीर्तन सुनने गये। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त तुकाराम महाराज के सम्बन्ध में कथा चल रही थी। अपनी पद्धति के अनुसार दासगणूजी ने श्री साई महाराज का चित्र अपने सम्मुख रखा हुआ था। लक्ष्मीचंद का ध्यान चित्र की ओर गया तो उसे भान हुआ कि स्वप्न में प्रकट हुये फकीर श्री साई महाराज ही थे। अतः मार्ग व्यय के लिए भाई से पन्द्रह रूपये उधार माँगकर लक्ष्मीचंद एक मित्र को साथ लेकर शिरडी पहुँचे। रेल से यात्रा करते समय दोनों मित्र भजन करते रहे। स्टेशन पर पहुँचते ही शिरडी से लौटे हुए कुछ मुसलमान फकीरों से लक्ष्मीचंद ने श्री बाबा के सम्बन्ध में पूछताछ की उन राहगीरों ने श्री साई की मुक्त कंठ के प्रशंसा की। अब तो लालाजी श्री साई के दर्शनों के लिए बहुत ही उतावले हो गयें। उन्होंने मन में सोचा कि श्री बाबा को भेंट स्वरूप देने के लिए कुछ अमरूद खरीदकर ले जाना अच्छा होगा। परंतु ढूँढने पर भी उन्हें अमरूद न मिले। लालाजी ने उनका विचार ही त्याग दिया। जब वे ताँगे से शिरडी गाँव में प्रवेश कर रहे थे, तभी एक वृद्धा स्त्री सिर पर टोकरी लिए दौड़ती हुई आई। उसकी टोकरी में अमरूद देखकर लालाजी को महान आश्चर्य हुआ। उन्होंने कुछ फल खरीद लिए। फल बेचने वाली ने बचे हुए सारे फल भी श्री बाबा के प्रति अर्पण करने का आग्रह किया। उस भोली–भाली स्त्री का श्री बाबा के प्रति यह भाव देखकर लाला लक्ष्मीचंद दंग रह गये और श्री बाबा की लीला पर वे विस्मय–विमुग्ध रह गये। द्वारकामाई में श्री साई का दर्शन होने के पश्चात् लालाजी को अपने जीवन की सार्थकता का पूर्ण अनुभव हुआ और वे हर्ष–विभोर हो उठे। श्री साई महाराज ही उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर

अपने चरणों तक खींच लाये थे। लक्ष्मीचंद ने जब श्री बाबा के चरणों में फल–फूल चढ़ाये तो श्री साई ने उनकी ओर घूरकर देखते हुए अन्य उपस्थित भक्तों से कहा–"लोग भी कितने चालाक होते है। गाड़ी में भजन करते है और साथ ही साथ आने जाने वाले लोगों से पूछताछ भी करते है। दूसरो से पूछने की क्या आवश्यकता ? प्रत्यक्ष यहाँ आ जायें और अपना समाधान कर लें। अपना स्वप्न सच्चा है कि नही, इसकी जाँच पड़ताल कर लें। मारवाड़ी से रूपये उधार लेकर स्वप्न में देखे हुए फकीर का दर्शन करना केवल मूर्खतापूर्ण नहीं है क्या ? पता नही, अब भी उसके अन्तःकरण की इच्छा पूर्ण हुई है या नहीं।"

श्री बाबा के इन उद्‌गारों से लालाजी को उनकी दिव्य अन्तर्ज्ञान की शक्ति तथा मन की विशालता का अनुभव न हुआ हो तो सचमुच ही आश्चर्य की बात कही जा सकती है ! लक्ष्मीचंद के मन में फिर भी कुछ शंका बाकी रह गई थी, इसलिए ही श्री बाबा ने और दो चमत्कार कर दिखाये। एक भक्त नैवेद्य–स्वरूप घी का बनाया हुआ हलुआ लाया था। लालाजी को हलुआ खाने की तीव्र इच्छा हुई। पर, श्री बाबा के समक्ष वे अपनी इच्छा प्रदर्शित करने का साहस न कर सके। वे चुप बैठे रहे। दूसरे दिन जब बापूसाहब जोग ने श्री बाबा से पूछा कि 'प्रसाद के लिए कौन–सा पदार्थ बनवा कर लायें। तो श्री बाबा ने लक्ष्मीचंद की ओर देखते हुए कहा–"आज अच्छा खासा घी का हलुआ बना कर लाओ ओर प्रसाद के तौर पर इस लक्ष्मीचंद को भी खूब पेट भर कर खिला दो।"

उसी दिन श्री बाबा का स्वास्थ कुछ अच्छा नहीं था। वे कफ के प्रकोप से पीड़ित थे। लक्ष्मीचंद के मन में यह विचार आया कि श्री बाबा को किसी की नजर लग गई है। यह विचार उन्होंने अपने मन में गुप्त ही रखा था। द्वारकामाई में पधारने पर भक्तों की ओर दृष्टिपात करते हुए श्री बाबा ने कहा–"कुछ लोगों की दृष्टि बहुत बुरी होती है। कुछ भक्तों को तो यह

डर है कि कल से मै किसी की कुदृष्टि का शिकार हुआ हूँ। सम्भव है, इसी कारण मेरे स्वास्थ्य में कुछ बिगाड़ उत्पन्न हुआ है।"

इस प्रकार की लीलाएँ बार–बार अनुभव कर लालाजी को पूर्ण विश्वास हो गया कि श्री साई साक्षात् परमेश्वर है और वे उनके परम भक्त बने गये। लालाजी को जैसे ही ज्ञात होता कि श्री साई बाबा का कोई भक्त शिरडी जा रहा है तो उसके साथ फल–फूल, दक्षिणा आदि भेजने में कभी नहीं चुकते थे।

शिरडी में भक्त लोगों का आना–जाना जैसे–जैसे बढता गया, वैसे–वैसे ही श्री बाबा के सच्चे श्रद्धालु भक्तों की कठिनाईयाँ भी उसी अनुपात में बढ़ती गई। बुरहानपुर की एक स्त्री स्वप्न में श्री बाबा का साक्षात्कार पाकर शिरडी पहुँची थी। स्वप्न में प्रगट होकर भी साई ने उस स्त्री को खिचड़ी की याचना की थी। अपने पति को तैयार कर उसके उनके हाथ श्री बाबा के प्रति अर्पण करने के लिए नित्य–प्रति खिचड़ी का नैवेद्य भेजना आरम्भ किया। परन्तु भक्तों की अपार भीड़ के कारण नैवेद्य की थाली कभी भी बाबा तक न पहुँच सकी। चौदह दिन तक उसने बराबर प्रतीक्षा की। आखिर वह अपने मन को नियंत्रण में न रख सकी। आत्मसंयम की भी तो कोई सीमा होती है। पन्द्रहवे दिन खिचड़ी से भरा हुआ थाल लेकर वह स्वयं द्वारकामाई में गई। श्री बाबा कुछ विशिष्ट भक्तों के साथ परदे के भीतर भोजन कर रहे थे। किसी बात का विचार न करते हुए उस स्त्री ने बलात् परदा हटा दिया और श्री बाबा के सम्मुख खिचड़ी का थाल रख दिया। सब लोग आश्चर्यचकित हो देखते रहे, क्योंकि उस समय भोजन आरम्भ करने से पूर्व श्री बाबा ने खिचडी खाने की ही इच्छा व्यक्त की थी। बुरहानपुर की स्त्री के लाये हुए थाल में से पेट भर खिचडी खाने के पश्चात् श्री बाबा प्रसन्न दिखाई दिये। परदा हटाने पर श्री बाबा के मन में रोष नहीं था। मानो भक्त द्वारा प्रेम से लाई हुई वस्तु की वे आतुरता से राह ही देख रहे थे।

श्री साई महाराज किस समय क्या चमत्कार कर दिखायेंगे, इसकी किसी को भी पूर्व कल्पना या सूचना नहीं होती थी। जान–बूझकर कोई भी प्रसंग उपस्थित न करते हुए वे सहज स्वभाव से ऐसी कुछ अलौकिक लीला रचते थे, कि देखने वाले भक्त दाँतो तले उँगली दबा कर रह जाते थे। श्री बाबा के एक परम भक्त, मेघा ने एक बार मकर संक्रान्ति के दिन सोचा कि श्री बाबा को गंगा–स्नान कराया जाय। पहले तो श्री बाबा ने सुनी–अनसुनी कर दी। पर मेघा ने एक बालक की भाँति हठ किया। तब श्री बाबा को विवश होकर उसकी बात माननी पड़ी। स्नान–संध्या के बाद पवित्र वस्त्र धारण कर वह आठ कोस चलकर पवित्र गोदावरी के जल से घड़ा भर कर ले आया और श्री बाबा के अभिषेक की तैयारी की। श्री बाबा चौकी पर आकर बैठ गये और मेघा का हाथ पकड़ते हुए उन्होंने कहा–"मेघा। शरीर के सारे अवयवों में सिर ही सबसे अधिक पवित्र और महत्वशाली है। इसलिए इसे ही शीतल जल से भिगो कर अपना उददेश्य पूर्ण करो। मेरे सारे शरीर पर जल न डालो।"

"ठीक है, बाबा ! आप कुछ चिन्ता न करे।" यह कहकर "शंभो, हर–हर महोदव ! की गर्जना करते हुए मेघा ने जल से भरा हुआ कलश श्री बाबा के सिर तथा सर्वांग पर पूर्णतया रिक्त कर दिया। पर रिक्त कलश नीचे रखते हुए मेघा ने जब श्री बाबा की ओर देखा तो उनका केवल सिर ही जल से भीगा था; शरीर के अन्य किसी अंग पर कही भी जल की एक बूँद भी दिखाई न दी। श्री बाबा का सारा शरीर बिल्कुल सूखा था। मेघा यह देखकर मन में बड़ा लज्जित हुआ। श्री बाबा प्रसन्न मुद्रा में बैठे थे। वे जानते थे कि मेघा का यह दृढ़ विश्वास था कि श्री साई शिवजी के अवतार है। भक्त के मन में दृढ़ इच्छा हो तो श्री साई भी उसे सहज भाव से उसी दिशा में प्रेरित करते थे। स्वप्न में दर्शन देकर भक्तों को सही मार्ग पर लाने के लिए श्री साई एक विलक्षण उपाय अवलम्बन लेते थे।

'मद्रासी भजन–मंडली' नाम से एक मद्रासी कुटुम्ब मार्ग में भजन–कीर्तन करते हुए काशी–यात्रा पर जा रहा था। मार्ग में श्री साई महाराज की कीर्ति सुनकर वे लोग कुछ समय शिरडी में ही वास करने के विचार से वहाँ रूक गए। श्री बाबा के समक्ष प्रतिदिन भजनों का कार्यक्रम होने लगा। भजनी–मंडली के नेता का ध्यान तो केवल रूपये–पैसे की ओर ही था। उसका मुख्य उददेश्य भजनों का कार्यक्रम रखकर श्री बाबा से कुछ आर्थिक लाभ उठाना ही था। पर उसकी स्त्री तो बहुत शालीन, श्रद्धालु तथा आचार–विचारों वाली थी। अपनी मधुर आवाज में जब वह प्रभु रामचन्द्रजी का गुणगान करती थी तो अपनी सुध–बुध खोकर तल्लीन हो जाया करती थी। श्री बाबा के प्रति उसकी श्रद्धा नित्य बढ़ती गई और एक दिन चमत्कार यह हुआ कि दोपहर के समय जब वह तन्मय होकर भजन गा रही थी तो श्री बाबा के स्थान पर उसे प्रभु रामचन्द्र जी की मूर्ति दिखाई दी। उसे अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। उसने पति से इस घटना का उल्लेख किया। पर, उसके पति ने उसकी खूब हँसी उड़ाई और यह कहकर कि 'तू मन की दुर्बलता से दृष्टि भ्रम होने के कारण व्यर्थ की बातें कर रही है, उसकी बहुत निभर्त्सना की। वह साध्वी स्त्री वाद–विवाद में न पड़कर मौन बैठी रही। श्री बाबा उसे पुनः–पुनः साक्षात्कार देते रहे। इच्छा हुई तो श्री बाबा किसी को सौ–पचास रूपये उठाकर दे देते थे। पर भजनों का सुन्दर कार्यक्रम करने के पश्चात भी मद्रासियों को विशेष धन–प्राप्ति न हुई। एक रात्रि में भजन–मंडली के मुखिया ने एक स्वप्न देखा। उसने देखा कि चोरी के अभियोग में पुलिस ने उसे पकड़कर कारागृह में बन्द कर दिया है। कारागृह के बाहर श्री साई महाराज को खडे देख कर मद्रासी ने पूछा–''बाबा, आपकी कीर्ति सुनकर हम यहाँ आये, फिर हम पर यह संकट कैसे आ गया ? आप यहाँ उपस्थित है। परन्तु मुक्त कराने का जरा भी प्रयत्न नहीं कर रहे है।''

श्री साई – तुम्हे अपने कर्मो का फल भोगना ही पड़ेगा।

मद्रासी – मैने ऐसा कोई कृत्य नहीं किया, जिससे मुझ पर यह संकट आ गया।

श्री साई – पूर्व जन्म में कोई पाप किया होगा।

मद्रासी – पूर्व जन्म का मुझे कोई स्मरण नहीं है। परन्तु मेरे हाथो से कोई पाप हुआ भी होगा इस समय आप जैसे महान संत की शरण में आने से मेरे पाप जल कर भस्म हो जाने चाहिए।

श्री साई – क्या तुम्हारा मुझ में पूर्ण विश्वास है ?

मद्रासी – हाँ, अवश्य है।

इतना संभाषण होने के उपरांत श्री साई की आज्ञानुसार मद्रासी ने अपनी आँखे बन्द कर ली। नेत्र मूँदते ही मेघों की भयंकर गडगडाहट सुनाई दी। आँखे खोलने पर मद्रासी ने देखा कि उसके हाथों की लौह श्रृंखलाएँ टूट कर धरती पर गिरी पड़ी है। वह तो मुक्त हो गया; पर देख–रेख करने वाला सिपाही समीप ही मृतावस्था में पड़ा है। श्री बाबा ने उसे बहुत भयभीत किया। अन्त में वह मद्रासी अनन्य भाव से श्री बाबा की शरण में आ गया। स्वप्न में ही श्री साई ने उसे उचित उपदेश किया। उसे उसके कुल में परम्परा से होती आई पूजा–विधि तथा अन्य संस्कारों का स्मरण दिलाया। तदनन्तर श्री बाबा उसे अपने साथ आने के लिए कहकर भजन–संप्रदाय के आद्यगुरू श्री रामदासी स्वामी का प्रत्यक्ष दर्शन कराया और फिर वे अदृश्य हो गए। स्वप्न से जागृतावस्था में आकर मद्रासी सोच–विचार में डूब गया। श्री बाबा के साथ हुए प्रश्नोंत्तरों का पूर्णतया उसे स्मरण हुआ। तत्काल ही उसके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। अकारण ही अपनी पत्नी पर दोषारोपण करने का उसे पश्चाताप हुआ और निर्मल श्रद्धा के साथ वह श्री बाबा की शरण में आ गया। सदैव उसकी ओर उपेक्षा की भावना से देखने वाले श्री साई ने उस दिन मद्रासियों में मेवा–मिठाई लुटा दी और भजन–मंडली के मुखिया को अपने

पास से दो रूपये देकर आशीर्वाद देते हुए कहा–"भजनों के कार्यक्रम करते रहने से तुम्हें पर्याप्त धन की प्राप्ति होगी।" इस घटना का विस्तार पूर्वक उल्लेख करने का कारण यही है कि भक्तों को साक्षात्कार देकर उन्हें सही दिशा दिखा देने का श्री साई का यह एक मार्ग होता था। समाधि के पश्चात भी भक्तों के स्वप्नों में प्रकट होकर श्री साई इस प्रकार के उपदेश देते रहते हैं।

मुम्बई के एक उपनगर में रहने वाले रघुनाथ तेंडुलकर को भी श्री साई महाराज के इसी प्रकार स्वप्न में उपदेश दिया था। रघुनाथ राव बम्बई में एक युरोपियन कंपनी में नौकरी करते थे। अधिक आयु होने के कारण सुचारू रूप से कार्य करना उनके लिए असंभव–सा हो गया था और इसलिये अवकाश ग्रहण कर वे घर बैठ गए। उस समय उन्हें कोई डेढ़ सौ रूपये वेतन मिलता था। पेन्शन के उन्हें आधे यानी पचहत्तर रूपये मिल सकते थे। इतने कम वेतन में गृहस्थी का भार कैसे उठाया जाय, इस चिन्ता में जब रघुनाथराव पड़े हुए थे, तो एक रात्रि में श्री साई ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिये और उनसे प्रश्न किया सौ रूपये पेन्शन मिलने से वो संतुष्ट हो जायेंगे या नहीं ? रघुनाथ राव की श्री साई में पूर्ण श्रद्धा थी। उन्होंने उत्तर दिया कि सौ रूपये उनकी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त है। आगे रघुनाथ राव के एक उच्च अधिकारी के मन में दया उत्पन्न हुई और उसने उन्हें बहुत वर्षो तक ईमानदारी से कार्य कर पुरस्कार–स्वरूप प्रति मास एक सौ दस रूपये पेन्शन देना स्वीकार किया। इसे केवल संयोग की बात न कहकर श्री बाबा के मन में अपने भक्तों के प्रति चिन्ता उत्पन्न होने का एक दृष्टान्त ही कहना उचित होगा। उन्होंने भक्त के दुख से दुःखी होकर रघुनाथराव के उच्चाधिकारी के मन में प्रेरणा उत्पन्न की थी, यह स्वीकार करना ही युक्तियुक्त होगा।

इस रघुनाथराव के पुत्र बाबा तेंडुलकर को एक ज्योतिषी ने बताया कि ग्रह–दशा अनुकूल न होने से उसका परीक्षा में असफल होना निश्चित

सा है। ज्योतिषी की भविष्यवाणी सुनकर वह पूर्णतया निराश हो गया और उसने डॉक्टरी की परीक्षा में बैठने का विचार ही त्याग दिया। इस लडकें की माँ श्री बाबा की परम भक्त थी। शिरडी जाकर उसने श्री बाबा को सारा वृतान्त सुनाया तब श्री बाबा–"उस लडके से कहो, केवल मुझ में ही विश्वास रखे। ज्योतिष–शास्त्र और उस मूर्ख ज्योतिष की भविष्यवाणी में यत्किंचित भी विश्वास न रखते हुए परीक्षा की तैयारी में लगा रहे। परीक्षा में कैसे असफल रहेगा, यह मैं स्वयं देख लूंगा।"

श्री बाबा का यह उत्साहवर्धक संदेश मिलते ही बाबा तेडुलकर थोड़ा बहुत अभ्यास कर परीक्षा के लिए उपस्थित हुआ। लिखित परीक्षा में संतोषज़नक उत्तर न दे सकने के कारण तेंडुलकर अपने निश्चय पर दृढ नहीं रह सका और मौखिक परीक्षा में न जाने का संकल्प कर घर लौट आया। तेंडुलकर के परीक्षकों ने यह देखकर की लिखित परीक्षा में उत्तम अंक प्राप्त करने के पश्चात् अकारण ही वह हानि उठाना चाहता है, उसके घर संदेश भिजवा दिया और उसे शेष परीक्षा में भी उपस्थित रहने के लिए बाध्य किया। तेंडुलकर सचमुच ही उस वर्ष परीक्षा में पूर्णतया उत्त्तीण हुआ। ज्योतिषियों की भविष्यवाणी सुनकर अनेक बार दुर्बल मनुष्यों के मन पर सर्वथा विपरित प्रभाव होता है, इसीलिये श्री साई ने पूर्ण विश्वास के साथ यह कहकर कि वह अवश्य सफलता प्राप्त करेगा, तेंडुलकर को परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया और इतने विलक्षण ढंग से अपना कथन सत्य सिद्ध कर दिखाया। धन्य है, श्री साई महाराज।

बीकानेर में नौकरी के लिए निवास करने वाले श्री साई के परम भक्त कप्तान विनायकराव के स्वप्न में भी श्री बाबा एक दिन प्रकट हुए और उससे पूछा–"क्यो, मुझे भूल गये क्या ?"

विनायकराव ने तुरन्त ही श्री साई के चरण पकड़े और गद्गद् अन्तःकरण से उन्होंने कहा–"क्या एक बच्चा अपनी माँ को कभी भूल सकता

है ?" तदुपरान्त कप्तान हाटे अपने बगीचे में गये और ताजी 'बालपापड़ी' (सेम) तोड़कर श्री बाबा के प्रति अर्पण करने के लिए वे जैसे ही उद्यत हुए कि तभी उनकी आँखें खुल गई। स्वप्न की स्मृति शेष रह गई। विनायकराव की श्रीबाबा में अविचल श्रद्धा-भक्ति थी और इसलिए यह प्रसंग वे भूले नहीं। फिर कुछ महीनों के पश्चात् वे ग्वालियर गये और वहा से शिरडी जाने वाले अपने एक मित्र को उन्होंने मनिआर्डर द्वारा बारह रूपये भेज दिये और साथ ही संदेश भेजा कि उन रूपयों में दो रूपये श्री बाबा के लिए सीधा-सामग्री तथा बालपापड़ी (सेम) खरीदने के लिए अवश्य खर्च करें तथा बाकि दस रूपये श्री बाबा को दक्षिणा के रूप में दे दिये जायँ। विनायकराव का मित्र शिरडी पहुँचा और उनकी इच्छानुसार सभी वस्तुएँ खरीद ली। पर अन्त तक कहीं भी बालपापड़ी (सेम) उनके हाथ न लगी। कोपरगाँव में पहुँचने के पश्चात् ताँगे में बैठते समय एक स्त्री सिर पर सब्जी की टोकरी लिए सामने आयी। टोकरी में बालपापड़ी (सेम) ही देखकर विनायकराव के मित्र ने तुरन्त वे खरीद ली। शिरडी में पहुँचने के बाद विनायकराव की ओर से उनके मित्र ने सारी सामग्री तथा वे सेम निमोणकर के सुपुर्द कर दी। निमोणकर ने भात-भाजी आदि समस्त भोजन तैयार कर कप्तान विनायकराव का नैवेद्य श्री बाबा के प्रति अर्पण किया। उस दिन श्री बाबा ने अन्य किसी भी पदार्थ को स्पर्श न करते हुए केवल बालपापडी (सेम) ही प्रसन्नता से ग्रहण की। इस घटना का समग्र वृतान्त जब कप्तान विनायकराव को मिला तो उनके हर्ष का पारावार न रहा।

किसी भक्त से श्री बाबा को अधिक स्नेह होता था तो वे उसे अपने पास से एक रूपये नित्य पूजा-अर्चना के लिए देते थे। जब विनायकराव हाटे के कानों तक यह बात पहुँची तो श्री बाबा के कर स्पर्श से पुनीत हुआ एकाध रूपया प्राप्त करने की पवित्र भावना से प्रेरित हो उन्होंने एक चाँदी का रूपया अपने एक मित्र के हाथ श्री बाबा को अर्पण करने के उद्देश्य से भेज

दिया। श्री बाबा ने चाँदी के रूपये को निहार कर देखा। दो–चार बार दिया।

श्री साई का दर्शन होने के उपरान्त विनायकराव के मित्र ने अपनी दक्षिणा उनके सम्मुख रखी। श्री बाबा ने तुरन्त ही दक्षिणा की रकम जेब में डाल ली। तदन्तर विनायकराव के मित्र ने उनका चाँदी का रूपया श्री साई रूपये का उछाला और फिर वे वह रूपया विनायकराव के मित्र के हाथ में रखते हुए कहा–"यह रूपया जिसका है। उसी को लौटा दो। मेरी यह विभूति साथ ले जाओ और उसे मेरा संदेश दो कि "किसी वस्तु की मैं तुम से अपेक्षा नही रखता। सदा प्रसन्न रहो, और सन्तोष से जीवन व्यतीत करो। यही मेरा आशीर्वाद है।"

विनायकराव का मित्र श्री साई महाराज द्वारा लौटाया हुआ रूपया लेकर घर पहुँचा। परन्तु मन में लोभ उत्पन्न होने के कारण श्री बाबा के दिये हुए रूपये को अपने पास रखकर उसके बदले एक–दूसरा रूपया उसने कप्तान विनायकराव को लौटा दिया। उसी रात्रि को उसकी लड़की एकाएक रोग–ग्रस्त हुई, और उसका ज्वर एक सौ डिग्री तक पहुँचा। विनायकराव के मित्र का मन उसे धिक्काराने लगा। उसी रात्रि को वह कप्तान साहब के घर दौड़ते–दौड़ते पहुँचा और उनसे क्षमा–याचना करते हुए अपना अपराध स्वीकार किया और श्री बाबा का स्पर्श किया हुआ रूपया उन्हें लौटा दिया। विनायकराव के मित्र को इस घोर अपराध के लिए श्री बाबा ने भी क्षमा किया, क्योंकि उसी रात्रि को उनकी लड़की का ज्वर भी घट गया।

श्री साई महाराज का प्रत्येक आचरण यद्यपि निःस्वार्थी होता था, तथापि उसमें कोई–न–कोई गूढ़ अर्थ निहित रहता था। उनकी प्रत्येक लीला का अर्थ समझना आकाश में तारे तोडने के सदृश ही असम्भव–सा होता था। कप्तान हाटे को तो श्री बाबा ने उनका रूपया पूजा के लिए लौटा दिया; परन्तु वामन नार्वेकर नामक भक्त को तो झिड़कार दिया था। नार्वेकर रूपये के

आकार का सुन्दर नक्काशी का काम किया हुआ चाँदी का एक पदक लाये थे। पदक के एक और राम–लक्ष्मण–सीता की मूर्तियाँ उत्कीर्ण थी तो दूसरी और श्री हनुमान की प्रतिमा थी। नार्वेकर की प्रबल इच्छा थी कि श्री बाबा उस पदक को अपने कर–स्पर्श से पुनीत कर पूजा के लिए लौटा दे। पर श्री बाबा ने यह उचित नहीं समझा कि पदक नार्वेकर को लौटा दिया जाय। उन्होंने वहपदक शामा को दे दिया। शामा ने पदक नार्वेकर को देने की प्रार्थना की तो श्री बाबा ने उत्तर दिया कि नार्वेकर दक्षिणा–स्वरूप पच्चीस रूपये दे देंगे तो यह पदक उन्हें लौटा दिया जायेगा। नार्वेकर ने तुरन्त अपने मित्र–वर्ग से पच्चीस रूपये एकत्रित कर श्री बाबा के चरणों में डाल दिये। फिर भी श्री बाबा का मन द्रवित न हुआ। "इस पदक का मूल्य बहुत अधिक है। नार्वेकर के लिए यह उपयुक्त नहीं है। तुम इसे अपने पास ही रखो और इसकी नित्य पूजा करो।" शामा से यह कहकर श्री बाबा ने अपनी ही बात रखी। किसी को भी श्री बाबा से यह पूछने का साहस न हुआ कि उन्होंने ऐसा बर्ताव क्यों किया ? श्री बाबा के इस आचरण का अर्थ कोई भी नही समझ सकता। इसका अर्थ तो वे स्वयं ही जानते थे।

==========

अठारहवाँ अध्याय

आध्यात्म-प्राप्ति का मार्गदर्शन

श्री साई महाराज का अन्तःकरण अत्यंत दयालु था। वे भक्तों को अपना ही बच्चा समझकर उनके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करते थे। भक्तों पर उनका स्नेह पुत्रवत् था। उनकी कृपा–दृष्टि से ही भक्तों के मन समस्त क्लेश दूर हो जाते थे। हजारों कोस से ब्राम्हण उनके चरणों में भागते हुए आते थे और पवित्र ग्रंथों का अध्ययन करते थे। श्री साई महाराज ने किसी

का अनादर अथवा तिरस्कार नहीं किया। उन्होंने सभी लोगों को योग्य मार्गदर्शन के द्वारा आत्मिक उन्नति के ऊँचे स्तर पर ले जाने का अपनी शक्ति के अनुसार भरसक प्रयत्न किया। हेमाडपंत जैसे कभी भूलकर भी लेखनी हाथ में न उठाने वाले व्यक्ति से 'श्री साई सच्चरित्र' जैसा लोकप्रिय एवं विद्वत्तापूर्ण महान ग्रंथ उन्होंने लिखवा लिया। हेमाडपंत के पूर्व जन्मों के पुण्यों के कारण ही मानों प्रत्येक शब्द लिखते समय श्री साई ने उन्हें प्रेरणा एवं प्रतिभा प्रदान की। ऐसे अनेक लोगों को श्रीसाई महाराज ने दूर–दूर से अपने चरणों में आकृष्ट कर उन्हें आत्मज्ञान का साक्षात्कार करा दिया।

नासिक से कुछ दूर सप्तश्रृंगी के मंदिर के पुजारी काका वैद्य ने किसी प्रकार श्री साई के चरणों में शरण ली तथा वे किसी ऊँचाई तक पहुँचे, यह एक ध्यान देने योग्य घटना है। काका जी संसार–ताप से इतने त्रस्त हो चुके थे कि उनके मन में वैराग्य की भावना हो गई और अपने नश्वर शरीर का त्याग करने का विचार भी उनके मन में उठने लगा। एक दिन ऐसी ही अस्थिर मनःस्थिति में उन्होंने मंदिर में जाकर अत्यंत विनम्र भाव से देवी की प्रार्थना की। उसी रात्रि को काकाजी को सप्तश्रृंगी देवी स्वप्न में दिखाई दी और उनसे कहा–''तुम बाबा के पास जाओ। वहाँ तुम्हारे मन को शान्ति और सन्तोष प्राप्त होगा।'' स्वप्न से जागृतावस्था में आने पर काकाजी ने अपने मन में बहुत सोचा कि ये 'बाबा' कौन है। पर, प्रश्न का संतोषजनक उत्तर न मिला। उन्होंने सोचा, मेरे आराध्य देव त्रयंबकेश्वर ही स्वप्न में आए 'बाबा' होंगे, और वे नासिक के समीप त्रयंबकेश्वर के मंदिर जा पहुँचे। वहाँ अनन्य भाव से लगातार दस दिनों तक उन्होंने कठोर तपस्या की। फिर भी मन को शन्ति न मिली। घर लौटने पर उसी रात्रि में देवी ने स्वप्न में पुनः साक्षात्कार दिया और कहा–''अरे, मैने तो तुमसे बाबा के पास जाने के लिए कहा था। 'बाबा' से मेरा अभिप्राय है। शिरडी के श्री साई समर्थ।''

काकाजी के मन में तब 'बाबा' के रहस्य का पूर्णतया उदघाटन हुआ

और वे शिरडी के लिए उद्यत हुए। जब भक्त का मन अधीर हो उठता है, तो प्रत्यक्ष परमेश्वर भी किसी न किसी रूप में आकर उसके सामने खड़ा हो जाता है। आश्चर्य की बात कि काकाजी को शिरडी ले जाने के लिए श्री साई महाराज का प्रिय शिष्य शामा स्वयं ही वहाँ आ उपस्थित हुआ। तीस वर्ष पूर्व जब शामा बच्चा था, तब उसकी माँ ने सप्तश्रृंगी देवी की मनौती मानी थी। मृत्यु के समय उसने शामा को बुला कर इस बात का स्मरण भी कराया था। पर शामा ने तो सुनी–अनसुनी कर बात को बिल्कुल भुला दिया था। कुछ वर्षो के उपरान्त शिरडी में एक प्रसिद्ध ज्योतिषी आया। शिरडी के लोगों को अचूक भूत–भविष्य बताकर उसने चकित कर दिया था। शामा को उसने एक बात का स्मरण दिलाया कि माँ के आदेशानुसार उसने देवी के सम्मुख किया हुआ संकल्प पूर्ण नहीं किया है। जब शामा ने श्री बाबा के समक्ष ही पूजा का संकल्प पूर्ण करने का निश्चय प्रकट किया। पर, श्री बाबा सहमत न हुए और उन्होंने शामा को सप्तश्रृंगी देवी के मंदिर में ही जाने की आज्ञा दी। इस प्रकार शामा अकस्मात् मंदिर में काकाजी के पास आया। कुछ लोग तो इसे केवल संयोग की बात कहेंगे; परंतु जो लोग श्री साई की लीलाओं से भली–भाँति परिचित है, उनके ध्यान में अवश्य यह बात आयेगी कि श्री बाबा ने उददेश्यपूर्वक ही काकाजी को शिरडी बुलाने के लिए शामा को इतनी दूर भेज दिया था। शामा के मुख से श्री बाबा की लीलाओं का वर्णन सुनकर काकाजी एक पागल की भाँति दौड़ते हुए शिरडी पहुँचे। श्री साई का दर्शन होते ही मानो कोई अद्‌भुत चमत्कार ही हुआ हो। काकाजी का मन में गहरी बैठी हुई समस्त विपरीत कल्पनाएँ कुहरे की भाँति छँट गई और उन्हें पूर्ण समाधि स्थिति का अनुभव प्राप्त हुआ। श्री बाबा ने काका जी को सम्बोधित कर एक शब्द भी नही कहा। प्रत्युत उन्होंने केवल दृष्टि–निर्क्षेप से ही काकाजी के हृदय में परिवर्तन कर दिया था। श्री साई का सामर्थ्य इतना अलौकिक था।

जिन व्यक्तियों ने श्री साई को कभी देखा नही था। ऐसे लोगों को

भी श्री साई अपनी और आकर्षित कर लेते थे। यह पढ़ कर कोई भी अचम्भे में पड़ सकता है या इसे चेले मूँडने का ही एक प्रकार बतायेगा; परंतु श्री साई में चमत्कार उत्पन्न करने की अद्भुत शक्ति थी। बम्बई में रामलाल नामक एक पंजाबी रहता था। ध्यान या मन में न होते हुए भी एक रात्रि को उसके स्वप्न में एक फकीर प्रकट हुआ और उससे अपने पास आने का आग्रह करने लगा। स्वप्न में देखा हुआ व्यक्ति अपरिचित था, अतः 'वह कौन है, कहाँ रहता है' आदि प्रश्नों का समाधान ढूँढ़ने का कोई मार्ग रामलाल को दिख नहीं रहा था। एक दिन कार्यवश बाजार में घूमते-घूमते रामलाल को अकस्मात एक दुकान में श्री साईनाथ महाराज का चित्र दिखाई दिया। स्वप्न में देखा हुआ फकीर बिल्कुल यही है, यह निश्चय होने पर उसने दुकानदार से पूछ-ताछ की और श्री साई महाराज का दर्शन करने के उददेश्य से वह शिरडी पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि स्वप्न में प्रकट होकर उसे शिरडी में खींचकर लाने वाले श्री साई नाथ ही है। फिर तो उसने अनन्य भाव से श्री साई की भक्ति करना आरंभ किया। रामलाल ने श्री साई का नाम कभी सुना नहीं था। श्री साई बाबा कौन व्यक्ति है और उनकी क्या शक्ति है, इसकी उसे किंचित-मात्र भी कल्पना न थी। फिर भी श्री साई महाराज ने उसे अपनी ओर क्यों आकृष्ट किया ? यह प्रश्न सचमुच ही उलझन में डालने वाला है।

श्री साई के दरबार में विविध प्रकार के लोग सैदव आते थे। इसलिए वहाँ विविध मानवीय प्रवृत्तियों से प्रेरित नये-नये अनुभव नित्य देखने में आते थे। किसी भी धर्म या पंथ से संबंधित मनुष्य जब श्री साई के सामने आता था तो वे उसे देखकर ही यह सही-सही अनुमान लगा लेते थे कि वह इच्छा से उनके पास आया है। और फिर उससे समयोचित ही बर्ताव करते थे। वे किसी से उदारतापूर्वक निर्भय होकर शिरडी में रहने का आग्रह करते थे तो किसी पर अत्यंत क्रोधित होकर उसे भगाने दौडते थे और 'चले जाओ' कहते हुए उसे शिरडी से विदा कर देते थे। लुच्चे-लफंगो तथा पाखंडियों को वे

शिरडी में एक क्षण भी नही ठहरने देते थे। छल–कपट द्वारा लोगों से रूपया ऐठने वाले ढोंगी, बैरागी, फकीर आदि तो श्री साई के पास भी नहीं फटकते थे। फिर भी साई द्वारा उपेक्षित हर एक मनुष्य को ढोंगी या कपटी समझना बड़ी भारी भूल होगी; क्योंकि श्री साई का उददेश्य विचित्र होने के कारण उनके आचरण का सही अर्थ समझना भी सामान्य मनुष्य के लिए सरल नही था।

मानस सरोवर की परिक्रमा के उददेश्य से निकले हुए मद्रासी सन्यासी विजयानंद की कुछ ऐसी ही शोचनीय स्थिति हुई थी। वह बेचारा सद्भाव एवं निरपेक्ष बुद्धि से श्री बाबा के दर्शनों के लिए द्वारकामाई में आया था। उसे देखते ही श्री बाबा क्रुद्ध हुए और चिल्लाकर बोले–"इस निकम्मे संन्यासी को यहाँ से भगा दो। इससे किसी को यत्किचित भी लाभ न होगा।" विजयानंद को बड़ा दुःख हुआ। पर मन कड़ाकर वह वहीं बैठा रहा। भक्त लोग श्री बाबा की पूजा–अर्चना करने में तल्लीन थे। श्री बाबा के दरबार के उत्साहजनक वातावरण में विजयानंद ने कुछ दिन तो आनंदपूर्वक व्यतीत किये। बाद में कुछ दिन बीतने पर जब उसे अपनी माता के रोग–ग्रस्त होने का संदेश मिला तो वह मानस सरोवर की यात्रा स्थगित कर स्वदेश लौटने की आज्ञा माँगने के लिए श्री साई बाबा के पास द्वारकामाई में घुस गया। श्री बाबा ने उसे तुरंत उत्तर दिया–"अपनी माता से तुझे इतना गहरा स्नेह और ममता है तो यह संन्यासी–वेश ही क्यों धारण किया है ? जाओ, शांति से बैठो। यहाँ चोर बहुत है। वे तुम्हारा सर्वस्व हरण कर लेंगे। संसार में प्रत्येक वस्तु नश्वर है। संन्यासी को तो लोभ, माया त्याग कर निर्विकार मन से अपना कर्त्तव्य पूर्ण करना चाहिए, तभी उसकी सद्गति होती है। पूर्व जन्म में तुमने बहुत बड़ा पुण्य संचय किया था, इसीलिये तुम्हे यहाँ आने की प्रेरणा मिली। अब मुझमें पूर्ण विश्वास रखो और कल से 'राम–विजय' ग्रन्थ का सप्ताह आरम्भ करो। परमात्मा तुम्हारा भला करेगा।"

श्री साई के इस उपदेश से विजयानंद को संतोष हुआ। श्री बाबा की

आज्ञानुसार प्रातःकाल उठते ही लेंडी बाग के समीप एक एंकात स्थल में स्नान–संध्या से निवृत्त होकर विजायानंद ने 'राम–विजय' का पारायण आरम्भ किया। ग्रन्थ के दो ही पारायण हुए थे कि एकाएक विजयानंद का जी घबराने लगा। तत्क्षण उठकर वह वाडे (धर्मशाला) में आया। दो दिन अन्न–जल के बिना वहीं पड़ा रहा और तीसरे दिन फकीर ने बाबा की गोद में प्राण छोड़ दिये। श्री साई को विजयानंद का भविष्य पहले से ही पूर्णतया ज्ञात था। उसका अन्त–काल निकट आया जानकर ही श्री बाबा ने उसे निर्वाण पद प्राप्त करने का भक्ति–मार्ग दिखाया था। अपने भक्तों के सहयोग से श्री बाबा ने विजयानंद का सन्यास धर्म के अनुकूल ही अग्नि–संस्कार करवाया।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन–काल में कभी–कभी एकाध ऐसा प्रसंग भी आ बनता है कि उसके लिए जीना असम्भव हो जाता है। मन की चंचलता या उद्विग्नता से बुद्धि का सन्तुलन भी प्रायः नष्ट हो जाता है और व्यक्ति का मन तीव्रता से वैराग्य की और बढ़ता है। बालाराम मानकर की भी कुछ ऐसी ही अवस्था हो गई थी। उन्होंने अपनी अत्यन्त प्रिया एवं सहृदया पत्नी के विरह से व्याकुल होकर खिन्न मनःस्थिति में घर–बार, सर्वस्व छोड़ शिरडी में श्री साई महाराज का आश्रय लिया। इनके जीवन को उचित दिशा देने के उददेश्य से ही श्री बाबा ने उन्हें बारह रूपये दिये और मच्छिन्दरगढ को चले जाने की आज्ञा दे दी। मानकर पहले सहमत न हुए; परन्तु श्री बाबा ने उन्हें बडी कुशलता से अपना उददेश्य समझाया और योग–साधना किस प्रकार करनी चाहिये, इसका भी उपदेश दिया। श्री बाबा की आज्ञा शिरोधार्थ कर श्री मानकर मच्छिन्दरगढ़ पहुँचे और वहाँ ध्यान–धारणा में संलग्न हो गये। भक्तों को समाधि–स्थिति में उनके गुरू या इष्ट देवता का दर्शन होता है। परंतु मानकर को समाधि पूर्व की जागृतावस्था में ही कुछ दिनों के पश्चात् श्री साई महाराज का प्रत्यक्ष सदेह दर्शन हुआ। श्री साई का दर्शन होते ही मानकर ने पूछा, "बाबा, आपने मुझे एक निर्जन एकांत स्थल में क्यों भेज

दिया ?'' इस पर उत्तर देते हुए श्री बाबा ने कहा–''शिरडी में भक्तों के कोलाहल में तुम्हारा उद्विग्न मन एकाग्रता प्राप्त नहीं कर सकता था। इसीलिए मैने तुम्हें इस एकान्त स्थल में भेज दिया था। मेरा साढे तीन हाथ का पार्थिव शरीर केवल शिरडी में ही वास करता है, यह तुम्हारी भ्रममूलक कल्पना मात्र है, अब प्रत्यक्ष देख लो। मै सारे विश्व में व्याप्त हूँ। अब तुम स्वय ही विचार करो और मेरे बतलाये हुए मार्ग से योग–साधना करो।'' इतना कहकर श्री साई अदृश्य हो गए। श्री साई की आज्ञानुसार मानकर ने कुछ काल मच्छिन्दरगढ़ में व्यतीत किया और बाद में श्री बाबा का संकेत पाते ही मच्छिन्दरगढ छोड़ अपने घर की ओर चल पडे। पूना स्टेशन पर टिकट लेने वालों की बहुत बड़ी भीड़ थी। इस कारण वे एक कोने में खड़े होकर प्रतीक्षा करने लगे। इतने में केवल लंगोटी पहने हुए एक देहाती उनके पास दौड़ता आया और अपने लिए खरीदा दादर का टिकट उनकी ओर बढ़ाते हुए बोला–''आपको दादर जाना है ? तो आप यह मेरा टिकट लीजिये। किसी आकस्मिक कारण से मेरा दादर जाना स्थगित हो गया।''

मानकर ने उस देहाती से टिकट लिया और टिकट के पैसे देने के लिए ज्यों ही हाथ बढ़ाया कि वह देहाती भीड़ में एकाएक कही अदृश्य हो गया। गाड़ी रवाना होने तक मानकर ने उस व्यक्ति को बहुत खोजा; परंतु उसका कही पता न लगा।

मानकर को यह दूसरा दृष्टान्त मिला था। इसके पश्चात् मानकर ने अपने बाल–बच्चों से अंतिम बिदा ली और वे श्री बाबा के सान्निध्य में रहने के लिए शिरडी लौट आये। उन्होंने कुछ समय बाद वही श्री बाबा की देख–रेख में जप–जाप करते हुए शान्तिपूर्वक अपने प्राण त्याग दिए और सद्गति को प्राप्त हुए।

श्री साई महाराज को जब कभी वे लहर मे आते थे, कहानियाँ सुनाने का बड़ा शौक था। कहानी सुनाने का उनका ढंग भी न्यारा ही होता था।

उनकी कहानियाँ विनोद से भरपूर होती थी। किसी भक्त के मन में कोई बहुत ही बड़ा तत्व सहज ढंग से संचरित करने के लिए श्री बाबा इन कहानियों का उपयोग करते थें। कहानी के प्रमुख नायक की भूमिका में वे स्वयं अपने आप को उपस्थित किया करते थे। सुनने वालों को ऐसा आभास होता था, मानो वे अपने ही विगत जीवन के अथवा बाल्यकाल के विशिष्ट तथा रहस्यमय प्रसंग चित्ताकर्षक शैली में सुना रहे है। श्री बाबा द्वारा सुनाई गई कुछ कहानियाँ इस प्रकार थी–

"एकदिन प्रातःकाल जल–पान के पश्चात् मैं भ्रमण करने के लिए चल पड़ा। बहुत देर तक इधर–उधर घूमने के बाद एक नदी के तीर पर हाथ–पैर धोकर मैने स्नान किया। मैं एक घने–वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए बैठा ही था कि एक मेंढक के टर्राने की आवाज सुनाई दी। मैं अपनी चिलम तैयार कर उसे सुलगाने वाला था, कि एक देहाती यात्री वहाँ आ पहुँचा। कुछ देर बातचीत होने के पश्चात् उसने मुझसे अपनी झोपडी में पधारने और भोजन करने का आग्रह किया। वृक्ष के नीचे नदी से आने वाली उसी मेंढक की आवाज टर्र–टर्र सुनते ही यात्री ने भी पूछा कि दादुर इस प्रकार दुःख से क्यों टर्रा रहा है। इस पर मैने उत्तर में कहा–"नदी के किनारे एक मेंढक भयानक संकट में फँसा हुआ है। वह अपने पूर्व जन्म के कर्मो का फल भोग रहा है। पूर्व जन्म में जैसा कर्म किया होगा, वैसा ही फल इस जन्म में भोगना पड़ेगा। अब अश्रु बहाने से क्या लाभ ?" मेरा यह विलक्षण उत्तर सुनकर यात्री का समाधान न हुआ। इसलिये अपने मन्तव्य का अर्थ स्पष्ट करने के लिए मैने उससे कहा, "वहाँ जाकर प्रत्यक्ष देखो। एक विकराल सर्प के मुख में एक मेंढक फँसा हुआ है और वह अपने प्राण बचाने के लिए आर्त स्वर में पुकार रहा है। दोनों ही बड़े नीच है। पूर्व जन्म में दोनों ने ही अत्यन्त घोर एवं भयानक अपराध किये थे, ओर इसी कारण अब इस जन्म में भी वे अपने पापों का फल भोग रहे है।" मेरी बात सुनने के पश्चात् यात्री अपने

स्थान से उठा और नदी के किनारे जाकर स्वयं अपनी आँखों से सब कुछ देखकर वह बोला—"सचमुच ही वहाँ एक भयकर सर्प ने अपने विशाल जबड़े में एक बड़ा मेंढ़क दृढ़ता से पकड़ रखा है। अब मेंढक की मृत्यु निश्चित है। उसकी मरण—बेला समीप आ गई है। दया कीजिए और उसे मुक्त कीजिए।" मैने यात्री को पूर्ण आश्वासन दिया और उसे मेंढक के पास ले गया। वहाँ जाते ही उन दोनों को देखकर मैंने कहा—"अरे, वीरभद्रप्पा, यह तुम्हारा वैरी बसप्पा इतनी गन्दी मेंढ़क की योनि में उत्पन्न हुआ है, फिर भी पूर्व जन्म का बैर नहीं छोड़ता और स्वयं तुम अपने पूर्व कर्मो के कारण सर्प—योनि में जन्म लेकर भी अपना वैमनस्य नहीं त्याग रहे हो। अरे, मन में कुछ तो लज्जा अनुभव करो और आगे अच्छा जन्म प्राप्त करना चाहते हो तो मेरी आज्ञा मानो और मेंढक को मुक्त करो।"

"मेरे शब्द सुनते ही सर्प ने अपने मुख में दबाया हुआ मेंढक छोड़ दिया और शीघ्र ही नदी के जल में अदृश्य हो गया। मृत्यु के मुँह में से अचानक मुक्त हुआ वह मेंढक भी छलाँग मारकर झाड़ियों में अदृश्य हो गया। इसके पश्चात् मैने यात्री को वीरभद्रप्पा और बसप्पा का जीवन—वृतान्त सुनाया। एक पूर्व जन्म में बसप्पा और वीरभद्रप्पा ने द्रव्य—लोभ के कारण नीच और घृणास्पद कृत्य किये थे। वीरभद्रप्पा ने उन्मत होकर बसप्पा से कहा था—" मै तेरे टुकडे—टुकडे करके खा जाऊँगा।" कुछ ही दिनों के उपरान्त वीरभद्रप्पा की पक्षाघात से मृत्यु हुई और उसने सर्प—योनि में जन्म पाया। बसप्पा ने भी दहशत से प्राण छोड दिए और मेंढक की योनि में जन्म लिया। पूर्व जन्मों के संस्कारों के अनुसार ही उन्हें उचित प्रायश्चित के रूप में ये योनियाँ मिली और परमेश्वर की इच्छानुसार उनकी सद्गति करने का भार मुझ पर आ पडा था। इसलिए वीरभद्रप्पा को वैसी आज्ञा देने के लिए मै बाध्य हुआ ?"

श्री बाबा द्वारा सुनाया गया दूसरा प्रसंग:

"हम चारों सहपाठी जब धर्म–गंथों का अध्ययन कर रहे थे तो एक दिन ब्रम्ह–ज्ञान की खोज में एक सधन, भयानक अरण्य की ओर चल पड़े। मार्ग में हमें एक वनवासी मिला।" अरण्य का भेद बतलाने वाला एक उत्तम पथप्रदर्शक साथ लिए बिना आप अपने उददेश्य में सफल नहीं हो सकते,"विनम्रतापूर्वक यह कहते हुए उसने हमारा यथोचित अतिथी–सत्कार किया। उसकी विनम्र प्रार्थना की अवहेलना कर हम वन में घुस गए।बहुत देर तक वन में भटकने के पश्चात हम फिर उसी स्थान पर आ गए। वह वनवासी वहीं खड़ा था। उसने पुनः कहा–"ऐसा हठ न करो। पथ–प्रदर्शक के बिना आप अपना मार्ग नही खोज सकते ओर भूखे रहकर कोई भी कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। परमात्मा की प्रेरणा से ही हम एक–दूसरे को मिलते हे। सामने आए हुए अन्न से मुख नही मोड़ना चाहिए। अन्न से भरा हुआ थाल सामने आना भी एक शुभ योग ही होता है। आज आप लोग मेरे गृह पर ही भोजन कर ले, और तत्पश्चात् अपने उददेश्य की पूर्ति के लिए वन में आगे बढ़ जायँ।"

"मेरे तीनों मित्रों ने यात्री का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। वे आगे बढ़े। मेरी अंतरात्मा भूख और तृषा से व्याकुल हो उठी थी। मन में उस बात का यत्किंचित भी विचार न करते हुए कि यह वनवासी शूद्र है, मै वही रूक गया और प्रेम से दी हुई उसकी दाल–रोटी को मैने सहर्ष स्वीकार किया। उसी क्षण मुझे ऐसा आभास हुआ। मानो मेरा अंतर्मन दिव्य ज्ञान से दैदिप्यमान हो उठा है। मेरे गुरूदेव भी अकस्मात मेरे सम्मुख आकर खड़े हो गए और सारा वृतान्त सुनकर उन्होंने कहा–"मेरे संग चलो। मैं तुम्हें मार्ग दिखलाता हूँ। पर मुझमे पूर्णविश्वास रखकर ही तुम्हें अपना कार्य करना पड़ेगा।" बड़ी प्रसन्नता के साथ मैं अपने गुरू के साथ हो लिया। एक अति भयानक सधन अरण्य में एक पुराने गहरे कुएँ के निकट पहुँचते ही मेरे गुरू ने मेरे पैर कसकर बाँध दिये ओर मुझे उस कुएँ में उलटा टाँग दिया। चार–पाँच घंटो के पश्चात मेरे गुरूजी लौट आये और मुझे मुक्त कर उन्होंने

प्रश्न किया–"क्यों, अब कैसे हो ?"

"बहुत अच्छा हूँ। मै तो आनन्द–सागर में विहार कर रहा था।" मेरे इस उत्तर से गुरूजी को अपार प्रसन्नता हुई और उसी समय से वे मुझसे पुत्रवत् स्नेह करने लगे। गुरू–कृपा से मैं ब्रम्हानंद में समाधि लगाकर बैठना भी सीख गया।

"इस ज्ञान को प्राप्त करने के अन्य मार्ग भी है, पर वे सभी नितान्त झूठे एवं मूर्खतापूर्ण हैं। ये मार्ग बतलाने वाला शिक्षक भी स्वार्थी एवं छली होते हैं। शिष्यों से स्वार्थ साधकर वे अपने आप तो प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते है, पर शिष्यों का एकदम कोरा रखते है। जिन गुरूओं ने स्वयं सत्य ज्ञान प्राप्त नहीं किया है, वे दूसरे को क्या शिक्षा देंगे ? मेरे सद्‌गुरू ने मुझे अल्पकाल में ही सरल, सुगभ भाषा में आध्यामिक ज्ञान का प्रथम पाठ दिया। अन्नमयं ब्रम्हाः। इस तत्व से आरंभ कर उन्होंने प्रत्यक्ष परमेश्वर से एक रूप होने के लिए समाधि का दुःसाध्य मार्ग भी मुझे दिखा दिया। तभी मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि गुरू–कृपा के बिना सबकुछ व्यर्थ है। एक सद्‌गुरू ही हमें मोक्ष–प्राप्ति का सत्य मार्ग दिखा सकता है।"

श्री साई महाराज की सुनाई हुए एक अन्य कहानी इस प्रकार थी–"जब मैं छोटा था, तब नौकरी की खोज में जहाँ–तहाँ भटकने हुए मुझे जरी–बुटी का काम सीखने का अवसर मिला। मेरे काम को देखकर मेरा स्वामी मुझसे बहुत ही प्रसन्न हुआ। उनके पास अन्य कई कारीगर थे। पर उसने अपनी इच्छा से मुझे उन सबसे कई गुना अधिक वेतन दिया। उसका मुझ पर बडा स्नेह रहा। उसने मुझे एक नया अँगरखा और एक पगडी भी दी। किसी व्यक्ति ने जो भी कुछ दिया, उससे अधिक ईश्वर अवश्य देगा। परमात्मा के द्वारा प्रदान की हुई वस्तु की तुलना किसी मानव द्वारा दी हुई वस्तु से हो ही नही सकती, यह मैने भली–भाँति अनुभव किया। मेरे इस वचन का अर्थ कोई भी समझ नही पाता। हर एक मनुष्य मेरे पास आता है और

कुछ–न–कुछ मुझ से प्राप्त करना चाहता है। परमेश्वर के पास कितना विशाल ज्ञान–भंडार है। दोनों हाथों से यदि आप लूटना चाहें तो भी आप अनेक जन्मों में उसे प्राप्त नहीं कर सकते। इतना अगाध तथा अपरंपार ज्ञान विश्व में भी स्थान–स्थान पर बिखरा पड़ा है। भगवान की लीलाएँ और उसकी अनन्त शक्ति आपको अनुभव कराने में ही मेरी कुशलता है।''मैं कौन हूँ ? यह नश्वर देह मिटट्री में मिल जाएगी। पंचप्राण वायु में घुल जाएँगे। पर बीता हुआ काल पुनः नहीं लौटेगा। आज मैं यहाँ हूँ, कल कहीं अन्यत्र चला जाऊँगा। माया की श्रृंखलाओं से मै भी बद्ध हूँ। मैं अपने लिए इतना चितिन्त नही हूँ, जितना आप के लिए हूँ। इस जन्म में कुछ तो सत्कर्म करो। मेरे द्वारा, चाहे थोड़ा ही सही, आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करो। परमात्मा तुम्हारा भला करेगा और तुम्हें सदा सुखी रखेगा।

==========

उन्नीसवाँ अध्याय

श्री साई महाराज का परब्रम्हा-निवास

गोधूली का समय था। वन में घास चरने गए हुए पशु गोशालाओं में वापस आ गए थे। उन्हें खूँटों से बाँधा ही जाने वाला था कि एकाएक नेवासा गाँव के बालाजी पाटील के घर में नाग के घुसने से खलबली मच गई। गाये जोर–जोर से रम्भाने लगी। स्त्रियाँ और बच्चे रोने लगे। बालाजी का साई में पूर्ण विश्वास था। उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि आज किसी कारणवश श्री बाबा ही सर्प के रूप में मेरे घर पधारे है, और उन्होंने दूध से भरा एक कटोरा लाकर नागदेवता के सामने रख दिया और साथ ही हाथ जोडकर कहा–''बाबा, हम निरपराध लोगों को आप अकारण क्यों डराते है ? भक्ति भाव से लाया हुआ दूध पी लीजिये और शांति से यहाँ से जाइये।'' संयोग की बात है कि जब लोग हाथों में डंडे लेकर सर्प को मारने

के लिए तत्पर थे, तब वह भयानक नाग धीरे–धीरे आगे बढ़ा और कटोरे में रखा हुआ दूध पीकर शांतिपूर्वक जैसे आया था, वैसे ही चला गया। इसके बाद सर्प को ढूँढ निकालने का पर्याप्त प्रयन्त किया गया; परन्तु, उसका कहीं पता न चला।

इसी प्रकार कोईमतूर में घटी हूई घटना अधिक आश्चर्यकारक तथा विश्वसनीय है। वहाँ उपस्थित लोग जब भजन में मस्त थे, तभी सहसा सभामंडप में बीचो–बीच एक सर्प प्रकट हुआ। लोगों ने नागदेवता को दूध पिलाया और फल–फूल चढ़ाकर शास्त्रानुसार उसकी पूजा की। श्री साई महाराज का चित्र भी वहाँ रखा गया। हजारों लोग पत्थर की मूर्तियों की भाँति स्तब्ध खड़े यह चमत्कार देख रहे थे। इस घटना के समय एक छाया–चित्र भी लिया गया, जो 'साई–सुधा' के जनवरी १९४३ के अंक में प्रकाशित हुआ था।

श्री साई महाराज के एक अत्यन्त प्रिय भक्त मेघा की मृत्यू के कुछ ही दिन बाद एक बहुत ही विस्मयजनक घटना घटी। श्री साई के सान्निध्य में देह–त्याग कर कई भक्तों ने अपना उद्धार कर लिया था। पर व्याघ्र जैसे एक हिंसक प्राणी का भी श्री साई के चरणों में देह विसर्जन करना सचमुच ही अभूतपूर्व घटना थी।

एक बार तीन दरवेश अपनी कला का प्रदर्शन करने शिरडी आये। उनके साथ एक अति भयानक व्याघ्र भी था, जो लोह श्रृंखलाओं से बद्ध था। व्याघ्र रोग–ग्रस्त था और दरवेश चिन्ता में पड़े हुए थे। श्री साई महाराज के आशीर्वाद से व्याघ्र रोग–मुक्त हो जाएगा और हमारी उदर–पूर्ति का साधन लेकर द्वारकामाई में पहुँचे। सब लोग यह विलक्षण घटना श्वास रोके देखते रहे। धीरे–धीरे व्याघ्र द्वारकामाई की सीढ़ियों तक पहुँचा। श्री बाबा के नेत्रों की दिव्य ज्योति देखकर अत्यन्त आदर से उस हिंसक पशु ने अपना सर नीचे किया। केवल दो ही क्षण दोनों एक–दूसरे की ओर देखते रहे।

एक–एक पग व्याघ्र ने तीन–बार भूमि पर प्रहार किया और आखिरी बार एक भयानक गर्जना के साथ उसने श्री बाबा के चरणों में देह त्याग दी। इस अद्‌भुत रीति से व्याघ्र की मृत्यु देखकर दरवेश पहले तो दुःखी हो उठे। पर साधु–सन्तों के चरणों में मृत्यु पाना भी भाग्य की बात होती है। पूर्व कर्मानुसार व्याघ्र ने इस प्रकार एक महान सन्त के चरण कमलों में मृत्यु पाकर सद्‌गति प्राप्त की। इस भावना से दरवेशों का हृदय प्रेमानन्द से भर आया। दरवेश ने श्री साई महाराज से प्रार्थना की वे स्वयं ही व्याघ्र का अन्तिम कर्म करने की व्यवस्था करें। श्री साई महाराज ने व्याघ्र को शिवजी के मन्दिर के निकट दफनाने की आज्ञा दी।

दैव–योग भी कैसा विलक्षण होता है। व्याघ्र की मृत्यु से ठीक सातवे दिन श्री साई महाराज ने भी अपने पार्थिव शरीर का त्याग किया।

श्री साई महाराज की शक्ति इतनी महान और विलक्षण थी, फिर भी वे कभी–कभी अत्यन्त विचित्र आचरण करते थे; इतना विचित कि उसका अर्थ समझना भी लगभग अंसभव हो जाता था। जैसे कोई संकट में घिरा हुआ भक्त हठ करके भगवान के चरणों में अपना सिर फोड़ने के लिए उतारू हो जाता है, वैसी ही कुछ विवशता श्रीमती औरंगाबादकर नामक एक स्त्री की भी देखी गयी। उनका विवाह हुए सत्ताईस वर्ष हो चुके थे। पर, फिर भी उनके संतान होने का कोई चिन्ह दिखाई न दिया। अनेक मनौतियाँ मानने और उपवास–व्रतों के बावजूद जब उनकी मनोकामना पूर्ण न हुई तो अन्तिम उपाय के तौर पर श्रीमती औरंगाबादकर ने श्री साई महाराज के चरणों में शरण ली। श्री बाबा के दरबार में सदैव भक्तों की भीड़ जमा रहती थी। श्रीमती औरंगाबादकर को मन की इच्छा व्यक्त करने का कोई अवसर नही मिला। परंतु वह श्री बाबा की सेवा चाकरी बराबर करती रही थी। अन्त में हार कर उन्होंने श्री बाबा के परम भक्त माधवराव (शामा) से सहायता करने की प्रार्थना की। एक दिन यह देखकर कि श्री बाबा प्रफुल्ल एंव शांत मुद्रा

से द्वारकामाई में बैठे है, माधवराव ने उनसे कहा—"बाबा, यह औरंगाबादकर कितने ही दिनों से आपकी सेवा—चाकरी कर रही है। उनके आँचल में आप यह नारियल डाल दीजिए। आपके आशीर्वाद से उन्हें पुत्र—लाभ होना चाहिए।" इस पर विनोद भरी वाणी में श्री बाबा बोल पडे—"अरे देखो, लोग भी कितने मूर्ख होते है। नारियल से क्या कभी बच्चा भी होता है ? उससे परमेश्वर की अराधना करने के लिए कहो। परमेश्वर की कृपा हुई तो उसे अवश्य इच्छित फल मिलेगा।"

माधवराव का इस उत्तर से समाधान न हुआ। उन्होंने श्रीमती औरंगाबादकर को श्री बाबा से प्रसाद देने के विशेष आग्रह किया। तब श्री बाबा ने प्रसन्नतापूर्वक श्रीमती औरंगाबादकर के आँचल में नारियल डाल दिया और आशीर्वाद देते हुए कहा—'आजसे बारह महीनों के अन्दर—अन्दर तुम्हें पुत्र—लाभ होगा।" माधवराव ने भी हर्षपूर्वक श्रीमती औरंगाबादकर की ओर मुड़कर कहा—"माई, बाबा ने जो कुछ कहा उसके लिए मै साक्षी हूँ। यदि बाबा बताये हुए समय के अन्दर पुत्र प्राप्त न हुआ तो यही नारियल मैं बाबा के मस्तक पर फोड़ डालूँगा और उन्हें शिरडी से निकाल दूँगा।" माधवराव को अपनी यह मूर्खतापूर्ण भीष्म प्रतिज्ञा पूरी करने का अवसर ही नहीं मिला; क्योंकि एक वर्ष के भीतर ही श्रीमती औरंगाबादकर एक नन्हें कोमल बालक को साथ लिए शिरडी आ पहुँची। बालक को उन्होंने श्री बाबा के चरणों में डाल दिया और मनौती पूरी करने के लिए उन्होंने श्री बाबा के श्यामकर्ण घोडे के लिये छः सौ रूपये खर्च किये।

श्री साई महाराज के भक्तों संख्या दिनोदिन बढ़ने लगी। दिनांक १० दिसम्बर १९०९ से लोगों ने श्री बाबा की पूजा करने तथा जुलूस निकालने की प्रथा आरम्भ की थी। श्री साई का दरबार भरना आरम्भ हुआ। चावडी जाने वाला जुलूस अत्यन्त प्रेक्षणीय तथा उत्साहजनक ढंग से निकलने लगा। हजारों लोग द्वारकामाई में एकत्रित होते थे। हर प्रकार के वाद्यों से सम्पन्न भजन—मण्डलियाँ अति उत्साह के साथ राम—नाम कीर्तन करते हुए श्री साई

महाराज का जुलूस निकालती थी। श्यामकर्ण नामक श्री बाबा का अत्यन्त प्रिय घोड़ा जरी–बूटे वाली शाल तथा काठी से सुसज्जित हो जुलूस के आगे–आगे चलता था। तात्या पाटील स्वयं अपने हाथों से श्री बाबा के स्कन्ध पर जरी का उत्तरीय डालकर उन्हें सहारा देते हुए द्वारकामाई से बाहर लाते थे और फिर बाजे–गाजे सहित, हरि नाम का उच्चार करते हुए यह जुलूस चावड़ी की ओर बढ़ता था। दशों दिशाएँ अबीर–गुलाल से भर जाती थी। मृदंग, ताल शहनाई तथा चौघड़ा की झंकार के मध्य निकलने वाला श्री बाबा का यह जुलूस अत्यन्त मनोहारी होता था। नानासाहेब निमोणकर श्री बाबा के शीश पर छत्र लगाते थे। श्री बाबा की पूजा अर्चना कर उन्हें अर्घ्य देने का काम बापूसाहेब जोग को सौंप दिया गया था। चावड़ी में पहुँचकर श्री बाबा जब सुसज्जित आसन पर बैठते थे, तो माधवराव चिलम सुलगाने की तैयारी में लगते थे। भगत म्हालसापति चिलम सुलगाकर स्वयं दो–चार कश लगाने के पश्चात् चिलम श्री बाबा के दे देते थे। श्री बाबा के हाथों से पुनीत हुई चिलमें आज भी द्वारकामाई की एक दीवार में चूने से लिपाई करके सुरक्षित रखी हुई है। आरती समाप्त होते ही श्री बाबा सब को आशीर्वाद देते थे। प्रसाद–वितरण के बाद श्री बाबा सब भक्तों को अपने–अपने निवास–स्थान पर जाने की आज्ञा देते थे। फिर श्री बाबा स्वयं अपना बिस्तर बिछा कर सो जाते थे।

कलयुग में दान का महत्व बहुत बताया गया है। दीन–हीनों, क्षुधातों को अन्न–दान करना, 'दान' का सर्वश्रेष्ठ प्रकार समझा जाता है। श्री साई महाराज स्वयं अपनी उदर–पूर्ति भिक्षा द्वारा प्राप्त अन्न से ही करते थे और भक्तों द्वारा अर्पित प्रसाद में से भी थोड़ा ग्रहण करते थे। पर और लोगों को अन्न–दान करने का उनका अभिनव प्रयोग मति कुंठित करने वाला था। एक तो स्वयं जाकर बाजार से सारी खाद्य–सामग्री अपने हाथों से एकत्रित कर लाते और फिर द्वारकामाई के बाहर चूल्हा सुलगाते थे। चूल्हे पर पानी से भरी हुई एक बडी हंडी रख देते थे। अपनी लहर के अनुसार मीठे चावल या पुलाव तैयार कर लेते थे और अपनी इच्छानुसार ही भिन्न–भिन्न प्रकार के मसाले

हंडे मे डालकर उबलते हुए मिश्रण को हाथ हिलाते रहते थे। फिर भिन्न–भिन्न पदार्थों से तैयार की हुई उस खिचड़ी को स्वयं ही वहाँ उपस्थित भक्तों को पेट भर खिलाते थे। परोसने के लिए चम्मच या झारी का वे कभी प्रयोग नहीं करते थे। किसी ने भी यह नहीं देखा कि उनके हाथ जले या झुलसे हों। जब हंडे में खाद्य सामग्री पूर्णतया पक जाती थी तो श्री बाबा बाहर से हंडी उठाकर द्वारकामाई में लाते थे और पके हुए अन्न का कुछ भाग अपने निकटतम भक्तों के लिए अलग रखकर शेष खाद्य वहाँ एकत्रित लोगों में बाँट देते थे। श्री साई महाराज के हाथ से प्रसाद प्राप्त करने के लिए भक्तों का झुण्ड का झुण्ड द्वारकामाई के सामने इकट्ठा हो जाता था। श्री बाबा के जीवन काल में शिरडी में एक भी भिखारी भूखा न रहा। आज भी शिरडी के भिखारी पैसों के लोभ से दूर रहते है और श्री बाबा के जीवन–काल में जैसी प्रथा थी, उसी के अनुसार वे केवल कुछ खाने–पीने की सामग्री ही माँगा करते है।

श्री साई महाराज जब प्रसाद वितरण करते थे, तब वर्ण–विषयक भेद–भाव नही बरता जाता था। श्री साईबाबा द्वारा तैयार की हुई खिंचडी में कभी–कभी माँस के टुकडे भी डाल दिये जाते थे। ऐसे समय वे ब्राम्हणों को वह खिचड़ी खाने के लिए बाध्य नही करते थे। हाँडी का प्रसाद ग्रहण करना या न करना भक्तों की इच्छा पर ही निर्भर होता था। श्री साई बाबा का यह आग्रह कभी न रहा कि भक्तों को प्रसाद ग्रहण करना ही चाहिए। सन १९१० तक हाँडी की यह प्रथा चलती रही। बाद में भक्त लोगों की संख्या बेहिसाब बढ़ती गई। भक्तों द्वारा अप्रण किये गये नैवेद्यों का परिणाम इतना बढ़ गया कि श्री बाबा को भक्तों को बाँटने के लिए हाँड़ी में खाद्यान्न पकाने की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई और उन्होंने हाँडी का प्रसाद देना ही बिल्कुल बन्द कर दिया।

श्री साई जब स्वयं परदे के भीतर भोजन के लिए बैठते थे तो उनके साथ कुछ चुने हुए भक्त भी होते थे। अन्य भक्त अपनी–अपनी नैवेद्य की थालियाँ परदे के अन्दर सरका देते थे। सारी सामग्री एकत्रित कर श्री बाबा

पहले भगवान को नैवेद्य चढ़ाते और बाद में अपने साथ भोजन करने वाले भक्तों को खिलाते थे। इच्छा होती थी तो स्वयं भी कुछ खा लेते थे। बचा हुआ सारा प्रसाद बाहर इकट्ठे हुए भक्तों में बाँट दिया करते थे। श्री बाबा के हाथों से जो प्रसाद बाँटा जाता था, उसका स्वाद कुछ निराला ही होता था और सभी लोग उसे बड़े चाव से ग्रहण करते थे। ऐसे ही एक अवसर पर छाँछ से भरा हुआ एक प्याला श्री बाबा 'श्री साई सच्चरित्र' के लेखक श्री हेमाडपंत की ओर बढ़ाया। हेमाडपंत का पेट पहले से ही भरा हुआ था। उन्होंने केवल श्री बाबा को प्रसन्न करने के लिए एक घूँट पी लिया और चुपके से प्याला एक बगल में रख दिया। पर श्री बाबा उनकी यह चेष्टा देखने से न चूके। श्री हेमाडपंत की ओर मुड़कर वे बोले–"अरे पागल, वह सारी छाँछ पी ले। इसके पश्चात ऐसा स्वर्ण अवसर कभी प्राप्त न होगा।" श्री बाबा के इन शब्दों का अर्थ हेमाडपंत उस समय समझ नहीं सके। पर श्री बाबा की आज्ञानुसार हेमाडपंत ने सारी छाँछ पीली। परन्तु, दुर्भाग्यवश श्री बाबा के हाथ का वह प्रसाद सचमुच ही अन्तिम सिद्ध हुआ; क्योंकि उसके कुछ ही समय पश्चात श्री बाबा समाधिग्रस्त हो गए। श्री बाबा किसी भी प्रकार का आडंबर या प्रदर्शन न करते हुए कोई निश्चित ध्येय सामने रखकर किसी विशिष्ट कार्य को भक्तों के हाथों धीरे–धीरे पूर्ण करवा लेने की पद्धति अपनाते थे; जो सचमुच ही प्रशंसनीय होती थी। श्रीमान बूटीसाहब द्वारा निर्मित कराए गए मुरलीधर के मंदिर की कहानी कुछ ऐसी ही है। जब बूटीसाहब दीक्षित बाड़े में ठहरे हुए थे तो एक रात्रि में स्वप्न में श्री बाबा ने उन्हें प्रेरणा दी, "तुम यही इसी स्थान पर एक भव्य मंदिर बनाओ।" संयोग से ठीक उसी समय शामा (माधवराव) को भी वही स्वप्न हुआ। प्रातःकाल सोकर उठने के बाद शामा की चिन्ताग्रस्त मुद्रा को देखकर बापूसाहेब ने उनके कारण पूछा। शामा ने कहा कि कल रात्रि में श्री साई स्वप्न में प्रकट हुए थे और उन्होंने मुझसे कहा–"यहाँ धर्मशाला के स्थान पर एक भव्य मंदिर खड़ा करो, मै आप सब लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण करूंगा।" बापूसाहेब को स्वप्न में जो आभास हुआ था, उसकी पुष्टि होने से उन्होने दीक्षित, माधवराव आदि लोगों के

परामर्श से एक मंदिर बनवाने का निश्चय कर लिया। श्री बाबा ने भी पूर्ण सहमति प्रकट कर दी। बापूसाहेब जोग मंदिर की इमारत बनवाने के काम में जुट गये। मुरलीधर की सुंदर मूर्ति के आगे सभा–मंडप बनाने की कल्पना का उदय होने से पुनः बाबा की अनुमति प्राप्त करने का प्रश्न उपस्थित हुआ। श्री साई महाराज उस समय लेंडी बाग की ओर जा रहे थे। उन्हें वहीं रोककर भक्तों ने प्रश्न किया। कुछ क्षण विचारमग्न होते हुए श्री बाबा बोले–"आप अपनी इच्छानुसार मंदिर बनवाइये। मूर्ति प्रतिष्ठा की जल्दी न कीजिये। मैं स्वयं ही वहाँ वास करूँगा। मुझे वह स्थान बहुत पसंद आया है। यहीं पर सदैव निवास करते हुए आप सब बाल–गोपालों के साथ हँसते–खेलते जीवन बिताना चाहता हूँ। आज से शुभ मुहूर्त में इस मंदिर का कार्य आरम्भ करो।"

श्री बाबा की इच्छानुसार नारियल फोड़कर शुभ मुहूर्त में काम आरम्भ किया गया। कुछ ही वर्षो के पश्चात मंदिर का कार्य पूर्ण हुआ। मुरलीधर की एक सुन्दर मूर्ति बनवाई गई। बापूसाहेब की हार्दिक इच्छा थी कि मूर्ति की स्थापना श्री साई महाराज के हाथो से हो जाये। परन्तु श्री बाबा की लीलाएँ तो न्यारी होती थी। ठीक उसी समय श्री बाबा रोग–ग्रस्त हुए और दिन व दिन वे अधिकाधिक अशक्त होते गये। यहाँ तक कि अन्तिम क्षणों में उन्होंने "मुझे बूटी के मंदिर में रखा जाये, "यह आज्ञा दी। इसी कारण इस भव्य मंदिर में ही श्री साई महाराज की समाधि बनाई गई और इस प्रकार मुरलीधर के उस पवित्र स्थान में श्रीकृष्ण के अवतार श्री साईनाथ महाराज की प्रतिष्ठा हुई।

श्री साई महाराज का निर्वाणकाल समीप आया। दिनांक २७ सितम्बर १९१८ को श्री बाबा के शरीर का तापमान कुछ बढ़ गया। दो–तीन दिन तो तापमान में उतार–चढ़ाव जारी रहा। चौथे दिन श्री बाबा ने अन्न त्याग दिया। इससे शरीर में दुर्बलता बढ़ गई। सत्रहवें दिन दिनांक १५ अक्टुंम्बर, १९१८ को दोपहर ढाई बजे की घड़ी अन्तिम क्षण सिद्ध हुई और श्री साईनाथ महाराज की आत्मा यह नश्वर देह त्यागकर परब्रम्ह में लीन हो गई।

बीसवाँ अध्याय

विरहाश्रुओं की बाढ

ठीक दो वर्ष पूर्व इसी समय दशहरे के बाद के दिनों में, श्री बाबा एकाएक क्रोधित हुए थे। उन्होंने अपने शरीर के वस्त्र उतारकर कर धूनी में फेंक दिये थे और क्रोधित होकर अंगारों के समान लाल–लाल आँखो से इधर–उधर दृष्टि दोड़ाने लगे थे। श्री बाबा के एक परम भक्त भागोजी ने उन्हें शांत किया और वस्त्र धारण करने के लिए विवश किया। फिर दो ही वर्षो के पश्चात दशहरे के शुभ मुहूर्त पर श्री बाबा ने शरीर पर धारण किये हुए वस्त्रों के साथ ही अपने पार्थिव शरीर का भी परित्याग किया और मानो अपने भक्तों को यह जानने का अवसर दिया कि वे कौन है।

उसी विजयादशमी के कुछ दिन पूर्व श्री साई महाराज का परम प्रिय भक्त रामचन्द्र पाटील रोग–ग्रस्त हुआ। उसका अन्त–काल समीप था। उसने बाबा के नाम का जप आरंभ किया। तब श्री बाबा स्वयं उससे मिलने पहुँचे और सांत्वना देते हुए उन्होंने कहा–"अरे, तुम चिन्ता न करो। तुमसे मृत्यु अभी दूर है। तुम शीघ्र ही रोग–मुक्त हो जाओगे। यमदूत की लाई हुई तुम्हारी हुण्डी मैंने लौटा दी है। परन्तु, मुझे तात्या पाटिल की चिन्ता है। आगामी विजयादशमी को निश्चित ही उसके लिए मृत्यु का आमंत्रण आयेगा। यह बात किसी से न कहो। व्यर्थ ही सब चिन्ता में पड़ जायेंगे।" श्री बाबा के शब्द ब्रम्ह–वाक्य होते थे। रामचन्द्र पाटील बिल्कुल ठीक हो गया और घूमने–फिरने लगा। पर, अब वह तात्या के विषय में चिन्तित हो उठा। उसने किसी से भी श्री बाबा की कही हुई बात का उल्लेख नहीं किया था। उसने अपने परम स्नेही बाला शिंपी को ही श्री बाबा की भविष्यवाणी से परिचित कराया था। सन १९१८ में जब विजयादशमी का दिन निकट आया तो श्री साई बाबा के शब्द सत्य सिद्ध हुए। तात्या पाटील सचमुच ही रोग से पीड़ित हुआ। उत्तरोत्तर उसके शरीर में क्षीणता बढ़ती गई और परिस्थिति ने उग्र रूप धारण कर लिया। सभी लोग चिन्तातुर हो उठे। तात्या पाटील अन्तिम साँस लेने लगे। नाड़ी का स्पन्दन मन्द हो गया। लोगों ने देखा कि अन्तिम क्षण में मानो एकाएक बिजली गिरी और एक भयानक दर्द भरी चीख सुनाई दी। ठीक उसी क्षण द्वारकामाई में श्री साई का प्राणोत्क्रमण हुआ। श्री

बाबा ने अपने भक्त के लिए स्वयं ही मृत्यु को अपनाया और तात्या पाटील को कुछ दिन और जीने का अवसर दिया।

काल–घटना भी कैसी विचित्र होती है ? विजयादशमी के लगभग पन्द्रह दिन पूर्व द्वारकामाई में झाडू–बुहारी करने वाले एक लडके के हाथ से वह ईट जिस पर श्री बाबा सदैव सिर रखकर सोते थे, अचानक ही टूट गई। उस ईंट का महत्व कोई भी भक्त समझ नहीं सका था। पर लौटने पर जब श्री बाबा को ज्ञात हुआ कि ईंट टूट चुकी है, तो वे बहुत दुःखी हुए। श्री बाबा अन्तःकरण खिन्नता से भर और वे उदास बैठे रहे। फिर अत्यन्त उद्वेग के साथ बोले–''केवल ईंट ही नहीं टूटी, वरन मेरा सारा जीवन चकनाचूर हो गया। वह ईंट मेरी जीवन–संगिनी थी। उसका आधार लेकर ही मैं कई वर्षो तक आत्म–ज्ञान के प्रयोग और ध्यान–धारणा करता रहा। मुझे वह ईट अपने पंचप्राणों से भी अधिक प्रिय थी।'' इस प्रकार के उद्गारों से भी श्री बाबा ने मानो अपने भक्तों को बताया कि उनका अवतारकार्य पूर्ण हो चुका है और उनका अन्तिम–काल निकट आ गया है।

साधारणतः सभी धर्मो में प्रचलित पद्धति के अनुसार जब किसी मनुष्य का अन्तिम काल समीप होता है तो उसके निकट प्रार्थना नाम–जप या कोई धर्म–ग्रंथ पढ़ा जाता है। श्री साई महाराज को यह पूर्णतः ज्ञात हो चुका था कि उनका अन्तिम काल निकट आ चुका है। इसीलिये उन्होंने अन्तिम दो दिन वे नामक एक सज्जन को 'राम–विजय' ग्रन्थ का पारायण करने की आज्ञा दी। एक बार पारायण हो जाने के पश्चात श्री बाबा ने दुबारा ग्रन्थ पढ़ने की आज्ञा दी। इस प्रकार श्री बाबा ने तीन–चार बार 'राम–विजय' ग्रन्थ का पारायण करवाया।

केवल आखिरी तीन–चार दिन ही श्री साई महाराज ने अपना घूमना–फिरना, उठना–बैठना बन्द किया था। अन्तिम क्षण तक वे पूर्णतः सचेत रहे। पूर्ण चेतनावस्था में वे भक्तों के साथ वार्तालाप करते रहे और भक्तों को 'दुःख शोक न करो, अपना धीरज न खो बैठो, '' इस प्रकार का उपदेश करते रहे। परिणाम यह हुआ कि किसी भी भक्त को यह कल्पना न हुई कि बहुत ही शीघ्र उनके ऊपर कोई वज्राघात होने वाला है। सदैव की भाँति श्री बाबा ने काकासाहेब दीक्षित, बूटीसाहेब आदि भक्तों को भोजन करने

के लिए अपने–अपने घर भेज दिया। आरती–पूजा आदि सब नित्य–कर्म सदा की भाँति शांतिपूर्वक सम्पन्न हुए। निकट के सभी भक्त वहाँ उपस्थित थे। लक्ष्मीबाई शिंदे को श्री बाबा ने नौ रूपये प्रसाद–स्वरूप दिये। शामा (माधवराव) द्वारकामाई की सीढ़ी पर बैठे थे। श्री बाबा ने अपनी क्षीण आवाज से उनसे कहा–"मेरा जी घबरा रहा है। मुझे अब बूटी की हवेली में ले चलो।" श्री साई के यह उद्‌गार अंतिम सिद्ध हुए ! बायजा बाई के शरीर पर उन्होंने अपना मस्तक रखा। भागोजी का ध्यान श्री बाबा की ओर था ही। उसने निमोणकरजी को बुलावा भेजा। नानासाहेब ने श्री बाबा के मुख में गंगाजल डाल दिया और तब 'देवा, देवा' के हृदय–द्रावक शब्दों से सारा वातावरण काँप उठा।

श्री साई महाराज के परलोकगमन का समाचार आग की तरह चारों दिशाओं में फैल गया। शिरडी ग्राम के सभी छोटे–बड़े निवासी दुःख शोक में डूब हुए द्वारकामाई की ओर दौड पडे। आस–पास के गाँवों में रहने वाले भिन्न–भिन्न धर्मावलंबी लोग अपना काम–धंधा जैसे का तैसा छोड़ पागलों की भाँति द्वारकामाई की ओर दौड़ने लगे। सर्वत्र हाहाकार मच गया। स्त्रियों और बच्चों के करूण क्रन्दन से मानों आकाश फटने लगा। मार्गों पर चलने वाले लोग दुःखावेश में लड़खड़ाने लगे कुछ लोग जोर–जोर से छातियाँ पीट रहे थे तो कुछ दुःख का आघात सहन न कर सकने के कारण स्थान–स्थान पर मूर्च्छित हुए पड़े थे। आसुओं की गंगा–यमुना सर्वत्र बहने लगी। सारी चराचर सृष्टि जैसे काली पड़ गई। अपने तेज से शिरडी में तीस–चालीस वर्ष तक निरन्तर चमकने वाला दीप्तियुक्त तारा टूट गया, अस्त हो गया और सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार छा गया।

श्री बाबा के लीला संवरण के कुछ ही समय पश्चात इस बात पर थोड़ा वाद–विवाद हुआ कि श्री बाबा का अन्तिम संस्कार किस पद्धति के अनुसार हो। कुछ लोगों की सम्मति यह थी कि द्वारकामाई के सामने जो खुला स्थान था, वही पर श्री साई महाराज की समाधि बनाई जाये। परन्तु अधिकांश भक्त लोग इस बात पर सहमत हो गये कि श्री बाबा की अन्तिम इच्छानुसार बूटी की हवेली में ही उनकी समाधि बनाई जाये। अन्तिम निर्णय तक पहुँचने में पर्याप्त समय नष्ट हुआ। अन्त में कोपरगाँव के तहसीलदार

साहब ने वहाँ उपस्थित सभी भक्तों के मतों की छानबीन के उपरान्त यही निर्णय दिया कि श्री बाबा की समाधि बूटी की हवेली मे ही होना चाहिए। छत्तीस घण्टों के पश्चात बहुत ही विशाल पैमाने पर बाजे–गाजे के साथ श्री बाबा के पार्थिव शरीर का जुलूस बूटी हवेली में लाया गया। और हिन्दू संस्कारों के अनुसार ही श्री साई की समाधि बना दी गई।

प्रो. नारके ने इस प्रसंग को प्रत्यक्ष अपनी आँखो से देख उसका विस्तृत वर्णन लिखा है। प्रोफेसर साहब कहते है कि–"इतनी लम्बी कालावधि के पश्चात भी श्री बाबा के शरीर में कोई बिगाड़ न आया और शरीर में ऐठन तो नाम–मात्र के लिए भी नहीं था। उनका चेहरा बिल्कुल शांत दिखाई दे रहा था। उनके हाथ–पैर आदि सारे अवयव सुगमता से हिलाये जा सकते थे। उनके शरीर पर जो कफनी थी, वह भी बिना फाडे बड़ी सरलता से उतारी जा सकी।

बुधवार का प्रातःकाल श्री साई महाराज ने स्वप्न में प्रकट हो लक्ष्मण मामा को आज्ञा दी थी–"चलो, जल्दी उठो। बापूसाहेब की राह न देखो। मेरा अवतार–कार्य पूर्ण हुआ। पूजा की सारी सामग्री लेकर आओ।" लक्ष्मणमामा सचमुच ही आज्ञानुसार दौड़ते हुए आये और किसी की भी परवाह न करते हुए उन्होंने श्री बाबा के मृत शरीर की शास्त्रानुसार अंतिम पूजा–अर्चना की और आरती उतारी। दूसरे दिन दासगणूजी को पंढरपूर में श्री बाबा ने दर्शन देते हुए कहा–"शिरडी की द्वारकामाई ढह गई। शिरडी के दुकानदारों, पंसारियों ने मुझे बहुत तंग किया, इसीलिये मैं यह स्थान छोडकर जा रहा हूँ। अब तुरन्त ही शिरडी पहुँचो और मेरी समाधि को बकुल के फूलों का हार पहनाओ।" ठीक उसी समय दासगणूजी को शिरडी से भी तार पहुँच चुका था। वे अपने भक्त–परिवार सहित तुरंत शिरडी पहुँचे और बाबा की आज्ञानुसार समाधि पर बकुल के फूलों का हार चढ़ाया। दासगणूजी और उनके साथियों के भजन–कीर्तन से शिरडी गूँज उठी।

इस प्रकार श्री बाबा की दिव्य शक्ति का परिचय हजारों भक्तों का प्रथम क्षण से अन्त तक बराबर मिलता रहा। श्री साई महाराज की विविध प्रकार की लीलाओं तथा मति कुंठित करने वाले चमत्कारों को देखने के पश्चात किसी भी भक्त का अन्तःकरण प्रेमाश्रुओं से भर आयेगा। श्री साई एक

महान सन्त थे। वे प्रत्यक्ष परमात्मा के अवतार थे। भक्ति रूपी सुलभ मार्ग से अनभिज्ञ जीवों को सन्मार्ग की ओर अग्रसर करने का प्रशंसनीय कार्य सम्पादन करने के लिए ही वे इस संसार में आये थे। किसी भी भक्त के मन में इस सम्बन्ध में संदेह उत्पन्न होने का कोई कारण नही दीखता। अन्य संता के मार्ग से श्री साई का मार्ग भिन्न था। परन्तु, परिणाम की दृष्टि से उनका अपनाया हुआ मार्ग सर्वथा उचित तथा सांसरिक लोगों के लिए भी सुगम था। भक्तों को उपदेश देते हुए श्री साई महाराज कहा करते थे–"जो मुझे निरपेक्ष भाव से तथा सच्ची लगने से प्रेम करेगा, वही मेरे सत्य तथा शुद्ध स्वरूप को पहचान सकेगा। मेरे बिना सारा संसार उसे शून्यवत प्रतीत होगा। जो व्यक्ति अपने सब मनोविकार का मुझ में होम कर देगा, उसे मैं केवल इसी जन्म में नही, वरन् जन्म–जन्म में भी कभी निराधार नहीं छोडूँगा। मैं दयाधन परमेश्वर के प्रति अपनी शक्ति व्यय कर अपने भक्तों के उपकारों का ऋण चुकाऊँगा।"

श्री साई महाराज का आत्म–विश्वास अटूट था। अपने भक्तों के लिए उन्होंने अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की। इतनी महान योग्यता के युग–पुरूष यदाकदा ही जन्म लेते है। हमारी भारतभूमि का बड़ा भाग्य है, इसलिए यहाँ के लोगों को श्री साई जैसे सत्पुरूषों का अमूल्य सत्संग मिलता है और ऐसे सत्पुरूषों के दिखाये हुए भक्ति–मार्ग को अंगीकार कर हमें स्वयं भी अपनी आत्मिक उन्नति करने का स्वर्ण–अवसर प्राप्त होता है।

==========

इक्कीसवाँ अध्याय

श्री साई की बोधामृत-पूर्ण सूक्तियाँ

श्री साई महाराज की जीवन–चित्र आँखों के सामने लाने से ही भक्तों का अन्तःकरण प्रेमानन्द से भर आता है। श्री साई की लीलाओं का पठन–पाठन कर भक्त लोग गद्‌गद्‌ हो उठतें है। जिन भाग्यशाली भक्तों ने उनके साथ प्रत्यक्ष संबंध स्थापित कर लिया था। उनके पूर्व–जन्मों के पुण्य सचमुच ही महान और श्लाघ्य थे; क्योंकि श्री साई जैसे दिव्य सत्पुरूष के चरण–कमलों में अपना मस्तक नत कर उनके आशीर्वाद से पावन होने का

परम सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ था। संतो के चरणों में लीन होने पर सच्चा जिज्ञासु अपने मन के अंहकार, राग, द्वेष, वैर इत्यादि दोष शनैःशनैः नष्ट कर अपने मन तथा देह को शुद्ध कर ब्रम्हानंद की ओर एक–एक सीढ़ी कर अग्रसर होता जाता है।

श्री साई महाराज ने अपने हजारों भक्तों को यही कार्य सम्पादन करने के लिए सदैव प्रेरित किया और उन्हें सच्चे भक्ति मार्ग की ओर प्रवृत्त किया। "मनुष्य देह क्षणभंगुर है। अथाह जल में हिलकोरें खाते हुए बहने वाले एक लकड़ी के तख्ते की भाँति हम भी संसार के प्रवाह में बहते जा रहे है। तकदीर से कुछ जीवों की एक–दूसरे से भेंट होती है। वे एक दूसरे को प्रेम रज्जुओं से बाँधते है, और तदनन्तर ईश्वरीय प्रेरणा से एवं अपने प्रारब्ध के कारण ही लहर के एक झटके के साथ एक दूसरे से दूर हो कर नष्ट हो जाते है।" इस सत्य परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए श्री साई जैसे अलौकिक सत्पुरूष द्वारा प्रसारित दिव्य ज्ञान के प्रकाश में हमें मनुष्य–जन्म को सार्थक करना चाहिए। अन्त तक श्री साई महाराज यही उपदेश करते रहे। वे धनी धीर गंभीर; पर उतनी ही ममतापूर्ण वाणी में भक्त के ह्दय में प्रवेश कर उसके कानों मे यही मंत्र कहते थे कि–"अरे पागल! परमात्मा तेरा मालिक है। उसको पहचान। स्वेच्छा से अपनाये हुए भक्ति–मार्ग से उसकी उपासना कर। तुझ में जो अंहकार बसा है। उसे समूल नष्ट कर, ताकि तेरा वायु के झोंके खाने वाली शाखा की तरह चंचल मन स्थिर हो सके। तुझे शांति मिलेगी और तेरे हाथों से ही तेरा मनुष्य जन्म सार्थक होगा।"

जब तक श्री साई महाराज का शिरडी में वास रहा, तब तक वहाँ आने वाले हजारों भक्तों को उनकी दिव्य शक्ति का अनुभव प्रत्येक क्षण होता रहा। व्यवहार में पद–पद पर हमारे हाथों से जान–बूझकर कर या अज्ञानतावश कितनी ही भूले हो जाया करती है। प्रारब्ध का भोग तो हर एक को भोगना पड़ता है। संकटों एवं दुःख क्लेशों से त्रस्त हुए व्यक्तियों को उचित मार्ग–दर्शन करने वाला पथ–प्रदर्शक श्री साई के रूप में शिरडी में

वास कर रहा था और हजारों भक्तों ने उस समय इस अवसर से पर्याप्त लाभ उठाया था। आज भी उनके पार्थिव शरीर के पंचभूत में मिल जाने के पश्चात शिरडी में लोगों के झुण्ड के झुण्ड आ रहे है। इसका कारण यही है कि यद्यपि श्री साई महाराज को अपने पार्थिव शरीर को त्यागे हुए अनेक वर्ष हो चुके है, फिर भी उनकी अजर अमर आत्मा उस पवित्र स्थान में आज इस क्षण तक भी विदेहावस्था में वास कर रही है। इस कथन के सत्यता के लिए हजारों भक्तों की स्मृतियों एवं उन्हें पद–पद पर प्राप्त होने वाले साक्षात्कार के अनुभव पूर्णतया साक्षी है।

अन्य सभी क्षेत्रों की अपेक्षा शिरडी का स्थान अत्यन्त रम्य आल्हादकारक एवं मन में पवित्र, शुद्ध संस्कार उत्पन्न करने वाला है, इसका कारण यही है कि यहाँ आकर श्री साई समाधि पर विनम्र भाव से अपना मस्तक नत करने से सच्चे भावुक भक्त के अंतरंग में निर्मल, पवित्र भावनाओं का सहज स्फुरण होता है। उसका हृदय प्रेम से भर आता है तथा मन में सच्चा आनन्द अनुभव होने लगता है।

द्वारकामाई में प्रवेश करते ही वहाँ श्री साई की अत्यन्त मनोहारी प्रतिमा देखकर भक्त को प्रत्यक्ष श्री साई महाराज के ही अपने सम्मुख बैठने का अभास होता है। उनके दीर्घकालीन वास की साक्षी देने वाली उनके कर–स्पर्श से पुनीत हुई प्रत्येक वस्तु, जो वहाँ सुरक्षित रूप में रखी हुई है। आज भी सजीव दिखाई देती है। श्री साई की प्रज्वलित की हुई धूनी भी इस क्षण तक अखंड रूप से प्रज्वलित रखकर संस्थान ने भक्तों पर सचमुच ही अनंत उपकार किया है। इस धुनी की अग्नि एवं उसकी ऊदी के पीछे नितान्त रम्य इतिहास, परम्परा तथा सात्विक, धार्मिक संस्कृति है। ऊदी के द्वारा श्री साई महाराज ने अनेक भक्तों की मनोकामनाँए पूर्ण की थी और उनके दुखों का निवारण किया था। श्री बाबा के पवित्र कर–स्पर्श से पुनीत हुई यह ऊदी आज भी हजारों भक्तों के लिए स्वर्ण–भस्म से भी अधिक मूल्यवान सिद्ध होती रही है। कारण यह ऊदी इतनी प्रभावोत्पादक है कि केवल उसके स्पर्श

या सेवन मात्र से अमृत संजीवनी भाँति कार्य सिद्ध हो जाते है। भक्तों का यह निजी अनुभव है। श्री साई के चरणों में भक्त की जितनी अविचल श्रद्धा होगी, उसकी मात्रा में यह ऊदी प्रभावपूर्ण सिद्ध होती है। ऐसे प्रमाण बराबर मिलते रहते है।

एक समय था कि शिरडी एक अत्यन्त साधारण पिछड़ा हुआ गाँव था। वहाँ के निवासी भोले–भाले किसान थे और वे अधिकतर गन्ने की खेतीकरने वाले अशिक्षित; पर अत्यन्त सहृदय लोग थे। श्री साई महाराज ने इस देहात का कायाकल्प किया। संतो के हाथों में मिटटी को सोना बनाने का कितना सामर्थ्य होता है, यह आज इस क्षेत्र का भव्य रूप देखकर किसी भी भक्त के ध्यान में आ सकता है। आज तो शिरडी भारत–भुमि के पवित्र तीर्थों में से एक अत्यन्त पवित्र तीर्थ माना जाता है। श्री साई महाराज के इस स्थान पर वास कर वहाँ के लोगों में और वहाँ आने वाले भक्तों हृदयों में भक्ति एवं ईशोपासना का जो बीज बोया था, उसी बीज के आज कालान्तर में भव्य वृक्ष का रूप धारण कर लेने का दिव्य चमत्कार हमें शिरडी में प्रत्यक्ष दिखाई देता है। छोटे से शिरडी ग्राम का आज एक संस्थान में परिवर्तन हो चुका है। जादू के डण्डे के बदले हुए किसी दृश्य की भाँति वहाँ का बदला हुआ भव्य दृश्य देखकर कोई भी भक्त श्री बाबा के प्रति स्वाभाविक प्रेम एवं आदर प्रकट किये बिना रह नहीं सकता।

महाराष्ट्र में कितने ही सन्त समय–समय पर अवतीर्ण हुए और अपने अपने काल में उन्होंने समाज की बिगड़ी हुई अवस्था सुधारने का प्रयत्न किया तथा धर्म की अधोगति सँवारने का कार्य करना अपना अवतार कार्य पूर्ण किया। इन सभी संतों में श्री साई की योग्यता श्रेष्ठ कही जानी चाहिए; क्योंकि उन्होंने केवल एक हिन्दु धर्म को प्रोत्साहन देकर हिन्दु भक्तों को ही भक्ति–मार्ग का पाठन नहीं सिखाया, वरन् अपनी दिव्य वाणी से सभी धर्मों के लोगो को उनके अपने धर्म–तत्वों का एकीकरण कर "मानव–धर्म सर्वत्र समान है, परमात्मा–अल्लाह सब का मालिक है, प्रत्येक मनुष्य को

बंधुत्व–भाव एवं प्रेम से बर्ताव करना चाहिए" इस प्रकार ही उदात्त विश्व–बंधुत्व की शिक्षा दी। श्री साई महाराज का व्यक्तित्व इतना प्रभावपूर्ण एवं तेजस्वी था कि उनके जीवन–काल में शिरडी में धर्म को लेकर भूल से भी कभी कोई वाद–विवाद या उत्तेजना नही फैली। सारा भारत वर्ष हिन्दू–मुसलमान के झगड़ों से उपद्रवग्रस्त हुआ और भारत–भूमि के टुकडे होने में ही उन उपद्रवों का भीषण पर्यवसन हुआ; परन्तु, फिर भी उस भंयकर तूफान से शिरडी गाँव सर्वथा बचा रहा। प्रत्यक्ष शिरडी में हिन्दु–मुसलमान भाई–चारे के साथ रहते रहे। मुसलमानों की श्री साई में ऐसी ही श्रद्धा थी जैसी कि हिन्दुओं की। अन्य धर्मावलम्बी लोग भी साई महाराज को एक महान सत्पुरूष मानते हुए उनके चरणों में अपने शीश नत करते थे। तात्पर्य यह है कि श्री साई महाराज में तो समस्त चराचर सृष्टि के निर्माता जैसी अगम्य दिव्य शक्ति थी।

श्री साई महाराज के जीवन–चरित्र में जिज्ञासु भक्त को अष्टकोण वाले हीरे की भाँति अगणित चमत्कार तथा बोधामृत से ओत–प्रोत वचन दृष्टिगत होंगे, कोई भी भक्त निर्मल अन्तःकरण से श्री साई में निजी श्रद्धा दृढ़कर सकता है। श्री साई ने समय–समय पर प्रसंगानुसार जो बोध–वाक्य कहे है, उनका सतत् मनन करते रहने से उसे अध्यात्मिक उन्नति का लाभ भी प्राप्त हो सकता है।

श्री साई महाराज के अत्यन्त अमूल्य वचनों में से जो ग्यारह वचन विशेष महत्वपूर्ण एवं मनन के योग्य है, वे इस प्रकार है;

जो शिरडी में आएगा।
आपाद दूर भगाएगा।।१।।

"शिरडी में जो पैर रखेगा, उसकी समस्त अपदाये दूर हो जायेंगी।"

श्री साई ने इस प्रथम वचन के द्वारा मानो अपने भक्तों पर वरद–हस्त ही रखा है। श्री साई का यह आशीर्वाद ही है। भक्त शिरडी जाकर श्री साई की समाधि के सम्मुख अपना मस्तक नत करेगा तथा अनन्य भाव से उनकी शरण में जायेगा तो उसकी सारी विपदायें दूर कर उसे

सुख–शांति प्राप्त कराने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व श्री साई उठायेंगे। श्री साई की स्वर्गस्थ आत्मा अब भी शिरडी वास कर रही है और इसी कारण श्री बाबा ने इस अधिकारपूर्ण वाणी से यह वचन देकर भक्त को पूर्ण आश्वासन दिया है। दूसरा वचन देखिए :–

चढ़े समाधि की सीढ़ी पर।
पैर तले दुःख की पीढ़ी कर ।।२।।

"जो मेरी समाधि की सीढ़ी चढेगा, उसका सारा दुःख नष्ट हो जाएगा।"

महान दुःख से ग्रस्त हुए मनुष्य के लिए जीना भी असंभव हो जाता है। कोई शारिरिक व्याधि से पीड़ित होता है, तो कोई मानसिक व्याधि से हताश हो बैठता है। ऐसी त्रस्त मनःस्थिति में केवल धन अथवा स्वजन–सम्बधियों को सहानुभूतिपूर्ण शब्द उसके दुःख का निवारण नही कर सकते। ऐसे समय में श्री साई जैसे सदगुरू का यह वचन उसके दुःख से पीड़ित अन्तःकरण के लिए आशा की किरण सिद्ध हो तो कोई आश्चर्य नहीं। श्री साई महाराज की समाधि दर्शन से दुःखो का हरण होता है। यह हजारों भक्त आज भी अनुभव कर रहे है और इसलिए अंसख्य लोग शिरडी की तीर्थ–यात्रा कर रहे है। श्री साई के वचन की सत्यता का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है।

श्री सदगुरू साईनाथ का तीसरा वचन तो भक्त को प्राप्त हुआ एक बहुमूल्य रत्न ही है।

त्याग शरीर चला जाऊँगा।
भक्त–हेतु दौड़ा आऊँगा।।३।।

"शरीर त्यागने के पश्चात भी मैं अपने भक्तों के लिए दौड़ता हुआ आऊँगा।"

"श्री साई तो समाधिस्त हुए। वे अपनी नश्वर देह त्याग कर हम से दूर हो गए। अब हमारी पुकार कौन सुनेगा ? शिरडी में हमारा आधार–स्तम्भ ढह गया, "आदि निराशाजनक उद्‌गार निकालने का भक्त को कोई कारण नही है; क्योंकि प्रत्यक्ष श्री साई के मुख से यह वचन निकला है और वह त्रिकाल में भी असत्य सिद्ध नहीं होगा। श्री साई महाराज ने पूर्णतया स्पष्ट

शब्दों में भक्तों को आश्वासन दिया है। वे कहते है–"यद्यपि मैं इस शरीर को त्याग कर चला जाऊँगा तो भी भक्त लोग कोई भी विकल्प अपने मन में न लाये। मैं अपने भक्तों का आर्त स्वर सुनकर उनका दुःख निवारण करने के लिए दौडते हुए आऊँगा।"

अब चौथा वचन देखिए :–

मन में रखना दृढ विश्वास।
करे समाधि पूरी आस ।।४।।

"आप मन में दृढ विश्वास रखिए, शिरडी में बनी मेरी समाधि आपकी इच्छाएँ पूर्ण करेगी।"

श्री साई की समाधि किसी सामान्य मनुष्य की पत्थर–ईटों से निर्मित समाधि अथवा कब्र नहीं। वरन एक महान दिव्य पुरूष की जीती–जागती समाधि है। श्री साई का दिव्य आत्मा उस समाधि के इर्द–गिर्द निरन्तर वास कर रही है। "मेरी समाधि में से भी मेरी अस्थियाँ आपके कानों में निनाद करेंगी," ये श्री साई के अन्तिम उद्‌गार थे। यदि कोई भक्त इन शब्दों की सत्यता देखना चाहता है तो उसे दृढ़ श्रद्धा के साथ श्री साई की आत्मा का ध्यान करना चाहिए। सामान्यतः मनुष्य दुःखावेग में किसी का उद्रेक न हुआ हो तो क्या उसे फल प्राप्ति होगी ? नहीं ! इसी प्रकार श्री साई में भक्त की यदि अनन्य श्रद्धा एवं दृढ़ भक्ति हो, तब ही श्री साई की समाधि उसकी मनोकामना पूर्ण करने में सिद्ध होगी इसी कारण श्री साई आगे कहते है :–

मुझे सदा जीवित ही जानो।
अनुभव करो सत्य पहचानो ।।५।।

"आप मुझे सदैव जीवित ही समझिए और अपने अनुभवों द्वारा इसकी प्रचिती प्राप्त कीजिए।"

श्री साई के इस पाँचवे वचन में बहुत गूढ़ अर्थ भरा हुआ है। आत्मा अविनाशी है। जीर्ण वस्तु फेंककर हम नूतन वस्त धारण करते है। इसी तरह हमारी आत्मा एक देह त्यागकर दूसरी देह में प्रवेश करती है। इस गूढ़ अर्थ से यही ध्वनित होता है कि यद्यपि श्री साई ने देह त्याग किया है; पर उनकी दिव्य आत्मा अजरामर है। उसका मरण नहीं है। वह जीवित है। यदि भक्त ने यह सत्य तत्व अपने मन मैं पूर्ण धारण किया तो उसे निजी अनुभव की

प्रत्येक क्षण प्रतीत मिलेगी तथा श्री साई के इस वचन का गहन अर्थ ज्ञात हो जायेगा। श्री साई महाराज मेरी प्रत्येक भली–बुरी चेष्टा की ओर देख रह है, यह भावना मन में उत्पन्न होने पर भक्त के हाथों से कभी भूलकर भी अपवित्र कृत्य नहीं होगा।

श्री साई महाराज का आत्म–विश्वास कितना सुदृढ़ है। यह उनके छटे वचन से सिद्ध होता है। श्री साई अडिग आत्मविश्वास के साथ मानो सारे जगत को चुनौती दे रहे है कि :–

मेरी शरण आ खाली जाये।
हो कोई तो मुझे बताये ।।६।।

"क्या ऐसा एक भी उदाहरण है कि कोई भक्त अनन्य भाव से मेरी शरण में आये और उसकी मनोकामना पूर्ण न हो ?"

ऐसा एक भी भक्त न होगा, जो अनन्य भाव से श्री साई की शरण में गया हो और उसका सारा परिश्रम निष्फल हुआ हो। शरण आये हुए भक्तों को श्री साई ने कभी भी झिड़कारा नहीं। उनके क्रोध में कहे हुए अपशब्दों में भी भक्त का कल्याण करने का आश्चर्यजनक सामर्थ्य होता था। उनके कहे हुए अपशब्द भक्त के हृदय पर किये गए आघात नहीं थे। वरन् उसकी सर्वांग उन्नति कराने के अभिप्राय से मानों शिक्षक के मारे हुए बेंत ही थे। बेंत की मार बालक के लिए दुःखदायक तो होती है। पर परिणाम की दृष्टि से वह हितकारक ही सिद्ध होती है तथा उससे उस बालक की मानसिक उन्नति होती है। श्री साई की लीलाएँ एकदम अगम्य थी। उनकी प्रत्येक कृति का अर्थ समझना कठिन था। फिर भी यह नितांत सत्य है कि श्री साई की शरण में आये हुए प्रत्येक भक्त को अभयदान मिलता था।

श्री साई महाराज का व्यवहार सभी भक्तों के लिए एक समान ही होता था। इसका कारण उनके निम्नलिखित वचन में मिल सकता है :–

जैसा भाव रहा जिस जन का।
वैसा रूप हुआ मेर मन का ।।७।।

"जो–जो भक्त जिस जिस भाव से मुझे स्मरण करता है, वैसा ही

फल मैं उसे प्राप्त करा देता हूँ।'' (श्री साई का यह कथन गीता में भगवान श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा–ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम (४।११) से कितना मिलता है।)

भक्त की श्री साई के प्रति जितनी तीव्र भावना होगी, उतनी ही शीघ्रता से वह श्री साई का प्रेम प्राप्त कर सकता है। अनेक भक्त तो केवल अपना मनोरंजन करने के उददेश्य से ही साई के दर्शन के लिए आते थे। उनका उद्‌देश्य स्पष्ट ही निराला होता था। ऐसे लोग श्री साई महाराज से क्या लाभ उठा सकते थे ? परन्तु, जो श्रद्धालु थे और इसलिये श्री साई का ऐसे भक्तों पर सदा वरद–हस्त रहता था। इतना ही नही, ऐसे भक्तों का सारा भार श्री साई अपने कंधो पर लेते थे।

अपने आठवे वचन में उन्होनें स्पष्ट ही कहा है :–

भार तुम्हारा मुझ पर होगा ।
वचन न मेरा झूठा होगा ।।८।।

''आपके हित–साधन का उत्तरदायित्व तो सदैव मैं सभालूँगा। मेरा वचन कभी असत्य सिद्ध नहीं होगा''

श्री साई अपने प्रति अटूट निष्ठा रखने वाले भक्तों का उत्तरदायित्व स्वयं उठाते थे। उन्होंने उदार अन्तःकरण से सैकडों भक्तों के सांसरिक क्लेश दूर किए। उन्हें अनमोल सहायता प्रदान की। अनेक भक्तों के बाल–बच्चों का भरण–पोषण वे अपने खर्चे से करते रहे। अंधे–लूले, दीन–दुर्बल लोगों के वे अन्नदाता थे। शिरडी में कुछ भक्त लगातार महीनों अपने बाल–बच्चे सहित निःशंक मन से निवास करते थे। उन्हें किसी बात की चिन्ता नहीं करनी पडती थी; क्योंकि जब एक बार भक्त श्री साई के चरणों में शरण लेता था तो श्री साई उस भक्त का सारा बोझा अपने कंधों पर लाद लेते थे तथा उस भक्त को वे किसी भी वस्तु की कमी अनुभव नहीं होने देते थे। इसीलिये नवें वचन में श्री साई कहते है :–

आ सहायता लो भरपूर।
जो माँगा वह नहीं है दूर ।।९।।

"आप विश्वास रखिये कि यहाँ जो आयेगा, उसे अवश्य सहायता मिलेगी। भक्त जिस–जिस वस्तु की कामना करेगा, वही मैं उसे प्राप्त करा दूँगा।"

अपने भक्तों पर श्री साई पुत्रवत् स्नेह रखते थे। बच्चों के साथ वे बहुत ही लाड़–प्यार से व्यवहार करते थें कितने ही भाग्यवान बच्चों को उन्होंने अपनी गोद में खिलाया था। श्री साई सभी भक्तों के लिए एकमात्र विश्वसनीय आशा–स्त्रोत थे। कोई भी अच्छा भाव मन में रखकर श्री साई के दर्शन के लिए जाने वाले भक्त की मनोकामना की अवश्य पूर्ति हो जाया करती थी। श्री साई के इस वचन में भक्तों को यही ढाँढस दिया गया है कि श्री साई भक्त की हर प्रकार से सहायता करने के लिए सदैव तत्पर है। एक कल्पवृक्ष की भाँति भक्त की समस्त मनोकामनाएँ श्री साई की कृपा से फलीभूत होती थी। परंतु, हर कोई भक्त श्री साई की इतनी कृपा का पात्र नही होता था। इसके लिए भक्त को भी उतनी ही योग्यता होनी आवश्यक थी। और इसीलिए श्री साई ने अपने दसवें वचन में कहा है :–

मुझ में लीन वचन मन काया ।
उसका ऋण न कभी चुकाया ।।९।।

"जो भक्त मन, वचन, काया से मुझ में लीन होता है, उसका मै सदैव ऋणी रहूँगा।"

जो भक्त तन, वचन तथा मन से श्री साई से एक रूप हो जाता हो, जिसने अपना सर्वस्व श्री साई चरणों में अर्पण किया हो। उसके तो श्री साई सदैव ऋणी रहते थे। ऐसे भक्तों के लिए वे सदा चिन्तित रहते थे। इन निष्ठावान भक्तों को अपने प्रति–प्रेम श्रद्धा व्यक्त करते हुए देखकर श्री बाबा उनका उद्धार करने तथा उन्हें सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करने की दृष्टि से आत्म–ज्ञान सुलभ कराने वाले ग्रंथो का पाठ एवं अध्ययन करने की प्रेरणा देते थे। श्री साई अनन्य भक्तों के मन में अध्यात्म–ज्ञान के प्रति रूचि उत्पन्न करना ही अपना पवित्र कर्तव्य समझते थे। इस भावना से प्रेरित हो श्री साई अपने भक्त का शिष्यत्व भी स्वीकार करते थे। तथा अपने को उसके ऋण से मुक्त करने के लिए अहर्निश प्रयत्नशील रहते थे। ऐसे श्रद्धालु भक्तों को

श्री साई ने अपने ग्यारहवे वचन में आशीर्वाद दिया है। जो प्रत्येक जिज्ञासु भक्त के लिए मनन करने योग्य है। श्री साई अन्त में कहते है :—

धन्य धन्य वह भक्त अनन्य ।
मेरी शरण तज जिसे न अन्य ।।९।।

"धन्य है वह भक्त, जो अनन्य भाव से मेरे चरणों को शरण पाने आया हो।"

मनुष्य जन्म लेकर प्रत्येक मानव को यही कर्त्तव्य पूर्ण करना चाहिए। अनन्य भाव से सदगुरू के चरणों में शरण लेकर उनके द्वारा परमेश्वर के विशुद्ध रूप से परिचित होना चाहिए। सन्त ईश्वर के ही अवतार होते है। नर को नारायण करने का सामर्थ्य उनमें होता है। जो भक्त श्री साई के चरणों में लीन हुआ हो, अनन्य भाव से उनकी शरण में गया हो, उसे साई का अंतिम आशीर्वाद यही है कि उसका जीवन सार्थक होगा और वही भक्त 'धन्य' कहलाने योग्य सिद्ध होगा।

श्री सदगुरू साई महाराज के ये ग्यारह वचन मानो उनके सारे जीवन चरित्र का सार है। मौक्तिक मणियों की भाँति ये वचन समय—समय पर अपने भक्तों के साथ हुए संभाषणों में श्री साई ने स्वयं कहे है। उनके मुख से निकला हुआ कोई भी शब्द कभी भी असत्य सिद्ध नहीं हुआ। उन्हें वाक्सिद्धि प्राप्त थी और इसलिए उनके मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द अत्यन्त प्रभावपूर्ण होता था। श्री साई के मुख से निकले हुए ये वचन कितने अनमोल है, यह उनके भक्तों को अधिक विस्तार के साथ बताने की आवश्यकता नहीं है। श्री साई महाराज जैसे महान सन्त के अवतार—कार्य में मानवीय बुद्धि के लिए अगम्य, अगाध शक्ति का सर्वत्र परिचय और उल्लेख मिलता है। उनके दिखाये हुए अद्भुत चमत्कारों का गूढ़ अर्थ समझ नहीं पाते; क्योंकि उनकी योग्यता उतनी नहीं है।

अन्त में, ऋषिकेश के स्वामी श्री शिवानन्द जी द्वारा लिखित 'मेडिटेशन एंड फिलासफी' पुस्तक की प्रस्तावना में सन्तों के विषय में व्यक्त उद्गारों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर श्री सदगुरू साईनाथ का यह

चरित्र–गायन पूर्ण किया जाता है। सन्तों के सम्बन्ध में स्वामी जी कहते है :–

"ये सब महान सन्त स्वार्थ की भावना से सर्वथा अलिप्त रहते थे। कभी किसी समय उनके मन में यह भावना उत्पन्न होती थी कि प्राणियों का कल्याण हो, और उनकी इस उदात्त भावना के अनुसार सब कुछ हो भी जाया करता था।"

जिस महान विभूति ने मानवों पर इतने अनन्त उपकार किये हो, अनन्य भाव से उन श्री सदगुरू साई नाथ की शरण में जाकर मैं अपनी लेखनी को विश्राम देता हूँ।

।।ॐ श्री साई यशःकाय शिरडीवासिने नमः।।

।।इति।।

श्री साईबाबा संस्थान विश्वस्तव्यवस्था, शिर्डी

मु.पो. शिर्डी, ता.राहाता, जि. अहमदनगर (महाराष्ट्र) ४२३ १०९

दुरभाष : (०२४२३) २५८५०० फॅक्स : (०२४२३) २५८८७०

वेबसाईट : www.sai.org.in ई-मेल : saibaba@sai.org.in

PUB/011

₹ : 25/-